लघुकथा विशेषांक

हिन्दी चेतना

हिन्दी प्रचारिणी सभा: (कैनेडा) की अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna: International quarterly magazine of Hindi Pracharini Sabha, Canada

वर्ष १४, अंक ५६, अक्टूबर 2012 • Year 14, Issue 56, October 2012

लघुकथा विशेषांक

हिन्दी चेतना

(हिन्दी प्रचारिणी सभा कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका)

Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001

वर्ष : १४, अंक : ५६ मूल्य : ५ डॉलर ($5)

अक्टूबर-दिसम्बर २०१२

- सम्पादकीय 03
- उद्गार 04

आधारशिला (देश 10-13)

- प्रेमचंद 10
- सुदर्शन 10
- उपेन्द्रनाथ अश्क 10
- हरिशंकर परसाई 11
- श्यामानंद शास्त्री 11
- शरद जोशी 11
- रावी 12
- विष्णु प्रभाकर 12
- राजेन्द्र यादव 13
- रघुवीर सहाय 13

आधारशिला (देशांतर 14-21)

- अलेग्जांद्रू साहिया 14
- इवान तुर्गनेव 14
- एतगार कैरेत 15
- तोरिज फ़राज़मंद 16
- सालजेनेत्सिन 16
- यासुनारी कबाबाता 17
- ख़लील जिब्रान 17
- हाई दाईक्वान 17
- लू शुन 18
- हाए ताएछूचेन 18
- जेम्स थर्बर 19
- एलन सनेगर 19
- चेखव 20
- फ्रांज काफ़्का 20
- चार्ली चैपलिन 21

अविस्मरणीय (23-29)

- असगर वजाहत 23
- भूपिंदर सिंह 23
- रमेश बतरा 24
- युगल 24
- वरियाम सिंह संधु 25
- पृथ्वीराज अरोड़ा 25
- श्याम सुंदर अग्रवाल 26
- सुभाष नीरव 27
- आनंद हर्षुल 27
- डॉ. श्याम सुंदर 'दीप्ति' 28
- अवधेश कुमार 28
- राम पटवा 28
- कमल चोपड़ा 29
- जगदीश कश्यप 29
- श्रीनिवास जोशी 29

नई ज़मीन (31-37)

- सरोज परमार 31
- अखिल रायज़ादा 31
- सत्यनारायण 32
- आनंद 33
- जावेद आलम 33
- मुकेश वर्मा 34
- उर्मिल कुमार थपलियाल 34
- अरुण मिश्र 35
- चैतन्य त्रिवेदी 37
- रघुनंदन त्रिवेदी 37

सम्पदा (38-50)

- विवेक निझावन 38
- सुदर्शन रत्नाकर 38
- पवित्रा अग्रवाल 38
- चित्रा मुद्गल 39
- माधव नागदा 39
- डॉ. श्याम सखा श्याम 40
- विक्रम सोनी 40
- डॉ. सतीशराज पुष्करणा 41
- रामकुमार आत्रेय 41
- शंकर पुणतांबेकर 42
- रूप देवगुण 42
- पवन शर्मा 42
- अभिमन्यु अनत 43
- बलराम 43
- पंकज कुमार चौधरी 43
- राघवेन्द्र कुमार शुक्ला 44
- भगीरथ 45
- मुरलीधर वैष्णव 45
- बलराम अग्रवाल 46
- कृष्णानंद कृष्ण 46
- डॉ. रामकुमार घोटड़ 46
- मुकेश शर्मा 47
- अज्ञात 47
- सुरेश शर्मा 47
- डॉ. सतीश दुबे 48
- सूर्यकांत नागर 48
- एन. उन्नी 49

- पारस दासोत 49
- अशोक भाटिया 50
- कमलेश भारतीय 50

स्वागतम् (51-60)

- सुरेन्द्र कुमार पटेल 51
- जगदीश राय कुलरियाँ 51
- कृष्ण कुमार यादव 52
- सुधा भार्गव 52
- प्रियंका गुप्ता 53
- डॉ. अनीता कपूर 53
- डॉ. श्रीमती अजित गुप्ता 53
- डॉ. गजेन्द्र नामदेव 54
- भावना सक्सेना 54
- कमलानाथ 55
- शेफाली पाण्डेय 55
- हरकीरत हीर 56
- त्रिलोक सिंह ठकुरेला 56
- सुदर्शन प्रियदर्शिनी 57
- ऋता शेखर मधु 57
- डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री 58
- डॉ. आरती स्मित 58
- सीमा स्मृति 59
- दीपक मशाल 59
- रचना श्रीवास्तव 60
- नरेन्द्र कुमार गौड़ 60

मेरी पसंद (हरि मृदुल)

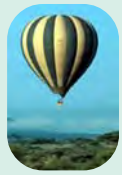

- जोगिंदर पाल 61
- उदय प्रकाश 61

परिचर्चा 62

- डॉ. सतीशराज पुष्करणा
- डॉ. श्याम सुंदर 'दीप्ति'
- श्याम सुन्दर अग्रवाल
- सुभाष नीरव
- डॉ. सतीश दुबे
- भगीरथ

समीक्षायण ● निरुपमा कपूर 69

लघुकथा की सृजनात्मक प्रक्रिया

- रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' 71

साहित्यिक समाचार 73

पुस्तक समीक्षा ● विजया सती 75

पुस्तकें/पत्रिकाएँ मिलीं 77

विलोम चित्र काव्यशाला 78

चित्र काव्यशाला 79

आख़िरी पन्ना

- सुधा ओम ढींगरा 80

संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक
श्याम त्रिपाठी , कैनेडा

सम्पादक
सुधा ओम ढींगरा, अमेरिका

सह-सम्पादक
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', भारत
पंकज सुबीर, भारत
अभिनव शुक्ल, अमेरिका

परामर्श मंडल
पदमश्री विजय चोपड़ा, भारत
(मुख्य संपादक, पंजाब केसरी पत्र समूह)
कमल किशोर गोयनका, भारत
पूर्णिमा वर्मन, शारजाह
(संपादक, अभिव्यक्ति- अनुभूति)
अफ़रोज़ ताज, अमेरिका
(प्रोफ़ेसर-यूनिवर्सिटी ऑफ़ नॉर्थ कैरोलाईना, चैपल हिल)
निर्मला आदेश, कैनेडा
विजय माथुर, कैनेडा

सहयोगी
सरोज सोनी, कैनेडा
राज महेश्वरी, कैनेडा
श्रीनाथ द्विवेदी, कैनेडा

विदेश प्रतिनिधि
डॉ. एम. फ़िरोज़ ख़ान
भारत
चाँद शुक्ला 'हदियाबादी'
डेनमार्क
दीपक 'मशाल', यूके
अमित सिंह, भारत
अनुपमा सिंह, मस्कट

लघुकथा विशेषांक

पंखुड़ियों ने बाँह पसारी, अम्बर तक आवाज़ लगाई,
लाल, हरे, पीले, रंग लेकर, पश्चिम से बहती पुरवाई,
भावों की अँगनाई में ली, शब्दों ने जी भर अँगड़ाई,
मन में जागी नई चेतना, भाषा की ख़ुशबू लहराई ।

अभिनव शुक्ल

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1
Phone : (905) 475-7165, Fax : (905) 475-8667
e-mail : hindichetna@yahoo.ca
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001

अतिथि सम्पादक के रूप में इस लघुकथा विशेषांक का सम्पादन हिन्दी चेतना के सह सम्पादक श्री रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' और प्रतिष्ठित साहित्यकार श्री सुकेश साहनी ने किया है ।

सुकेश साहनी

कृतियाँ : डरे हुए लोग, ठंडी रजाई (लघुकथा संग्रह), मैग्मा और अन्य कहानियाँ, (कहानी संग्रह), अक्ल बड़ी या भैंस (बालकथा संग्रह), डरे हुए लोग लघुकथा-संग्रह। अनेक लघुकथाएँ, जर्मन भाषा में अनूदित। अनेक रचनाएँ पाठ्यक्रम में शामिल, 'रोशनी' कहानी पर दूरदर्शन के लिए टेलीफिल्म। हिन्दी लघुकथा की पहली वेब साइट www.laghukatha.com का वर्ष 2000 से सम्पादन। **अनुवाद :** खलील जिब्रान की लघुकथाएँ, पागल एवं अन्य लघुकथाएँ, विश्व प्रसिद्ध लेखकों की चर्चित कहानियाँ । **सम्पादन:** महानगर की लघुकथाएँ, स्त्री-पुरुष संबंधों की लघुकथाएँ, देह व्यापार की लघुकथाएँ, बीसवीं सदी : प्रतिनिधि लघुकथाएँ, समकालीन भारतीय लघुकथाएँ, बाल मनोवैज्ञानिक लघुकथाएँ, मानव मूल्यों की लघुकथाएँ, लघुकथाएँ : मेरी पसन्द । **सम्मान:** डॉ.परमेश्वर गोयल लघुकथा सम्मान 1994, माता शरबती देवी पुरस्कार 1996, डॉ. मुरली मनोहर हिन्दी साहित्यिक सम्मान 1998, बरेली कालेज, बरेली-स्वर्ण जयन्ती सम्मान, माधवराव सप्रे सम्मान, दया दृष्टि अति विशिष्ट उपलब्धि सम्मान ।

सम्पर्क : 193/21 सिविल लाइन्स, बरेली-243001
फोन : 05812429193, 05813297904,
मोबाइल: 9335280003, 9634258583
ई मेल: *sahnisukesh@gmail.com*

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

कृतियाँ : माटी पानी और हवा, अंजुरी भर आसीस, कुकडूँ कूँ, हुआ सवेरा (कविता संग्रह), मेरे सात जनम (हाइकु -संग्रह), मिले किनारे (ताँका और चोका संग्रह) धरती के आँसू, दीपा, दूसरा सवेरा (लघु उपन्यास), असभ्य नगर (लघुकथा संग्रह), खूँटी पर टँगी आत्मा(व्यंग्य संग्रह), भाषा-चन्दिका (व्याकरण), रूम टू रीड इण्डिया से मुनिया और फुलिया (बालकथा हिन्दी और अंग्रेज़ी), झरना, सोनमछरिया, कुआँ (पोस्टर कविता छोटे बच्चों के लिए)। **सम्पादन:** नैतिक कथाएँ , भाषा-मंजरी, चन्दनमन (हाइकु संकलन), गीत सरिता (बालगीत-3भाग), बालमनोवैज्ञानिक लघुकथाएँ, मानव मूल्यों की लघुकथाएँ एवं लघुकथाएँ-मेरी पसन्द (श्री सुकेश साहनी के साथ), एक दुनिया इनकी भी (बालकथा-संग्रह 2 भाग), भावकलश (29 कवियों का ताँका -संग्रह), यादों के पाखी, (हाइकु-संग्रह), अलसाई चाँदनी (सेदोका -संग्रह) का प्रकाशन । 40 देशों में देखी जाने वाली लघुकथा की वेब साइट www.laghukatha.com का सम्पादन ।

सम्पर्क : फ़्लैट नं 76 (दिल्ली सरकार आवासीय परिसर) रोहिणी सैक्टर -11 नई दिल्ली-110085
मोबाइल : 09313727493, फोन 011-27581183
ई मेल: *rdkamboj@gmail.com*

आवरण : अरविंद नारले, कैनेडा *arvind.narale@sympatico.ca*
अंदर के जलरंग चित्रों का चित्रांकन : श्रेया श्रुति
डिज़ायनिंग : सनी गोस्वामी, पी सी लैब, सीहोर (म.प्र.) *sameergoswami80@gmail.com*
Printed By: www.print5express.com

मीडिया, फिल्म और टेलीविज़न आज के युग की पहचान हैं । इन सबमें इतनी शक्ति, आकर्षण और प्रभाव है कि इनसे दूर रहना मुश्किल है । कुछ लोग तो टेलीविज़न से इतने सम्मोहित हैं कि वे जलपान छोड़ सकते हैं, किन्तु अपने सीरियल देखना नहीं भूलते । यदि हम इनका सुचारू रूप से प्रयोग करें तो हिन्दी के प्रचार- प्रसार में ये बहुत लाभकारी हो सकते हैं । इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दी सिनेमा जगत ने हिन्दी के प्रचार में बहुत ही प्रशंसनीय भूमिका निभाई है, विशेष कर विदेशों में । युवा पीढ़ी इससे बहुत प्रभावित हुई है और हिन्दी के प्रति उनके मन में सम्मान की भावना बढ़ी है । किन्तु भाषा के मामले में फ़िल्मी संसार बेहद लापरवाह है, सबसे पहले उनका उद्देश्य होता है, फ़िल्म की सफलता..... असफलता, फ़िल्मी दुनिया की आर्थिक स्थिति को डाँवाडोल कर देती है, इसलिए भाषा के प्रति वे कोई प्रतिबद्धता नहीं रखते । जिन फिल्मों के संवाद और गीत अच्छे होते हैं, वे फ़िल्में हमेशा याद रहती हैं ।

सरकार की नीति भी हिन्दी भाषा के विषय में बिलकुल खोखली है; इसलिए हम किसी को दोष नहीं दे सकते । इसमें कोई संदेह नहीं कि दूरदर्शन, जी न्यूज़ तथा सोनी के कुछ कार्यक्रमों से हिन्दी को प्रोत्साहन मिलता है । पिछले कुछ समय से हमने अनुभव किया है कि कुछ ऐसे रोचक कार्यक्रम सोनी चैनल पर दिखाए जाते हैं, जिनमें हिन्दी भाषा का समुचित और उचित प्रयोग हो रहा है । उदाहरण के लिए 'अदालत' में एक वकील की भूमिका में श्री के. डी. पाठक अपने मुकद्दमों में जो दलील हिन्दी में देते हैं और जो शब्दावली प्रयोग करते हैं, उससे हर दर्शक प्रभावित होता है । काश! हमारे देशवासी भी ऐसी भाषा को प्रयोग में लाएँ । श्री के. डी. पाठक के उत्तर प्रति उत्तर का दौर बहुत रोचक और हिन्दी भाषा की गरिमा लिए होता है ।

इसी चैनल पर हम 'कौन बनेगा करोड़पति' कार्यक्रम देखते हैं, जिसके प्रस्तुत कर्ता प्रतिष्ठित कलाकार अमिताभ बच्चन हैं । जिस सुन्दरता से वे जनजीवन की भाषा हिन्दी का प्रयोग करते हैं, हॉट सीट पर बैठने वाले के साथ-साथ घर बैठे दर्शकों को भी भाषा के प्रति प्रेरित करते हैं । लेकिन शर्म की बात है कि हिन्दुस्तान के रहनेवाले छब्बीस, छप्पन, छियासी और छियानवे को क्रमवार नहीं दे पाए । भाग लेने वाले लोगों में से केवल दो लोग ही इस प्रश्न को लिख पाए । विदेशों में ऐसा हो तो बात समझ में आती है । अंग्रेज़ी के वर्चस्व में हिन्दी; जो विदेशी भाषा के रूप में जानी और पहचानी जाती है, की गणना नहीं भी समझी जा सकती ।

हमारा उद्देश्य यहाँ किसी की निंदा या आलोचना करना नहीं है । हम तो केवल हिन्दी के प्रति लोगों की उदासीनता की ओर इंगित कर रहे हैं । हम भारत से बाहर रहकर विपरीत परिस्थितिओं, सीमित साधनों में 'हिन्दी चेतना' को तन-मन-धन से प्रकाशित करने का निरन्तर प्रयास पिछले १४ वर्षों से कर रहे हैं और हमें गर्व है कि हम हिन्दी, अपनी भाषा, के लिए कुछ तो कर रहे हैं ।

देश और भाषा के प्रति जुनून ही हमें पत्रिका प्रकाशन की कठिनाइयों से जूझने की शक्ति प्रदान करता है ।

पाठको, जैसा कि आप को मालूम है, हर वर्ष अक्टूबर का अंक विशेषांक होता है । इस बार लघुकथा विशेषांक आप के हाथ में है । हम सह सम्पादक रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' और प्रतिष्ठित साहित्यकार सुकेश साहनी के आभारी हैं, जिन्होंने परामर्श, सहयोग और समय देकर इस अंक को निकालने में भरपूर सहायता की । हम उन सभी कथाकारों के प्रति अपनी कृतज्ञता और आभार प्रकट करते हैं, जिनके सहयोग के बिना यह कार्य संभव न हो पाता ।

अंक आप को कैसा लगा ? आप की प्रतिक्रियाएँ ही हमें अवगत करवा सकती हैं ।

आपका

श्याम त्रिपाठी

हिन्दी चेतना को पढ़िये, पता है :
http://hindi-chetna.blogspot.com

हिन्दी चेतना की समीक्षा अवश्य देखें :
http://kathachakra.blogspot.com

हिन्दी चेतना को आप
ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं :
Visit our Web Site :
http://www.vibhom.com/hindi chetna.html
पर जाकर

उद्गार

'हिन्दी चेतना' के जुलाई -सितम्बर,२०१२ के अंक को देखकर अत्यंत प्रसन्नता हुई । यद्यपि हिंदी में तमाम पत्रिकाएँ निकल रही हैं, परन्तु इस पत्रिका का कलेवर अत्यंत सुरुचिपूर्ण है । सामग्री का चयन भी उत्तम है । मेरी बधाइयाँ स्वीकार करें । हिन्दी भाषा एवं साहित्य के प्रति इतने प्रेम एवं लगाव को देखकर मैं भी इससे जुड़ना चाहता हूँ । आप सब हिन्दी की असली सेवा कर रहे हैं ।

-डॉ.माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय (मेघालय)

●

'हिन्दी चेतना' का नवांक मिला । हमेशा की तरह अच्छा लगा । कितने मन से पत्रिका निकालते हैं आप, यह एक-एक पृष्ठ को देखकर समझा जा सकता है । सुधा जी, आपकी सर्जनात्मकता भी मुझे प्रभावित करती है । आप हिन्दी साहित्य का गौरव है । इधर आपकी रचनाएँ, आपके विचार पढ़ता रहता हूँ, जिनसे गुज़रते हुए आपकी भावनाओं को समझने में आसानी होती है । आजकल इतना सकारात्मक सोचने वाले कम हैं । आप स्वस्थ-सानंद रहते हुए, माँ भारती की सेवा करती रहें ।

-गिरीश पंकज (रायपुर,भारत)

●

आपने एकदम सही कहा है कि हिन्दी चेतना के इस अंक में तमाम विधाओं को स्थान दिया गया है - कहानियाँ, साक्षात्कार, व्यंग्य , कविताएँ, ग़ज़लें, आलेख, आपके पत्र के अलावा आपके सभी स्थाई स्तम्भ। आप दोनों का संपादकीय भी गहराई लिए है। विवेक मिश्र, बलराम अग्रवाल, एवं श्याम सखा श्याम की कहानियां भारत से और मित्र उमेश अग्निहोत्री की कहानी अमरीका से बहुत ही बढ़िया सेलेक्शन है। पत्रों का स्तर भी बहुत उत्तम है। पत्रिका देखकर साधुवाद कहने को जी चाह रहा है। शुभकामनाओं सहित,

-तेजेन्द्र शर्मा (यूके)

●

'हिन्दी चेतना' की नई ई-पत्रिका आई और मैं चिपक गई अपने कम्प्यूटर से । साहित्य की सभी विधाओं का अपना आनन्द होता है । हिन्दी चेतना में इसकी अच्छी बानगी मिल जाती है। शशि पाधा ने 'विदाई' में कैप्टन हरपाल और नव विवाहिता पत्नी प्रभा की मात्र चार वर्षों की वैवाहिक जीवन अवधि और कैप्टन हरपाल की मृत्यु का हृदय स्पर्शी वर्णन किया है । मातृत्व स्नेह सहित लेखिका ने अपने व्यक्तिगत अनुभव को बड़ी कोमलता व सहृदयता से चित्रित किया है । 'पता नहीं, बाढ़ से उमड़ते आँसू मुझे हृदय विदारक दृश्य देखने से बचाना चाह रहे थे या मुझसे भी आगे बढ़ कर वीरांगना प्रभा को श्रद्धांजलि अर्पित करना चाह रहे थे! युद्ध में बस हार ही हार होती है'।

शशिजी को उनकी लेखनी की शक्ति पर बधाई है और सम्पादक मण्डल को बधाई है उनके अथक प्रयास के लिए ।

-मीरा गोयल (अमेरिका)

●

'हिन्दी चेतना' जुलाई-सितम्बर अंक को सरसरी तौर पर ही अभी देख सका हूँ । हज़ारों मील अपने वतन से दूर अपनी चेतना में अपनी माटी की खुशबू को आप लोगों ने बसाया है, इसके लिए आप सभी बधाई के हकदार हैं । पत्रिका अपने कलेवर और सामग्री में स्तरीय है । पहली बार प्रवासी हिन्दी रचना और रचनाकार के संबंध में सुनियोचित जानकारी मेरे लिए संभव हुई है । आप सभी को आंतरिक धन्यवाद ।

-आशुतोष सिंह (भारत)

●

'हिन्दी चेतना' का नया अंक देखा । पत्रिका का कवर देखने के बाद पृष्ठ खोले तो बिना पढ़े आगे बढ़ने का मन ही नहीं किया । तेजेन्द्र शर्मा से की गई बातचीत से लेकर आख़िरी पन्ने तक पढ़ने में चार घंटे लगे । कंटेंट के साथ इतनी सुन्दर साज -सज्जा । भारत में प्रकाशित होने वाली किसी भी पत्रिका में ऐसा कलेवर नहीं देखा । साहित्य और कथा-कहानी की पत्रिकाएँ तो अब न्यूज़ प्रिंट पर आने लगी हैं । ऐसे में आप का प्रयास सच में सराहनीय है । संपादन के लिए साधुवाद ।

-शैलेन्द्र सक्सेना (भारत)

●

वासन्ती रंगों से सुसज्जित 'हिन्दी चेतना' का जुलाई अंक देख कर प्रसन्नता हुई । इस अंक के आवरण पृष्ठ से लेकर विभिन्न साहित्यिक विषयों पर प्रकाश डालती हुई सामग्री देख/पढ़ कर बहुत गर्व हुआ कि विदेश की धरती से ऐसी सम्पूर्ण पत्रिका प्रकाशित हो रही है । इस सन्दर्भ में आपको तथा आपके कर्मठ एवं उद्यमी संपादक मंडल को बधाई । आपके द्वारा लिया गया श्री तेजेन्द्र शर्मा जी के साक्षात्कार के द्वारा कहानी लेखन की दशा और दिशा से परिचय हुआ । जिस गंभीरता से आपने उनके लेखन के विभिन्न आयामों पर प्रश्न किये, उतनी ही सहजता से उन्होंने उत्तर दिए, अत: यह साक्षात्कार रोचक रहा । प्रत्येक

आपकी सेवाएँ अमूल्य हैं

नेट पर 'हिंदी चेतना' का ताज़ा अंक पढ़ा। उत्कंठा तो इसके हर नए अंक को देखने की अबाध होती है। नया अंक पढ़कर और इसमें परोसी गई सामग्री को हृदयंगम करके बौद्धिक पिपासा शांत होती है। चुनांचे, यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि जैसे ऐसा लगता है कि 'हिन्दी चेतना' से मेरा संबंध बहुत पुराना है। कोई वर्ष-भर ही तो हुए हैं, इस पत्रिका से जुड़े हुए। मेरी कुछ रचनाएँ भी इसमें प्रकाशित हुईं हैं--जिसके लिए अगर मैं यह कहूँ कि मैं आभारी हूँ तो यह बड़ा औपचारिक-सा लगता है। ऐसा कहने से 'हिन्दी चेतना' के संपादक मंडल से मेरा संबंध बौना-सा लगने लगता है। इसलिए, इस क्षण के बाद ऐसा कभी नहीं कहूँगा। मैं इस महान पत्रिका और इसके कर्मठ अक्षरजीवी, हिन्दी-सेवी संपादक मंडल के साहित्य-प्रेम का हृदय से ऋणी हूँ--आपकी सेवाएँ अमूल्य हैं। सारा हिन्दी-जगत इनके महान कार्य से गुंजायमान है। हर जगह चर्चाएँ हैं। ख़ास तौर से सुधा जी की। जिनकी कहानियाँ भारतीय पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रमुखता से स्थान प्राप्त कर रही हैं।

'हिन्दी चेतना' का जुलाई-सितंबर, 2012 अंक कई दृष्टिकोण से उल्लेखनीय है। इसमें विभिन्न साहित्यिक विधाओं का मनोरम हाट सजा हुआ है। हर विधा में प्रचुर सामग्री प्रस्तुत की गई है। सचमुच गागर में सागर भरने का भगीरथ प्रयास किया जा रहा है। क्या 'हिन्दी चेतना' ही हिन्दी साहित्य की एकमात्र सबसे बड़ी पत्रिका बनकर पाठकीय मंच पर नज़र आने वाली है? भारत की सर-ज़मीं पर छपने वाली पत्रिकाएँ इससे सबक लें !

-डॉ. मनोज श्रीवास्तव (भारत)

कहानी कथ्य की दृष्टि से भिन्न थी । जहाँ विवेक जी ने 'घड़े' के बिम्ब से मन हिला दिया वहीं पर उमेश अग्निहोत्री जी की कहानी ने अमेरिका में रहने वाले अवकाश प्राप्त / दम्पत्तियों की मनोव्यथा को सजीव रूप दिया है । अनिता जी तथा कादम्बरी जी का आलेख भी शोधपूर्ण लगा । ऐसे में किस विषय पर लिखा जाए और किसे छोड़ा जाए, मेरे जैसे धीरे- धीरे पत्रिका को आत्मसात करने वाले पाठकों के लिए कठिन है । अंत में मैं यही कहूँगी कि ऐसी उत्तम कोटि की पत्रिका से पिछले आठ साल से जुड़े रहने में गर्व की अनुभूति होती है ।

-शशि पाधा (वर्जिनिया,अमेरिका)

●

'हिन्दी चेतना' भेजने के लिए बहुत- बहुत धन्यवाद । उच्च कोटि की पत्रिका है । कई पाठकों, लेखकों और कवियों ने पत्रिका की प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा है । यूँ तो पत्रिका में विविध आयाम हैं । मुझे जो सबसे अनोखी और मनमोहक कला लगी, वह है चित्र काव्यशाला । पत्रिका के लिए बहुत- बहुत शुभकामनाएँ और पत्रिका से जुड़े सभी कार्यकर्ताओं को हार्दिक बधाई।

-आशा मोर (ट्रिनिडाड और टोबेगो)

●

बहुत सुन्दर संग्रह से परिचय कराने के लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ और मेरा व्यावहारिक अनुभव अभिभूत है । आपका बहुत- बहुत शुक्रिया मेरे साथ इस तरह होने के लिए । 'हिन्दी चेतना' के प्रयास व उद्देश्य को सुदृढ़ता और इंसानियत को सर्वोच्च चेतन प्राप्त हो !!

-चेतन शर्मा (भारत)

●

'हिन्दी चेतना' का अंक हम तक पहुँचाने के लिए बहुत-बहुत आभार सुधा जी। आज के दौर में साहित्यिक प्रयासों की प्रशंसाएँ होनी ही चाहिए।

-नवीन सी. चतुर्वेदी (मुम्बई, भारत)

●

बस एक ही साँस में सारी 'हिन्दी चेतना' पढ़ गई। अन्तिम पृष्ठ पढ़ने के बाद मुँह से एक ही शब्द निकला- वाह !

-अनिल प्रभा कुमार (न्यू जर्सी अमेरिका)

●

'हिन्दी चेतना' के लिए आभार । इससे पूर्व भाई प्रेम जनमेजय पर हिन्दी चेतना का अप्रतिम अंक देख चुका हूँ । आपकी तपश्चर्या और समर्पण भाव न केवल हिन्दी चेतना को देश की सीमाओं के पार जागृत किये हुए है, अपितु हम जैसे देश में बैठे अनेक साहित्य प्रेमियों को भी अभिभूत किये हुए है ।

-रमेश तेलंग (नई दिल्ली, भारत)

●

'हिन्दी चेतना' अंक जुलाई २०१२ का आवरण चित्र बेहद रोचक, आकर्षक और प्रेरक है । इस पत्रिका से मेरा प्रथम साक्षात्कार है, लेकिन पत्रिका की समग्र दृष्टि ने मुझे बेहद प्रभावित किया । स्तरीय होने के साथ-साथ यह अंक 'संपादकीय' से लेकर 'आख़िरी पन्ना' तक एक संतुलित व्यक्तित्व से सुसज्जित सफल कृति है । साहित्य की विविध विधाओं को जिस प्रकार पिरोया गया है, श्लाघनीय प्रयास है । सुधा जी आपने यह अंक सस्नेह उपलब्ध कराया आपको सादर नमन !

-डॉ. मनोज कुमार सिंह (भारत)

●

आख़िरी पन्ना सदैव ही आकर्षण का विषय रहता है

'हिन्दी चेतना' का जुलाई २०१२ अंक प्राप्त हुआ , धन्यवाद । पत्रिका का यह अंक भी सदा की तरह अत्यधिक रोचक एवं वैविध्यपूर्ण है । पत्रिका का प्रत्येक लेख , कविता, व्यंग्य, चित्र आरम्भ से अंत तक मन को बाँधे रखता है । श्री श्याम त्रिपाठी जी का सम्पादकीय मन को गहरे में छू जाता है । जब भारत में हिंदी को वह सम्मान नहीं मिल रहा है, जो उसके लिए अपेक्षित है तो विदेशी धरती पर, विदेशी वातावरण में 'हिंदी चेतना' के रथ को इतने अधिक प्रयास, लगन और निष्ठा से खींच ले जाना ही नहीं उसे सम्मान दिलवाना भी कोई सहज कार्य नहीं है । आज 'हिन्दी चेतना' विदेश में भी उस लक्ष्य तक पहुँच रही है, जिसे हिन्दी भाषी बड़े चाव से पढ़ता है, लिखने के लिए लेखकों को उत्साहित करना कोई सहज कार्य नहीं है, किन्तु श्री श्याम त्रिपाठी जी एवं डॉ. सुधा ओम ढींगरा जी ने अपने सहयोग और प्यार से लेखकों को आगे आने का अवसर दिया है । स्वछन्द आकाश में उड़ने की उम्मीद दी है । श्री श्याम सखा 'श्याम ' की कहानी 'कोमा' जीवन की यथार्थता को उजागर करती है । प्रत्येक व्यक्ति अपने बारे में सोचता है और सभी रिश्ते बेमानी हो जाते हैं । जीवन के अंत के साथ क्या रिश्ते का अंत भी हो जाता है ? श्री उमेश अग्निहोत्री की कहानी 'वह एक दिन' भी मन को आहत करती है । जिनके लिए हम जीवन देते हैं, उनके पास हमारे लिए एक पल भी नहीं । जीवन की यह कैसी बिडम्बना है ? इस देश में आकर भारतीय संस्कार भी कहीं पीछे छूटते जा रहे हैं । श्री मनोज श्रीवास्तव का लेख 'दृष्टिकोण' के अनुसार 'हिन्दी चेतना' एक संग्रहणीय पत्रिका अपने में बहुत कुछ ऐसा सँजोए हुए है, जो पत्रिका के सभी पक्षों को सहज और सरल ढंग से उजागर करती है । सबसे अत्याधिक हर्ष की बात तो है कि श्री श्याम त्रिपाठी जी को 'हिन्दी चेतना' के मुख्य सम्पादक के रूप में उनके अनथक प्रयास स्वरूप मध्यप्रदेश का 'अम्बिका प्रसाद रजत अलंकरण' से सम्मानित करने की घोषणा की गयी है । पत्रिका के इसी अंक में सुधा ओम ढींगरा को उनके कहानी संग्रह 'कौन सी ज़मीन अपनी' को पन्द्रहवां अम्बिका प्रसाद दिव्य पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा भी हुई है । मेरी ओर से श्री श्याम त्रिपाठी जी एवं डॉ. सुधा ओम ढींगरा जी को बहुत - बहुत बधाई । सुधा जी का आख़िरी पन्ना सदैव ही आकर्षण का विषय रहता है । भारतीय स्वयं ही अंग्रेज़ी के आकर्षण में इतना बँध गये हैं कि अपने बच्चों को अंग्रेज़ी बोलना और पढ़ता देख कर अत्यधिक गर्व का अनुभव करते हैं । कोई-कोई परिवार अभी भी हिंदी बोलने के पक्ष में हैं और बच्चों को हिंदी लिखना-पढ़ना सिखाना भी चाहते हैं - पर बच्चे हिंदी में रुचि नहीं लेते । भाषा सीखना कोई अपराध नहीं पर जब तक मन में किसी भाषा के लिए आदर न हो तब तक उसे सीखना भी तो सहज नहीं । पर उम्मीद की एक किरण अभी भी शेष है कि वह सुबह अवश्य आएगी, जब हिन्दी भाषा के प्रति हर भारतीय आकृष्ट होगा ।

शुभकामनाओं सहित ।

-डॉ. चन्द्र सूद (कनाडा)

पूरा अंक कसावटयुक्त है

सुधा ओम ढींगरा जी द्वारा सम्पादित 'हिन्दी चेतना' का जुलाई-सितम्बर २०१२'' अंक हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं का प्रतिनिधित्व कर रहा है। पूरा अंक कसावटयुक्त है, सम्पादन कौशल की जितनी प्रशंसा की जाए वह कम ही होगी, तेजेन्द्र शर्मा से सुधा ओम ढींगरा की लम्बी बातचीत में तेजेन्द्र जी ने अनेक सार्थक, व्यावहारिक व बुनियादी प्रश्न उठाये हैं जो हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषा के क्षेत्र में किये जा रहे दिखावटी प्रयासों पर गम्भीरता से सोचने के लिए विवश करते हैं। डॉ. सतीश दुबे की लघुकथा श्रद्धांजलि तथा भावना सक्सेना की लघुकथा झूले का दाम प्रभाव छोड़ती है। शशिपाधा का संस्मरण 'विदाई' प्रभावशाली है। पवन कुमार तथा हस्तीमल हस्ती की गज़लें अंक में चार चाँद लगा रही हैं। डॉ. सुधा गुप्ता की हाइकु कविताएँ बहुत प्रभावशाली हैं। अनिल जनविजय द्वारा रूसी तातार कवि मूसा जलील की कविताओं का हिन्दी अनुवाद मौलिकता जैसा अहसास कराता है। पुस्तक समीक्षा में रमाकान्त श्रीवास्तव द्वारा रामेश्वर काम्बोज हिमांशु के हाइकु संकलन की विस्तृत व्याख्या प्रभावित करती है। कुल मिलाकर 'हिन्दी चेतना' का अंक बहुत परिश्रम व सम्पादकीय कौशल का उत्कृष्ट प्रतिफल है। नवगीत को भी स्थान दें तो वह कमी भी पूरी हो सकेगी। बहुत सुन्दर अंक के प्रकाशन पर सुधा ओम ढींगरा जी को एवं सम्पादकीय परिवार को बधाई।

-जगदीश व्योम (दिल्ली, भारत)

'हिन्दी चेतना' का ताज़ा अंक नेट पर पढ़ा । सुधा जी, आपके संपादन की प्रशंसा करनी होगी क्योंकि हर रचना स्तरीय है उस पर भी साज-सज्जा पत्रिका को आकर्षक बनाती है, कहानी विशेष रूप से डॉ. श्याम सखा श्याम जी की प्रभावित करती है, लेखक को साधुवाद । काव्य पक्ष भी प्रबल है । लगभग हर विधा को स्थान दिया गया है । आपका आख़िरी पन्ना बहुत कुछ कहता है । आपने अमेरिकी परिवेश की जानकारी दी, लेकिन अभी भारत में पुस्तक खरीदने और पढ़ने का माहौल नहीं है। शायद इसी कारण प्रकाशक केवल सरकारी खरीद पर निर्भर है । हिन्दी हिंदुस्तान से विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है, लेकिन हिन्दी वाले ही इसके लिए बहुत उत्सुक नहीं हैं । इस में हिन्दी कितना आगे बढ़ पाती है यह निर्भर है हिन्दी चेतना पर । आप भारत भूमि से दूर रहकर भी हिन्दी चेतना जागृत करने के प्रयासों में लगी है, आपके प्रयासों को नमन करते हुए अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ

-डॉ. विनोद बब्बर (नई दिल्ली,भारत)

●

धन्यवाद सुधा जी । इस अंक को साझा करने के लिए । हिंदी लेखन की सभी विधाओं को सन्निहित करने के कारण, आपका यह प्रयास विशेष तौर पर सराहनीय है । सभी रचनाएँ स्तरीय तथा पठनीय हैं । बहुत -बहुत बधाई ।

-विनीता शुक्ला (कोची, भारत)

●

बहुत ही अच्छी पत्रिका है । अभी ब्लॉग पर पढ़ी .....विविध सामग्री से सुसज्जित इस पत्रिका के लिए आपको बधाई । श्याम सखा श्याम जी की कहानी 'कोमा' हृदय स्पर्शी है और यथार्थ की नग्न तस्वीर है ।

-रेखा पंचोली (कोटा, भारत)

●

सुधा जी, कुछ कविताएँ , लघुकथाएँ एवं हाइकु पढ़ीं। इला जी ने अच्छा लिखा है । आपने भी कुछ अलग हटकर लिखा है। पत्रिका की साज-सज्जा भी आकर्षक है..अच्छा अंक है, बधाई...।

-सविता सिंह (वाराणसी , भारत)

●

इन्टरनेट के साथ जुड़े और जो अब तक नहीं जुड़े रचनाकारों के बीच अभी फ़ासला है, वह फ़ासला हिन्दी चेतना के इस अंक में भी दिखता है । हिन्दी साहित्य के ऐसे महत्त्वपूर्ण समकालीन रचनाकारों को इस नई टेक्नोलोजी से जोड़ने और इस टेक्नोलोजी में आ रहे साहित्य को अधिक समृद्ध बनाने में 'हिन्दी चेतना' की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो सकती है । तेजेन्द्र शर्मा जी ने 'साहित्य को मार्केट में लाने के अस्त्र-शस्त्र का अत्यंत सामयिक प्रश्न अपने इंटरव्यू में उठाया है, यह बात उन्होंने पहले भी कही थी, इसे आगे बढ़ाना चाहिए । इस पर 'objectively' बहस होनी चाहिए । 'आख़िरी पन्ने' में सुधा जी ने एक शब्द दिया है 'आसान साहित्य' । इस पर ध्यान केन्द्रित करें तो यह भी एक अच्छी और सार्थक बहस को आमंत्रित करता है ।

-सतीश जायसवाल(छत्तीसगढ़, भारत)

●

आपकी पत्रिका देखी । कुछ रचनाएँ पढ़ीं भी । 'घड़ा' अच्छी कहानी है । 'वह एक दिन' और 'कोमा' भी अच्छी कहानियाँ हैं । रविन्द्र अग्निहोत्री का लेख रोचक और जानकारियों से भरा है और कादंबरी मेहरा ने अपने लेख में महत्त्वपूर्ण प्रश्न

सागर में गागर भरने वाली बात

अप्रैल-जून 2012 का अंक प्राप्त हुआ और नेट पर जिस अंक को देखा, उसकी कापी हाथ में देखकर ऐसा लगा जैसे आकाश में चमकते सितारे को देखा हो और उसे अपनी अंजुली में पाकर ख़ुशी का ठिकाना न रहा हो । इतना सुंदर अंक कि जिसमें कहानी, कविता, लेख, साक्षात्कार, लघुकथाएँ, ग़ज़लें, क्षणिकाएँ, माहिया, स्तम्भ और अंत में आपका 'आखिरी पन्ना' ! जैसे पकवान खाने के बाद पसंदीदा मीठा खाना । भई यह तो सागर में गागर भरने वाली बात हो गई । उसपे भी सागर का पानी इतना मीठा कि पीते ही जाएँ ।

दूर देश में बैठकर भी हिन्दी की सेवा में आपने जो कष्ट उठाया है, उससे क्षण मात्र भी यह महसूस नहीं होता कि यह अंक परदेसी है । अंक पूर्णत: पठनीय, सुंदर, सुरुचिपूर्ण होने के साथ - साथ भी उसमें एक सादगी, अपनापन और देश तथा हिंदी के प्रति आपका अंदरूनी प्यार झलकता है । ६४ पन्नों में इतनी सारी विधाओं को समेटना सचमुच सम्पादकीय कुशलता ही है । आपकी तुलना में हम देशवासी हिन्दी के लिए दिल से कितना कर पा रहे हैं, सोचनेवाली बात होगी । सात समन्दर पार होकर भी आप सात कदम भी दूर महसूस नहीं होती । हमारी सोई हुई चेतना को 'हिन्दी चेतना' हमेशा चेताती रहेगी । आपके इस महा-अभियान में गिलहरी जैसे साथ देने का मौका भी मिले तो खुद को भाग्यवान समझेंगे । सचमुच बहुत ही प्रभावित रहा मैं । अंक कितना भाया इसे शब्दों में लिख नहीं सकता.....।

-डॉ. रमेशकुमार गवली (मुम्बई, भारत)

उठाए हैं । हिन्दी का संसार कितना विशाल आज है, आपकी पत्रिका इस बात की तस्दीक करती है । प्रवासी लेखन से हिंदी साहित्य समृद्ध हो रहा है । ज़रूरत इस बात की है कि वह अधिक से अधिक प्रामाणिक बने और प्रवासी जीवन के यथार्थ से हिन्दी के पाठकों का परिचय कराए । यह काम आसान नहीं है, क्योंकि आपको दो दुनियाओं में रहना होता है । आपका प्रयास प्रशंसनीय है । संपादन की कुछ भूलें भी हैं । आख़िरी पन्ने में रुचि की जगह रूचि छप गया है । शुभकामनाएँ ...

-शिवदयाल (बिहार, भारत)

●

पिछले चार -पाँच सालों से कुछ अन्तराल के बाद आपका मेल आता रहा है । पर आप से जुड़ नहीं पाया । आज 'हिन्दी चेतना' का पूरा अंक नेट पर देखा और इतना प्रभावित हुआ कि लिखे बगैर रह नहीं पाया । भारत में पत्रिका के सम्पादक पारिश्रमिक नहीं देते, यह रोग था पर कैनेडा और अमेरिका में भी यह रोग मौजूद है, इसका बड़ा आश्चर्य हुआ । फिर भी विदेश में हिन्दी भाषा का अलख आप जगा रहे हैं, यह बड़ी बात है । आप को दिल से शुभकामनाएँ ।

-रमेश यादव (मुम्बई, भारत)

●

हिंदी चेतना की सामग्री तो स्तरीय रहती ही है, उसकी प्रस्तुति और साज - सज्जा भी मुझे बहुत आकर्षक लगती है । इन बातों के लिए जितनी भी सराहना की जाए, वह कम ही रहेगी । मैं इसके लिए आपका और आपके सहयोगियों का अभिनन्दन करता हूँ । हार्दिक स्नेह सहित,

-रवीन्द्र अग्निहोत्री (आस्ट्रेलिया)

●

'हिन्दी चेतना' के पूरी टीम को बहुत- बहुत बधाई । 'हिन्दी चेतना' पढ़कर मुझे हमेशा ही कुछ नया सीखने को मिला है । इस पत्रिका का हर आलेख, कहानियाँ, कविताएँ, संस्मरण कहने का भाव पूरी सामग्री बहुत सोच समझ कर चुनी जाती है । 'हिन्दी चेतना' का स्तर कभी नापा नहीं जा सकता । यह आज के समाज को ही नहीं बल्कि हमारे साहित्य स्तर को भी उन्नत बना रही है ।

-अदिति मजूमदार (अमेरिका)

●

अभी-अभी 'हिन्दी चेतना' का नया अंक आपके सौजन्य से नेट पर उपलब्ध हुआ । बहुत बढ़िया अंक निकला है । यह आपकी टीम की मेहनत का फल है । निश्चितरूप से इसे हिंदी की श्रेष्ठ पत्रिकाओं में गिना जा सकता है । साहित्य के बहुत से पक्षों को कवर कर लिया गया है । बधाई

-रमेश जोशी (ओहायो, अमेरिका)

●

'हिन्दी चेतना' आई । हमेशा की तरह पहले पृष्ठ से शुरू किया । सारी पढ़कर उठने का इरादा था मगर ....पवन कुमार की ग़ज़ल पर जो अटकी तो अटकी ही रह गयी । मुद्दतों के बाद इतनी

यह रथ भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पहुँचकर अपनी विजय पताका फहरा रहा है

'हिन्दी चेतना' का अंक: ५५ विषयवस्तु तथा प्रस्तुतीकरण एवं साज- सज्जा में एक मॉडल बन सकती है यह ध्यान रखते हुए कि उसका सम्पादन अमेरिका में होता है और इसे श्याम त्रिपाठी और सुधा ओम ढींगरा दो व्यक्ति रात - दिन एक करके इसका सम्पादन करते हैं तथा इसे सर्जनात्मक एवं कलात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ - से- श्रेष्ठतर बनाने का प्रयत्न करते हैं । श्री श्याम त्रिपाठी ने अपने सम्पादकीय में ठीक लिखा है कि विपरीत परिस्थितियों और विदेश की धरती पर हिन्दी की चेतना का रथ खींच रहे हैं । यह रथ भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पहुँचकर अपनी विजय पताका फहरा रहा है और इसके सारथी हैं ये दोनों सम्पादक, कैनेडा की 'हिंदी प्रचारिणी सभा' तथा इसके लेखक और पाठक । हमारे भारतीय प्रवासी डालर अर्जन के साथ भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के प्रचारक तथा उन्नायक हैं । 'आख़िरी पन्ना' में सुधा ओम ढींगरा ने भारतीय समाज में पुस्तकों की उपेक्षा पर सटीक टिप्पणी की है । हमारा हिंदी समाज पुस्तकालयों तथा पुस्तकों के प्रति उदासीन है, जो भाषा - साहित्य - संस्कृति के लिए घातक है । दैनिक समाचार - पत्रों में साहित्य का तो जैसा बहिष्कार कर दिया है । इस अंक में पाठकों के पत्रों की संख्या बढ़ी है, जो इसका प्रमाण है कि पत्रिका लोकप्रिय हो रही है । इंग्लैण्ड में प्रवासी हिन्दी लेखक तेजेन्द्र शर्मा से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत इस अंक की उपलब्धि है । साक्षात्कार कर्ता के प्रश्न सटीक होंगे तभी उत्तर भी सटीक होगा । साक्षात्कार लेना एक कला है और देना भी कला है । तेजेन्द्र शर्मा अनेक वर्षों से लिख रहे हैं और उनकी अब एक महत्त्वपूर्ण लेखक के रूप में पहचान बन चुकी है । मैंने उनकी कहानियाँ पढ़ी हैं और मैं कह सकता हूँ कि वे जीवन के, चाहे वह भारत का हो या परदेश का, जीवन्त चित्रकार हैं । कहानी - रचना की प्रक्रिया, साहित्य का मानवीय सन्दर्भ, विचारधारात्मक साहित्य, प्रवासी साहित्य, भारत का सेक्यूलरवाद आदि पर उनके विचारों में दम है और उनके परिपेक्ष्य में लम्बी बहसें हो सकती हैं । तेजेन्द्र शर्मा कथाकार ही नहीं, विचारक भी हैं और मैं मानता हूँ कि विचार लेखक को बड़ा बनाते हैं । प्रवासी साहित्य पर उनके विचार मैंने पहले भी देखे हैं । मैं केवल इतना कहना चाहता हूँ कि प्रवासी साहित्य को मैं आरक्षण तथा गुणहीन साहित्य के रूप में नहीं देखता, उसे अलग तथा विशिष्ट पहचान देने के लिए साहित्य के साथ 'प्रवासी' शब्द का प्रयोग करता हूँ । विवेक मिश्र , श्याम सखा 'श्याम' उमेश अग्निहोत्री तथा बलराम अग्रवाल की कहानियाँ हृदय स्पर्शी हैं तथा जीवन - सत्य का उद्घाटन करती हैं । इस अंक के आलेख भी नई सामग्री देते हैं । अनीता कपूर का अमेरिका की कवयित्रियों पर लेख पाठकों को पसंद आएगा । हमें ऐसे लेखों की आवश्यकता है । कादम्बरी मेहरा ने अपने लेख में कुछ दो टूक बातें कहीं हैं । वे सत्य हैं और हिंदी वालों को उन पर गम्भीरता-पूर्वक सोचना चाहिए । आस्था नवल की डायरी का पृष्ठ 'ऐमी' एक पूरी रचना है । इस अंक में रचनाओं का इतना वैविध्य है कि मैं इसे एक सम्पूर्ण पत्रिका कह सकता हूँ । हिन्दी की अधिकतर विधाओं की रचनाएँ इसमें हैं । इससे सम्पादकों का श्रम, चयन - दृष्टि तथा प्रस्तुतीकरण- कला का सौन्दर्य देखा जा सकता है । आशा है, 'हिन्दी चेतना' अपने इस माडल को कायम रखेगी ।

-डॉ. कमल किशोर गोयनका (दिल्ली, भारत)

गहराई तक कुछ अन्दर डूब गया । एक-एक शेर दस दस बार पढ़ा ....

तेरे हर नक्श को दिल से जिया है,
तुझे ए ज़िंदगी ढोया नहीं है ।

क्या खूब !

'देखन में छोटे लगें, घाव करें गंभीर' बधाई पवन कुमार !! अल्लाह करे ज़ोर-ए-कलम और ज़ियादा..। मेरी शुभकामनाएँ

-कादम्बरी मेहरा (यूके)

●

समय निकाल कर अंतरजाल पर उपलब्ध 'हिन्दी चेतना' के पिछले सारे अंक देख डाले और चकित रह गई कि अब तक इससे कैसे वंचित रह गई । पिछले अंक में मेरी कहानी 'बाँझ' के प्रकाशित होने पर आभारी हूँ ।

वैसे तो आप की पत्रिका का प्रत्येक अंक अपनी खुश्बू लिये हुए होता है लेकिन ताज़ा पत्रिका के पन्ने खोलने से पूर्व ही मुख पृष्ट पर खिले -अधखिले पुष्प राशि को देख इसमें निहित साहित्यिक सामग्री की सुगन्ध का पूर्वाभास हो गया था ।

कहानियाँ, आलेख, ग़ज़लें, कविताओं का चयन ख़ूब है । आप ने हिन्दी सेवा के साथ -साथ हिन्दी क़लमकारों की हौसला-अफ़ज़ाई का भार भी सेवा क्रम में शामिल किया है, आपका भी जवाब नहीं !

आख़िरी पन्ने में हिन्दी के प्रति व्यक्त सुधा जी की चिंता, सोच वा सलाह अनुपम है ।

पत्रिका के प्रकाशन एवं संपादन में आप की टीम ने मिल -जुलकर जो परिश्रम किया है उसके लिए साधुवाद ।

-शाहिदा बेगम शाहीन (कर्नाटक, भारत)

●

'हिन्दी चेतना' का जुलाई-सितम्बर अंक मिला ...आभार .....!!

जब पत्रिका के लिए नज़्में भेजीं थीं, उसी दिन भारत के एक छोटे से हिंदीतर राज्य 'असम' में रहने वाली इस नाचीज़ को अमेरिका से सुधा ओम ढींगरा जी का फोन आया ..उन्होंने कहा बहुत इच्छा थी आपसे बात करने की .... मैं धन्य हुई... तभी जान पाई कि कितना बड़ा दिल है सुधा जी का ..। आज 'हिन्दी चेतना' का वो अंक मेरे सामने है देख रही हूँ कि पत्रिका कितनी तन्मयता और लगन से निकाली गई है ..सभी सामग्री किसी बड़ी पत्रिका के मुकाबले कहीं कमतर नहीं आँकी जा सकती ...साक्षात्कार, कविताएँ, कहानियाँ, संस्मरण, आलेख, स्तम्भ सभी एक से बढ़के एक ... इसके लिए प्रधान संपादक श्री श्याम त्रिपाठी जी , संपादक सुधा ओम ढींगरा जी, सह संपादक रामेश्वर कम्बोज 'हिमांशु', पंकज सुबीर, अभिनव शुक्ल सभी को मेरी हार्दिक बधाई .....।

सुधा ओम ढींगरा जी द्वारा लिए गए तेजेन्द्र शर्मा जी के साक्षात्कार में उठाए गए तेजेन्द्र जी के सवाल बिलकुल वाजिब लगे कि किसी पुस्तक की पहचान उसमें लिखे साहित्य से होती है न कि 'उसका विमोचन किसने और कहाँ किया गया' उससे .....।

विवेक मिश्र जी की कहानी 'घड़ा' पढ़ कर तो दिमाग की नसें कसमसाने लगीं ....क्या ऐसा भी होता है... ? उफ्फ्फ ...., डॉ. श्याम सखा श्याम जी की कहानी 'कोमा' पहले भी उनके कहानी संग्रह में पढ़ चुकी हूँ ..जीवन का कड़वा सत्य है उनकी इस कहानी में ....भाषांतर में अनिल जनविजय द्वारा अनूदित तातार कवि मूसा जलील की कविताएँ अच्छी लगीं... ।

कुल मिला कर पत्रिका अपनी पहचान छोड़ने में कामयाब है....।

मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ पत्रिका के लिए..।

-हरकीरत 'हीर' (असम, भारत)

●

सभी कहानियाँ पसंद आयीं

'हिन्दी चेतना' का जुलाई अंक मिला । भेजने के लिए आपका आभार । पूरा अंक पढ़ डाला, यह अपने में महत्त्वपूर्ण बात है । इसीसे लगता है कि हिन्दी चेतना में दम है । सबसे पहले आप दोनों के सम्पादकीय और 'आख़िरी पन्ना' पढ़े । त्रिपाठी जी और आपको सबसे पहले तो पुरस्कार मिलने की बधाई । वास्तव में आप लोग बड़े निस्वार्थ भाव से हज़ारों मील दूर बैठे हिंदी की सेवा कर रहे है और दूर तक हिंदी की चेतना जगा रहे हैं । यह अपने में वन्दनीय है, सुधाजी ने हिन्दी वालों में पढ़ने की चेतना जागृत करने की जो बात उठाई है, वह बहुत ज़रूरी है । यह कम दुखद नहीं है कि हिन्दी के लेखकों के बच्चे ही हिंदी नहीं पढ़ते । वे भी ज़्यादतर, अमरीका या ब्रिटेन जाने के सपने देखते हैं । इसके विपरीत वहाँ कर्सिव रीडिंग तथा बच्चों में पुस्तकें पढ़ने की इच्छा जगाने की बात बहुत सार्थक लगती है । काश ! ऐसा यहाँ भी होता । कहानियाँ सभी पसंद आयीं । 'घड़ा' भ्रूण हत्या पर बहुत गहरा कटाक्ष करती है । 'वह एक दिन' में विदेश में बसे बूढ़े दम्पती की व्यथा को बड़ी मार्मिकता से दिखाया गया है । 'कोमा' में श्याम जी ने मरने को विवश पति की विवाहित पत्नी के मर्म को व्यावहारिकता के आगे पराजित होते बड़ी मार्मिकता से दिखाया गया है । लेखक को बधाई जो स्वयं एक डॉक्टर भी है । 'काला समय' पुलिस की मनोवृत्ति का पर्दा फाश करती है । मेरे मित्र तेजेन्द्र शर्मा ने बहुत मार्के की बातें कहीं है, विशेषकर हिंदी सम्मेलनों पर जो अब व्यवसाय का रूप भी लेते जा रहे हैं, सरकारी विश्व हिंदी सम्मलेन तो दक्षिण अफ्रीका में सितम्बर में हो रहा है, जिसमें जाने वालों की सूची पीएमओ ने तैयार की है । वहाँ तो कुछ होगा नहीं, सिवाय सरकारी अफसरों के सैर-सपाटे के । भला तीन दिन में वे और जानेवाले लेखक-गण हिन्दी की कितनी चेतना फैला पाएँगे, यह सबको पता है । अक्टूबर में मारीशस में है, और ऐसा ही एक निजी हिन्दी सम्मलेन अगले साल दुबई में भी आयोजित है । जो संस्थाएँ ये आयोजित कर रही हैं, क्या वे निस्वार्थ-भाव से हिन्दी की सेवा के लिए यह कर रही हैं ? तेजेन्द्र ने अपनी रचना-प्रक्रिया को भी बखूबी बताया है । आपके सवाल बहुत प्रेरक रहे हैं । बधाई । शशि पाधा का संस्मरण बहुत मार्मिक है और सैन्य माहौल का निदर्शन कराता है । डॉ. अनीता कपूर का आलेख विदेश में बसे साहित्यकारों की काफी जानकारी देता है । हस्तीमल हस्ती के ग़ज़ल तथा मधुप पाण्डेय की रचनाएँ अच्छी हैं । सबसे महत्वपूर्ण हैं मूसा ज़लील की कविताएँ । उनका परिचय पहली बार जाना । पहली प्रेम कविता मुझे याद है । सुंदर है और भावनापूर्ण है मौत से पहले ।

बहुत ही समृद्ध अंक है, बधाई । छपाई और सुंदर आवरण भी तारीफ़ के लायक है ।

-मनमोहन सरल (मुम्बई , भारत)

हिन्दी चेतना ने स्वयं मुझे अपना पाठक बना लिया है

'हिन्दी चेतना' का अंक ५५, जुलाई २०१२ देखा । इस पत्रिका का लिंक अलग-अलग दोस्तों से कई बार मेरे पास आया । दोस्तों ने इस पत्रिका की बहुत तारीफ़ की और इसे पढ़ने का अनुरोध भी किया । मैं इसी हिचक में रहा कि विदेश से हिन्दी की क्या पत्रिका निकलती होगी, पत्रिका को देखने में भी समय की बर्बादी होगी और अपनी ही सोच के संकोच में हिन्दी चेतना के किसी भी लिंक को खोल नहीं पाया । इस बार भी जब लिंक्स आए तो मेरी ई-मेल में पड़े रहे । आज पता नहीं कैसे बिना कुछ सोचे मैंने लिंक खोला । मुख पृष्ठ देखते ही इसके आकर्षण में खिंचा पत्रिका के पन्ने पलटता गया । पूरी पत्रिका पढ़कर ही उठा । पहले अपने दोस्तों को धन्यवाद की ईमेल लिखी, अब आप को ईमेल -पत्र लिख रहा हूँ ।

मेरी संकुचित सोच को झटका लगा । ऐसी पत्रिका मैंने भारत में नहीं देखी । सामग्री उच्च कोटि की । प्रस्तुति उत्तम । पत्रिका देख कर पता चलता है कि एक -एक पेज पर काम किया गया है । हर विधा को सम्मानीय स्थान दिया गया है । कहीं कुछ अधिक नहीं कुछ कम नहीं । अनुशासित संतुलित । उद्गार में देहरादून के विनीत कुमार ने अपने पत्र में लिखा है कि कहानी का ट्रीटमेंट और परिवेश बता देता है कि कहानी विदेशी है । मैं कहता हूँ कि देश से बाहर रचे जा रहे साहित्य के सरोकार ही भिन्न होते हैं । यही भिन्नता विदेशों के हिन्दी रचनाकारों को पहचान देती है और पाठकों में भी इस भिन्नता के प्रति जिज्ञासा है । तेजेन्द्र शर्मा के साथ सुधा ओम ढींगरा ने बहुत बेबाक बातचीत की है । सुधा जी ने जब पूछा कि 'कल फिर आना' कहानी में अन्तरंग दृश्य इतने भारी हो गए कि कहानी की संवेदना कहीं खो गई लगी मुझे..क्या अन्तरंग दृश्य को कम करके आप अपनी बात नहीं कह सकते थे तो तेजेन्द्र जी ने भी उसी तरह की बातें कहीं जो आजकल अनामिका और पवन कुमार कह रहे हैं । भाई नाम बिकता है तो उसी के साथ सेक्स भी बेच लो । उससे हंगामा होगा तो चर्चा होगी, इससे शोहरत और बढ़ेगी । बहुत से लेखक इस तरह की कहानियाँ लिख कर सनसनी फैलाते हैं और कहानी की माँग कह कर बचाव कर लेते हैं । अंतरराष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलनों के बारे में तेजेन्द्र जी ने बहुत ही सटीक प्रश्न छोड़े हैं, जिन पर साहित्यकारों को सोचना चाहिए और उसे कार्यान्वित करवाना चाहिए ।

'घड़ा', 'काला समय', 'वह एक दिन' और 'कोमा' कहनियाँ बहुत अच्छी लगीं । हाइकु , कविताएँ, आलेख और संस्मरण भी । संस्मरण तो गज़ब का । विलोम चित्र काव्य शाला और चित्र काव्य शाला नयापन लिए और बेहतरीन लगे । आख़िरी पन्ना सोचने पर मजबूर करता है । अंत में बस यही कहूँगा कि हिन्दी चेतना ने स्वयं मुझे अपना पाठक बना लिया है और अब लिंक का इंतज़ार रहा करेगा । वैसे मैंने ब्लाग सेव कर लिया है ।

-प्रीत पॉल सिंह मखीजा (आर्य नगर, लुधियाना,भारत)

यहाँ उदाहरण के तौर पर वरिष्ठ कथाकारों की दस लघुकथाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं। इन लघुकथाओं के माध्यम से भी लघुकथा की विकास - यात्रा की पड़ताल की जा सकती है। इन रचनाओं में प्रस्थान बिन्दु के रूप में मुंशी प्रेमचन्द की लघुकथा राष्ट्र का सेवक को देखा जा सकता है और उत्कर्ष पर राजेन्द्र यादव की 'अपने पार' को। यहाँ प्रस्थान और उत्कर्ष को लघुकथा की विकास यात्रा के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए। विकास यात्रा में लघुकथा आम आदमी के दु:ख-दर्द की वाणी बनी। मानवीय मूल्यों की स्थापना का प्रयास शुरू हुआ तो समाज में आने वाली विद्रूपता को भी चिह्नित और चित्रित किया जाने लगा। किसी न किसी व्याज से प्रस्तुत लघुकथाओं का यह स्वर मानव जीवन में आ रहे बदलाव को भी रेखांकित करता है।

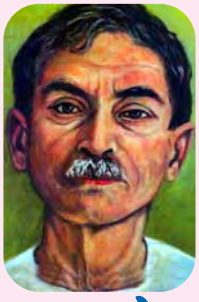

राष्ट्र का सेवक

प्रेमचन्द

राष्ट्र के सेवक ने कहा, ''देश की मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है: नीचों के साथ भाईचारे का सलूक, पतितों के साथ बराबरी का बर्ताव। दुनिया में सभी भाई हैं, कोई नीच नहीं, कोई ऊँच नहीं।''

दुनिया ने जय-जयकार की, ''कितनी विशाल दृष्टि है, कितना भावुक हृदय।''

उसकी सुन्दर लड़की इन्दिरा ने सुना और चिन्ता के सागर में डूब गयी।

राष्ट्र के सेवक ने नीची जाति के नौजवान को गले लगाया।

दुनिया ने कहा, ''यह फरिश्ता है, पैगम्बर है, राष्ट्र की नैया का खेवैया है।''

इन्दिरा ने देखा और उसका चेहरा चमकने लगा।

राष्ट्र का सेवक नीची जाति के नौजवान को मन्दिर में ले गया, देवता के दर्शन कराए और कहा, ''हमारा देवता गरीबी में है, ज़िल्लत में है, पस्ती में है!''

दुनिया ने कहा, ''कैसे शुद्ध अन्त:करण का आदमी है! कैसा ज्ञानी!''

इन्दिरा राष्ट्र के सेवक के पास जाकर बोली, ''श्रद्धेय पिताजी, मैं मोहन से ब्याह करना चाहती हूँ।''

राष्ट्र के सेवक ने प्यार की नज़रों से देखकर पूछा, ''मोहन कौन है?''

इन्दिरा ने उत्साह भरे स्वर में कहा, ''मोहन वही नौजवान है, जिसे आपने गले लगाया, जिसे आप मन्दिर में ले गए, जो सच्चा, बहादुर और नेक है।'' राष्ट्र के सेवक ने प्रलय की आँखों से उसकी ओर देखा और मुँह फेर लिया।

मेरी बड़ाई

सुदर्शन

जिस दिन मैंने मोटरकार खरीदी और उसमें बैठकर गुज़रा, उस दिन मुझे खयाल आया, ''यह पैदल चलने वाले लोग बेहद छोटे हैं और मैं बहुत बड़ा हूँ।''

और जब शाम को मैं और मेरी बड़ाई घर आते तो हम दोनों खुश होते तो लगता जैसे हमारे चेहरे सीढ़ियों के अँधेरे में चमकते हों।

और जब हम सोफ़े पर बैठे तो मेरी छोटी बच्ची एक कुर्सी घसीटकर पास ले आई और उसके ऊपर खड़ी होकर बोली, ''मैं तुमसे बड़ी हूँ। तुम मुझसे छोटे हो।''

और मेरे दिल में यह बात चुभ गई और मैंने मुड़कर अपनी बड़ाई की तरफ देखा, मगर वह बिजली के प्रकाश में गायब हो चुकी थी।

गिलट

उपेंद्रनाथ 'अश्क'

रात मैंने स्वप्न में देखा-मेरे हाथ की दोनों अँगूठियाँ आपस में झगड़ा कर रही हैं-

असली सोने की अँगूठी, गिलट की नकली अँगूठी को डाँट रही थी,''तुझे मेरे बराबर बैठते लज्जा नहीं आती, मोर के पंख लगाकर कौवा मोर नहीं हो जाता। पानी उतरा कि तेरा वास्तविक रूप निकल आएगा। कहीं अँधेरे में जाकर मुँह छिपा। तेरा युग अब बीत गया है।''

नकली अँगूठी ने असली की बात काटकर मेरी ओर संकेत किया, ''हम जिसके हाथ की शोभा बढ़ा रही हैं, स्वयं नकली है। मेरे जैसा ही पानी उस पर भी चढ़ा हुआ है। आज गिलट ही का युग है बहन!''

मैं चौंक पड़ा। मुझे ऐसे लगा, जैसे मेरे सारे आवरण उतर गए हों।

किंतु मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब दूसरे दिन मैंने जिसे देखा, मुझे गिलट की उस अँगूठी जैसा दिखाई दिया।

संस्कृति

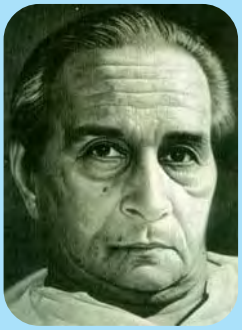

हरिशंकर परसाई

भूखा आदमी सड़क के किनारे कराह रहा था। एक दयालु आदमी रोटी लेकर उसके पास पहुँचा और दे ही रहा था कि दूसरे आदमी ने उसका हाथ खींच लिया। यह आदमी बड़ा रंगीन था।

पहले आदमी ने पूछा, ''क्यों भाई भूखे को भोजन क्यों नहीं देने देते?''

रंगीन आदमी बोला, ''ठहरो, तुम इस प्रकार उसका हित नहीं कर सकते। तुम केवल, उसके तन की भूख को समझ पाते हो, मैं उसकी आत्मा की भूख जानता हूँ। देखते नहीं हो, मनुष्य शरीर में पेट नीचे है और हृदय ऊपर। हृदय की अधिक महत्ता है।''

पहला आदमी बोला, ''लेकिन उसका हृदय पेट पर ही तो टिका हुआ है। अगर पेट में भोजन नहीं गया, तो हृदय की टिक-टिक बंद हो जाएगी।''

रंगीन आदमी हँसा! फिर बोला,''देखो, मैं बतलाता हूँ कि उसकी भूख कैसे बुझेगी।''

यह कहकर वह उस भूखे के सामने बाँसुरी बजाने लगा। दूसरे ने पूछा, ''यह क्या कर रहे हो? इससे क्या हो?''

रंगीन आदमी बोला, ''मैं उसे संस्कृति का राग सुना रहा हूँ। तुम्हारी रोटी से तो एक दिन के लिए ही उसकी भूख भागेगी,संस्कृति के राग से उसकी जनम-जनम की भूख भागेगी।''

वह फिर बाँसुरी बजाने लगा।

और तब वह भूखा उठा। उसने बाँसुरी झपटकर पास की नाली में फेंक दी।

●

धरती का काव्य

श्यामनन्दन शास्त्री

कंधे पर हल धर किसान ने बैलों की रास सँभाली। खेतों की ओर उसके पैर उठने ही वाले थे कि एक कवि आ पहुँचा।

''किसान भैया !'' कवि ने रुकने के स्वर में पुकारा,''आओ, कुछ क्षण बैठो। एक कविता सुनाऊँ।''

''कविता !'' किसान अचकचाया, जैसे उसने कुछ समझा ही नहीं।

''अरे काव्य!'' कवि झुँझलाहट भरे स्वर में बोला,''तुमने काव्य का नाम तक नहीं सुना? अरे, यह वही काव्य है, जिसमें गुलाब के पौधे झूमते हैं, चन्दन की सुगन्ध वायुमंडल को तरोताज़ा बनाती है, चाँदनी गाती है, कल्पना की परियाँ नाचती हैं, नए लोक बनते हैं, मिलते हैं। और जानते हो, इसमें हँसने वाले खेतों पर कभी पाला नहीं पड़ता।''

कवि ने चमक भरी नज़रों से किसान को देखा। सुनकर वह विस्मय में डूब गया। आश्चर्य में गोते लगाते बोला, ''तो क्या इससे पेट भी भरता है?''

''अरे! पेट कैसे भरेगा?'' कवि के कपोलों का ऊपरी भाग सिकुड़कर मुँदती आँखों के पास चला आया,''यह तो कल्पना का काव्य है।''

सुनकर किसान मुस्कराया, बैलों की पूँछ हिलायी, टिटकारी दी और आगे बढ़ गया।

''अरे! सुनते तो जाओ'' कवि ने चिल्लाकर पूछा ''कहाँ चले?''

''धरती का काव्य लिखने''- किसान का उत्तर था।

●

मैं वही भगीरथ हूँ

शरद जोशी

मेरे मोहल्ले के एक ठेकेदार महोदय अपनी माता को गंगा स्नान कराने हरिद्वार ले गए। गंगा के सामने एक धर्मशाला में ठहरे। शाम सोचा, किनारे तक टहल आएँ। वे आए और गंगा किनारे खड़े हो गए।

तभी उन्होंने देखा कि दिव्य पुरुष वहीं खड़ा एकटक गंगा को निहार रहा है। ठेकेदार महोदय उस दिव्य व्यक्तित्व से बड़े प्रभावित हुए। पास गए और पूछने लगे, 'आपका शुभ नाम?'

''मेरा नाम भगीरथ है।'' उस दिव्य पुरुष ने कहा।

''मेरे स्टाफ में ही चार भट भगीरथ है। ज़रा अपना विस्तार के परिचय दीजिए।''

''मैं भगीरथ हूँ, जो वर्षों पूर्व इस गंगा को यहाँ लाया था। उसे लाने के बाद ही मेरे पुरखे तर सके।''

''वाहवा, कितना बड़ा प्रोजेक्ट रहा होगा। अगर ऐसा प्रोजेक्ट मिल जाए तो पुरखे क्या, पीढ़ियाँ तर जाएँ।''

●

भिखारी और चोर

रावी

मेरी वाटिका के द्वार पर वह आया और बोला, ''बाबूजी, अपनी बगीची से कुछ फूल मुझे ले लेने दीजिए।''

फटे-पुरानों कपड़ों से अस्त-व्यस्त रूप में तन ढके उस तरुण बालक को ध्यानपूर्वक देखते हुए मैंने पूछा, ''तुम कौन हो?''

''भिखारी'', उसका उत्तर था, और उसमें सन्देह का कोई स्थान न था।

''भिखारियों को ऐसी चीज न माँगनी चाहिए। तुम चाहो तो मैं तुम्हें एक पैसा या एक रोटी दे सकता हूँ।'' मैंने कहा।

''ये तो मुझे दूसरों से पेट भरने-भर को मिल जाती है।'' उसने कहा और असन्तुष्ट होकर चला गया।

अगले दिन माली ने सूचना दी कि बगीची में कुछ फूलों की चोरी हुई है। मैंने पहरे की व्यवस्था कर दी, किन्तु चोरी का क्रम न रुका। हर रात किसी समय कुछ फूल टूटकर गायब हो जाते।

एक दिन मैंने उसी लड़के को बाजार में देखा। सड़क किनारे बैठा वह फूलों की मालाएँ बना रहा था।

''तुम चोर हो।'' मैंने पास जाकर उसे पकड़ा।

''बिलकुल नहीं बाबूजी, यह आप कैसी बात कहते हैं! मैं तो भिखारी हूँ। भीख के पैसे बचाकर कुछ फूल खरीद लाता हूँ और मालाएँ बनाकर उन्हें बेच देता हूँ । कुछ दिनों बाद मुझे भीख माँगने की जरूरत न रह जाएगी। मुझे चोर बताने का आपके पास कोई सबूत है?''

बालक के स्वर में कड़क थी। उसकी चोरी का मेरे पास कोई सबूत नहीं था। कई लोग हमारी बातचीत सुन रहे थे। ऐसी बेसबूत की बात कहकर मैं उनकी दृष्टि में स्वयं को लज्जित अनुभव कर रहा था। चुप होकर मैं चल दिया।

कुछ दूर पहुँचकर मैंने देखा, बालक मेरे पीछे-पीछे आ रहा है। एकान्त पाकर उसने मुझसे कहा, ''बाबूजी, मैं हूँ तो वही भिखारी और आपकी भीख पर ही पनप रहा हूँ। अन्तर इतना है कि आप अपने हाथ से उठाकर देते तो दुनिया के सामने भी आपका कृतज्ञ होता, किन्तु अब अकृतज्ञ हूँ।''

फूलों की हानि तो मेरे लिए कोई हानि नहीं थी, लेकिन एक बहुत बड़ी वस्तु मेरे हाथ से निकल गई थी और उसमें अपराध मेरा ही था।

●

पानी की जाति

विष्णु प्रभाकर

बी.ए. की परीक्षा देने वह लाहौर गया था। उन दिनों स्वास्थ्य बहुत खराब था। सोचा, प्रसिद्ध डा. विश्वनाथ से मिलता चलूँ। कृष्णनगर से वे बहुत दूर रहे थे। सितम्बर का महीना था और मलेरिया उन दिनों यौवन पर था। वह भी उसके मोहचक्र में फँस गया। जिस दिन डा. विश्वनाथ से मिलना था, ज्वर काफी तेज़ था। स्वभाव के अनुसार वह पैदल ही चल पड़ा, लेकिन मार्ग में तबीयत इतनी बिगड़ी कि चलना दूभर हो गया । प्यास के कारण, प्राण कंठ को आने लगे। आसपास देखा, मुसलमानों की बस्ती थी। कुछ दूर और चला, परन्तु अब आगे बढ़ने का अर्थ खतरनाक हो सकता था। साहस करके वह एक छोटी-सी दुकान में घुस गया। गाँधी टोपी और धोती पहने हुए था। दुकान के मुसलमान मालिक ने उसकी ओर देखा और तल्खी से पूछा, ''क्या बात है? ''

जवाब देने से पहले वह बेंच पर लेट गया। बोला, ''मुझे बुखार चढ़ा है। बड़े ज़ोर की प्यास लग रही है। पानी या सोडा, जो कुछ भी हो, जल्दी लाओ! ''

मुस्लिम युवक ने उसे तल्खी से जवाब दिया, ''हम मुसलमान हैं।''

वह चिनचिनाकर बोल उठा, ''तो मैं क्या करूँ ? ''

वह मुस्लिम युवक चौंका। बोला, ''क्या तुम हिन्दू नहीं हो? हमारे हाथ का पानी पी सकोगे? ''

उसने उत्तर दिया, ''हिन्दू के भाई, मेरी जान निकल रही है और तुम जात की बात करते हो।जो कुछ हो, लाओ!''

युवक ने फिर एक बार उसकी ओर देखा और अन्दर जाकर सोडे की एक बोतल ले आया। वह पागलों की तरह उस पर झपटा और पीने लगा।

लेकिन इससे पहले कि पूरी बोतल पी सकता, उसे उल्टी हो गई और छोटी-सी दुकान गन्दगी से भर गई, लेकिन उस युवक का बर्ताव अब एकदम बदल गया था। उसने उसका मुँह पोंछा, सहारा दिया और बोला, ''कोई डर नहीं। अब तबीयत कुछ हल्की हो जाएगी। दो-चार मिनट इसी तरह लेटे रहो। मैं शिंकजी बना लाता हूँ।''

उसका मन शांत हो चुका था और वह सोच रहा था कि यह पानी, जो वह पी चुका है, क्या सचमुच मुसलमान पानी था?

●

अपने पार

राजेन्द्र यादव

पापा नहीं हैं। यहाँ सिर्फ़ मम्मी हैं। उनकी बहुत-सी सहेलियाँ हैं। कुछ देर में ही वे अपनी और अपने बच्चों की बातें करने लगती हैं, लेकिन बाहर खेलने जाता हूँ तो वहाँ सिर्फ़ लड़के होते हैं या आदमी। लड़के बहुत शैतान हैं। मारते हैं, कपड़े फाड़ देते हैं, मेरी चीज़ छीन लेते हैं। उनकी बातें भी बहुत गन्दी होती हैं। वे मुझे अपने साथ नहीं खिलाते। आदमी बहुत जल्दी भूल जाते हैं। मेरी तरफ ध्यान नहीं देते। कहते हैं, मैं इतना बड़ा होकर भी गोदी के बच्चों जैसी हरकतें करता हूँ। तुतलता हूँ। लड़कियाँ शैतान लड़कों के साथ ही क्यों खेलती हैं? मैं घर आ जाता हूँ। मम्मी से, नौकरानी से लड़ता हूँ। ज़िद करता और ठुनकता हूँ। मम्मी की साड़ी पकड़े-पकड़े इधर से उधर घूमता हूँ। उसे चिपककर सोता हूँ। मम्मी से मुझे नफरत है। मैं उसे मुक्के मारता हूँ।

साल दो साल में हम लोग पापा से मिलने जाते हैं। अक्सर मेरी बर्थ-डे तभी होती है। पापा खूब प्यार करते हैं। आइसक्रीम खिलाते हैं, कपड़े-खिलौने दिलाते हैं। हर बार उनके साथ एक औरत होती है। पापा मुझसे कहते हैं, ''ये तुम्हारी मम्मी हैं।'' मेरी मम्मी वैसे तो गुमसुम बैठी रहती हैं, लेकिन जब पापा मुझसे यह बात कहते हैं तो दूसरी तरफ देखने लगती हैं। गले की जंजीर को निकालकर दांतों से पकड़ लेती हैं। मेरा मन होता है कि मैं उसका कंधा पकड़कर पूछूँ,''तुम मेरे लिए एक पापा नहीं ला सकतीं? मुझे तुम्हारे गले के हाथ डालने वाले अंकल नहीं,पापा चाहिए....''मगर मैं कुछ नहीं बोलता।'नई मम्मी' को देख लेता हूँ। वह मुझे बड़े प्यार से आइसक्रीम खिलाती हैं। मेरा मन करता है, छूटकर अपनी मम्मी के पास चला जाऊँ।

वापस आकर मैं पाँव पटकता हूँ, गिलास फोड़ता हूँ, बाल नोचता हूँ। मम्मी कहती है, ''बिलकुल अपने पापा की तरह कर रहा है।'' फिर वह रोने लगती हैं, पलंग पर लेटकर। उसे रोता देखकर मैं भी रोने लगता हूँ। उसे चूमता हूँ। उससे लिपटता हूँ। उसकी छातियों पर लदकर, उसके पल्ले से आँखें पोंछता हूँ। मम्मी मुझे अजीब-अजीब आँखों से देखती रहती हैं। लगता है, वह मुझे पहचानती नहीं हैं। ध्यान से देखकर कुछ याद करने की कोशिश कर रही हैं। पता नहीं, मम्मी को देखते देखकर मुझे क्या हो जाता है। लगने लगता है जैसे मैं, मैं नहीं , पापा हूँ....फिर हम दोनों चिपककर सो जाते हैं....

●

नैतिकता का बोध

रघुवीर सहाय

एक यात्री ने दूसरे से कहा, ''भाई जरा हमको भी बैठने दो।''

दूसरे ने कहा, ''नहीं! मैं आराम करूँगा।'' पहला आदमी खड़ा रहा। उसे जगह नहीं मिली; पर वह चुपचाप रहा।

दूसरा आदमी बैठा रहा और देखता रहा। बड़ी देर तक वह उसे खड़े हुए देखता रहा। अचानक उसने उठाकर जगह कर दी और कहा, ''भाई अब मुझसे बरदाश्त नहीं होता। आप यहाँ बैठ जाइए।''

●

Shil K. Sanwalka, Q.C.
Barrister, Solicitor & Notary

18 WYNFORD DRIVE,
SUITE #602,
DON MILLS, ONT. M3C 3S2

Telephone: (416) 449-7755
Fax: (416) 449-6969

sksanwalka@rogers.com

लघुकथा की विकास यात्रा में देश-विदेश की उन लघुकथाओं का अत्यधिक महत्त्व है ;जिन्होंने इस विधा के लिए मेरुदण्ड का कार्य किया । आधारशिला-देशान्तर के तहत ऐसी ही कुछ लघुकथाओं की प्रस्तुति है। इन रचनाओं से इस बात की भी पुष्टि होती है कि लघुकथा अपने आप में स्वतंत्र विधा थी और अनेक महान रचनाकारों को भी अभिव्यक्ति हेतु इस विधा की जरूरत पड़ी । लघुकथा के बीज पंचतंत्र,हितोपदेश,बोध कथाओं आदि में तलाशे जाते हैं। यह सर्व स्वीकृत अभिमत है कि दो समानान्तर धाराएँ शुरू से ही विद्यमान रही हैं। खलील ज़िब्रान को जहाँ एक ओर उपदेश और सीख देने के लिए लिखना पड़ा,वहीं निद्राजीवी, भाई-भाई, अस्संवाद जैसा सर्जन किया जो आज भी सामयिक है एवं समर्थ रचनाकारों को चुनौती देता है। आज हम कहते हैं कि लघुकथाकारों को नए विषयों की तलाश करनी चाहिए। देशान्तर में प्रस्तुत लघुकथाएँ विषय वैविध्य की दृष्टि से चमत्कृत करने वाली हैं । वर्षों पहले दिग्गज कथाकारों द्वारा लिखी गई इन रचनाओं की नींव पर आज की लघुकथा सिर उठाए खड़ी है।

किरिच

अलेग्जांद्रु साहिया

(अनुवाद-कमला जोशी)

जादूगर अपना खेल शुरू करने वाला था। लोग आते जा रहे थे। गेरला ने जनता की उत्सुकता को देखते हुए उसी वक्त खेल शुरूकर दिया।

किसान बहुत खुश थे। वे तालियाँ बजाते और ऊँची आवाज में कहते,''गेरला।''

जादूगर का उत्साह भी पूरे ज़ोर पर था। जब उसने अपनी तीन तलवारों को सूर्य के प्रकाश में चमकाया और सहसा तलवारें जादूगर के गले में गायब हो गई, तो हर्ष की ध्वनि मानो आकाश चूमने लगी।

तभी अचानक एक कठोर आवाज भीड़ पर छा गई, ''झूठा,मक्कार! यह हमें धोखा दे रहा है। इसकी तलवार असली नहीं है। इसे मेरी किरिच निगलने को दो, तब देखें।''

''हाँ,यह ठीक है,'' सैकड़ों किसान विद्रोह के स्वर में चिल्लाए।

''मैं कहता हूँ मिहाइल गेरला, यदि तुम अपने करिश्में के बारे में विश्वास कराना चाहते हो, तो तुम्हें किरिच निगलनी होगी।''

''हाँ,, हाँ,, लोग चिल्लाए। गेरला धोखेबाज है,खूसट बूढ़ा,मक्कार!''

जादूगर ने देखा, उसका अस्तित्व खतरे में है, उसकी बीसियों वर्षो की ख्याति और प्रतिष्ठा सदा के लिए धूल में मिल रही है। उसने अपनी पेटी में उन विश्वविख्यात तलवारों को रख लिया और सार्जेंट की किरिच को कंपित हाथों से ले लिया।

सार्जेंट व्यंग्य से मुस्कराया। भीड़ साँस रोके सब देखती रही। जादूगर ने किरिच को अपनी दो उँगलियों में ले लिया और उसने उसे गले में डालने की कोशिश की। वह आधा ही निगल पाया था कि तेजी से उसने उसे खींच कर बाहर निकाल लिया। फिर उसे अपनी आस्तीन पर पोंछा और पोंछ कर पूरी किरिच उसने गले के अंदर उतार ली। केवल मूठ बाहर रह गई थी, जो उसके ओठों के पास रुकी थी। सहसा एक घबराए पक्षी की तरह वह काँपा,जैसे उड़ने की कोशिश कर रहा हो। प्रशंसा की आवाजें फूट पड़ी। किसान पागलों की तरह चिल्ला उठे, ''गेरला शाबाश! गेरला जिंदाबाद! शाबाश!''

गेरला ने काँपते हाथों से किरिच की मूठ को पकड़ा और जैसे ही उसकी बाहर खींचा, उसके गले से खून की धार फूट पड़ी। गेरला कुछ बोलना चाहता था। वह हकलाया। फिर सार्जेंट की किरिच के पास, कुर्सी से लुढ़क कर गिर पड़ा।

प्रेम

इवान तुर्गनेव

(अनुवाद-सुकेश साहनी)

शिकार से लौटते हुए मैं बगीचे के मध्य बने रास्ते पर चला जा रहा था, मेरा कुत्ता मुझसे आगे-आगे दौड़ा जा रहा था। अचानक उसने चौंककर अपने डग छोटे कर दिए और फिर दबे कदमों से चलने लगा, मानो उसने शिकार को सूँघ लिया हो। मैंने रास्ते के किनारे ध्यान से देखा। मेरी नज़र गौरैया के उस बच्चे पर पड़ी जिसकी चोंच पीली और सिर रोएँदार था। तेज़ हवा बगीचे के पेड़ों को झकझोर रही थी। बच्चा घोंसले से बाहर गिर गया था। और अपने नन्हें अर्द्धविकसित पंखों को फड़फड़ाते हुए असहाय-सा पड़ा था।

कुत्ता धीरे-धीरे उसके नज़दीक पहुँच गया था। तभी समीप के पेड़ से एक काली छाती वाली बूढ़ी गौरैया कुत्ते के थूथन के एकदम आगे किसी पत्थर की तरह आ गिरी और दयनीय एवं हृदयस्पर्शी चीं चीं चूँ चूँ चें चें के साथ कुत्ते के चमकते दाँतों वाले खुले जबड़े की दिशा में फड़फड़ाने लगीं। वह बच्चे को बचाने के लिए झपटी थी और अपने फड़फड़ाते पंखों से उसे ढक- सा लिया था। लेकिन उसकी नन्ही जान मारे डर के काँप रही थी, उसकी आवाज़ फट गई और स्वर बैठ गया था। उसने बच्चे की रक्षा के लिए खुद को मौत के मुँह में झोंक दिया था।

उसे कुत्ता कितना भयंकर जानवर नज़र आया होगा! फिर भी यह गौरैया अपनी ऊँची सुरक्षित डाल पर बैठी न रह सकी। खुद को बचाए रखने की इच्छा से बड़ी ताकत ने उसे डाल से उतरने पर मजबूर कर दिया था। मेरा टेजर रुक गया, पीछे हट गया जैसे उसने भी इस ताकत को महसूस कर लिया था।

मैंने कुत्ते को जल्दी से वापस बुलाया और सम्मानपूर्वक पीछे हट गया। नहीं, हँसिए नहीं। मुझमें उस नन्हीं वीरांगना चिड़िया के प्रति, उसने प्रेम के आवेग के प्रति श्रद्धा ही उत्पन्न हुई।

मैंने सोचा-प्रेम,मृत्यु और मृत्यु के डर से, कहीं अधिक शक्तिशाली है। केवल प्रेम पर ही जीवन टिका हुआ है और आगे बढ़ रहा है।

दीक्षा

एतगार केरेत

(अनुवाद-जितेन्द्र भाटिया)

डैड ने मुझे बार्ट सिम्पसन का गुड्डा दिलवाने से मना कर दिया। मम्मा ने तो हाँ कर दी थी, लेकिन डैड ने कहा, नहीं। मैं बहुत बिगड़ता जा रहा हूँ । उन्होंने कहा, ''अब कोई बताए'', उन्होंने मम्मा को डाँटा, ''क्यों लेकर दिया जाए इसे वह गुड्डा ? तुम भी बस, इसके मुँह से रुलाई फूटी नहीं कि झट तैयार! डैड ने कहा कि मुझे पैसे की कोई कद्र नहीं है। और अगर अभी से यह कद्र पता न चली तो मैं फिर कब सीखूँगा? जिन बच्चों को माँगते ही झट से बार्ट सिम्पसन का गुड्डा मिल जाता है, वे बड़े होकर मवाली बनते हैं, दुकानों से सामान चुराते हैं, क्योंकि उन्हें मनचाही चीजों को आसानी से पा लेने की आदत पड़ चुकी होती है। इसलिए बार्ट सिम्पसन के गुड्डे की जगह उन्होंने मुझे चीनी मिट्टी का एक बेढंगा सूअर लाकर दिया जिसकी पीठ में एक लम्बी फाँक बनी हुई थी। अब मैं ठीक से बड़ा होऊँगा और मवाली नहीं बनूँगा।

हर सुबह अब मुझे चाहे कितना ही खराब क्यों न लगे, दूध का एक कप पीना पड़ता है। मलाई वाले कप का एक शेकेल मिलता है, बिना मलाई वाले का आधा। और अगर मैं फौरन उल्टी कर दूँ तो कुछ नहीं मिलता। सिक्कों को मैं सूअर में डालूँगा इतने पैसे हो जाएँगे कि वह हिलाने पर आवाज नहीं करेगा तो मुझे स्केटिंग करते बार्ट सिम्पसन का गुड्डा मिल जाएगा। डैड कहते हैं कि यही ठीक है, ऐसे मुझे कुछ सीखने का मौका तो मिलेगा।

सूअर वैसे है बहुत प्यारा। उसे छुओ तो उसकी नाक ठण्डी -ठण्डी लगती है और उसकी पीठ में शेकेल का सिक्का डालो तो वह मुस्कराता है। आधा शेकेल डालो तब भी वह मुस्कराता है। मैंने उसे नाम दिया है पैसेक्सन। उस आदमी के नाम पर जो कि बहुत पहले हमारे लैटरबॉक्स में रहता था। और डैड बहुत कोशिश के बाद भी जहाँ से उसका लेबल उतार नहीं पाए थे। पेसैक्सन मेरे दूसरे खिलौनों की तरह नहीं है, वह बहुत शान्त है, क्योंकि उसके भीतर रोशनियाँ, स्प्रिंग और लीक होने वाली बैटरियाँ नहीं हैं। हाँ इतना ध्यान जरूर रखना पड़ता है कि कहीं वह टैबल से नीचे छलांग न लगा दे। ''सम्भल के, पेसैक्सन! तुम चीनी मिट्टी के बने हो!'' उसे झुककर फर्श की ओर ताकते देखकर मैं उससे कहता हूँ। वह मेरी ओर देखकर मुस्कराता है और बहुत धीरज के साथ इन्तजार करने लगता है कि मैं उसे हाथ में लेकर नीचे उतारूँ । जब वह मुस्कराता है तो मुझे उस बहुत प्यार आता है। हर सुबह सिर्फ़ उसके लिए ही मैं मलाई वाले दूध का कप पीता हूँ, ताकि उसकी पीठ में शेकेल का सिक्का डालते हुए मुझे दिखाई दे सके कि उसकी उस मुस्कराहट में जरा भी फर्क नहीं आया है। ''आई लव यू पेसैक्सन!'' मैं उसे बताता हूँ, ''सच्ची,मैं तुम्हें मम्मा और डैड से भी ज्यादा प्यार करता हूँ और हमेशा करूँगा, फिर चाहे तुम दुकानें लूटो या कुछ भी करो! लेकिन अगर इस टेबल से नीचे कूदे तो बस, भगवान ही तुम्हें बचाए!''

कल डैड आए, पेसैक्सन को टेबल से उठाया और उसे उलटकर बुरी तरह से हिलाने लगे। ''सम्भल के डैड!'' मैंने उनसे कहा, ''पेसैक्सन के पेट में दर्द होने लगेगा!'' लेकिन डैड बोले, ''यह तो बिलकुल भी आवाज नहीं कर रहा! जानते हो योआवि, इसका क्या मतलब है? इसका मतलब है कि कल तुम्हें तुम्हारा बार्ट सिम्पसन का स्केटिंग करने वाला गुड्डा मिलने वाला है!'' ''ग्रेट डैड!'' मैंने कहा, ''बार्ट सिम्पसन का वही वाला गुड्डा न? लेकिन पेसैक्सन को ऐसे मत हिलाओ! उसे जरा भी अच्छा नहीं लगता।'' डैड ने पेसैक्सन को वापस टेबल पर रख दिया और मम्मा को बुलाने चले गए। जरा देर बाद वे मम्मा को एक हाथ से खींचते हुए भीतर आए। उनके दूसरे हाथ में हथौड़ा था। ''देखा, मैंने ठीक कहा था!'' उन्होंने मम्मा से कहा, ''अब इस लड़के को चीजों की कद्र सीखने का मौका मिल रहा है! क्यों योआवि?'' ''हाँ , डैड!मैंने कहा, ''लेकिन यह हथौड़ा किसके लिए है?'' उन्होंने मम्मा से कहा, ''यह तुम्हारे लिए है!'' डैड ने हथौड़ा मेरे हाथ में देते हुए कहा, ''लेकिन जरा सम्भलकर!'' ''ठीक है!'' मैंने कहा और सचमुच बहुत सम्भालकर उस हथौड़े को मैंने हाथ में पकड़ लिया। लेकिन जब कुछ मिनट गुजर चुके तो डैड तंग आकर बोले, ''चलो भी अब, फोड़ डालो इस सूअर को!''

''क्या?'' मैंने पूछा, ''पेसैक्सन को!''

डैड ने कहा, ''चलो फोड़ो इसे जल्दी! तुमने बहुत मेहनत से इतने दिनों में इसे पूरा भरा है और अब इसके बदले तुम्हें बार्ट सिम्पसन मिलना ही चाहिए!''

पेसैक्सन मेरी ओर देखकर मुस्कराया। उसकी उदास मुस्कराहट चीनी मिट्टी के उस सूअर की थी, जिसे पता चल गया हो कि उसका अन्त आ चुका है। भाड़ में जाए बार्ट सिम्पसन! क्या मैं अपने दोस्त के सिर पर हथौड़ा मारूँगा? ''मुझे बार्ट सिम्पसन नहीं चाहिए!'' मैंने डैड को हथौड़ा लौटाते हुए कहा, ''मेरे लिए पेसैक्सन ही बहुत है!''

''तुम समझते क्यों नहीं!'' डैड बोले, ''यही ठीक तरीका है। तुम्हें कुछ सिखाने के लिए ही हम यह कर रहे हैं! लाओ, तुम कहो तो मैं ही इसे फोड़

देता हूँ ।'' डैड ने हथौड़ा उठा भी लिया था और मैं मम्मा की घबराई आँखों और पेसैक्सन की थकी हुई मुस्कराहट को देखकर सोचने लगा था कि अब मुझे ही कुछ करना है। अगर मैंने कुछ नहीं किया तो सब खत्म हो जाएगा। ''डैड !'' मैंने उनकी टाँग को भींच लिया।'

'क्या है, योआवि?'' डैड ने पूछा। उनका हथौड़ा अब भी हवा में उठा हुआ था।

''मुझे एक शेकेल और चाहिए! प्लीज!!'' मैं गिड़गिड़ा रहा था, ''कल मुझे दूध पीने के बाद एक शेकेल और देना, इसमें डालने के लिए, फिर उसके बाद हम इसे फोड़ेंगे, प्रॉमिस!''

''एक और शेकेल?'' डैड ने मुस्कराकर हथौड़ा टेबल पर रख दिया। ''दो? मैंने इस लड़के को कितना समझदार बना दिया है।''

'हाँ, समझदार!'' मैंने कहा, ''कल सुबह कल....'' मेरी आवाज़ गले में फँसती जा रही थी।

उन दोनों के कमरे से चले जाने के बाद मैंने पेसैक्सन को कसकर भींचा तो मेरी रुलाई निकल गई। पेसैक्सन कुछ नहीं बोला, सिर्फ़ मेरी हथेलियों के बीच दुबका वह रह-रहकर काँपता रहा। ''घबराओ मत!'' मैंने उसके कान में फुसफुसाकर कहा, ''मैं तुम्हें बचाऊँगा।''

रात में मैं इन्तज़ार करता रहा कि बाहर के कमरे में बैठे डैड कब टी वी बन्द करके सोने जाते हैं। फिर उसके बाद मैं चुपचाप उठा पेसैक्सन के साथ बाहर पोर्च में निकल आया। अँधेरे में काफी देर तक चलने के बाद हम झाड़ियों वाले एक मैदान में पहुँचे।

''सूअरों को खेत बहुत अच्छे लगते हैं।'' मैंने पेसैक्सन को जमीन पर लिटाते हुए कहा, ''खास तौर पर झाड़ियों वाले खेत! तुम्हें यहाँ बहुत अच्छा लगेगा!'' मैं जवाब का इन्तज़ार करता रहा लेकिन पेसैक्सन कुछ नहीं बोला। और जब मैंने अलविदा कहने के लिए उसकी नाक को छुआ तो उसने आखिरी बार उदासी से मेरी ओर देखा। उसे पता था कि अब इसके बाद वह कभी मुझे देख नहीं पाएगा।

●

बच्ची और समुद्र

तोरिज फ़राज़मंद (ईरानी)

(अनुवाद-हसन जमाल)

हम गर्मियों में समुद्र के किनारे पर गए। मेरी बच्ची ने कहा, ''अब्बू! समन्दर को अपने साथ घर लेते जाएँ ''।

वापसी पर हमने समुद्र को बस की छत पर सवार कर लिया। सिर्फ़ मुझे और मेरी बच्ची को पता था कि हम समुद्र को साथ ला रहे हैं। रास्ते में समुद्र का साथ ला रहे हैं। रास्ते में समुद्र में तूफान आया। पानी बस की खिड़कियों से अन्दर आने लगा। मुसाफिर समझ रहे थे कि बारिश हो रही है। सिर्फ़ मैं और मेरी बच्ची जानते थे कि हमारे सिरों पर समुद्र ठाठें मार रहा है।

हमने समुद्र को अपने छोटे-से आँगन के एक कोने में जगह दे दी। शाम को मैं और मेरी बच्ची उसके किनारे बैठ जाते, मौजों को देखते और हँसते रहते।

''अब्बू ! आप समन्दर को देख रहे हैं?''

''हाँ ।''

''मौजों की आवाजें सुन रहे हैं?''

''हाँ ।''

''आपको बादबानी कश्तियाँ नज़र आ रही हैं?''

''हाँ ।''

''अब्बू! बैठिए, देखते हैं।''

एक दिन उसकी नन्ही-मुन्नी बिल्ली समुद्र में गिर पड़ी। बिल्ली आँगन के एक कोने में मरी पड़ी थी। मेरी बच्ची रो पड़ी। मैं भी दिल-ही-दिल में रो दिया। सिर्फ़ मुझे और मेरी बच्ची को पता था कि बिल्ली समुद्र के बग़ैर रह गए हैं?''

''हाँ ।''

''वहाँ की मछलियों से समन्दर छिन गया है?''

''हाँ ।''

''वहाँ की कश्तियाँ समन्दर से महरूम हो गई हैं?''

''हाँ ।''

''अब्बू! समन्दर को वापस छोड़ आएँ ?''

''उस रात को हम मौजों की आवाजें सुनते रहे। अगले दिन सिर्फ़ मुझे और मेरी बच्ची को पता था कि समुद्र पहाड़ों के उस पार चला गया है।

●

अलाव और चीटियाँ

सोल्जेनित्सिन

मैंने एक गला हुआ लट्ठा, बगैर यह ध्यान किए कि इस पर जीवित चीटियाँ हैं, जलते अलाव में फेंक दिया।

लट्ठा चटचटाने लगे। चीटियाँ हड़बड़ाकर निराशा से चारों तरफ दौड़ पड़ीं। वे ऊपर की ओर दौड़ी, लेकिन लपटों से झुलस जाने के कारण छटपटाकर रह गई। मैंने लट्ठे को पकड़ा और उसे एक तरफ कर दिया। तब उनमें से काफी चीटियों ने स्वयं को रेत पर या चीड़ की सुइयों पर आकर सुरक्षित कर लिया।

लेकिन, यह बेहद आश्चर्य की बात थी, वे आग के पास से भागी नहीं।

वे तब तक भयाक्रांत नहीं हुई, जब तक कि वे पलटीं, उन्होंने चक्कर काटे। कोई अबूझ ताकत उन्हें बार-बार अपने परित्यक्त देश की तरफ खींचती रही। उनमें से बहुत-सी ऐसी भी थीं, जो जलते लट्ठे पर चढ़ गई, उस पर चारों तरफ तड़फड़ाईं और उसी पर शहीद हो गईं।

●

तस्वीर (जापानी)

यासुनारी कबाबाता

(अनुवाद-जितेन्द्र भाटिया)

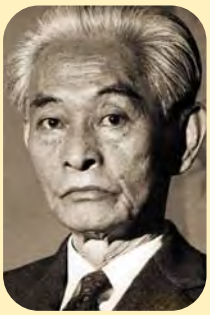

हालाँकि ऐसा कहना बदतमीजी होगी, लेकिन शायद अपनी बदसूरती के कारण ही वह कवि बन गया था। उसी बदसूरत आदमी, यानी कवि ने मुझे यह बात सुनाई।

'मुझे तस्वीरों से चिढ़ है। और शायद ही कभी मुझे तस्वीर खिंचवाने का ख्याल आया होगा। सिर्फ़ एक बार चार-पाँच साल पहले अपनी सगाई के मौके पर एक लड़की के साथ मैंने तस्वीरें खिंचवाई थीं। मुझे उस लड़की से बेहद प्यार था। मुझे नहीं लगता कि वैसी लड़की दुबारा मेरी ज़िन्दगी में आएगी। अब वे तस्वीरें एक खूबसूरत यादगार की शक्ल में मेरे पास हैं।

खैर, पिछले साल एक पत्रिका मेरी तस्वीर छापना चाहती थी। मैंने अपनी मंगेतर और उसकी बहन के साथ खिंचवाई गई एक तस्वीर में से अपना चित्र काटकर उस पत्रिका को भेज दिया। फिर अभी कुछ दिन पहले एक अखबार का रिपोर्टर मुझसे मेरा चित्र माँगने आया। मैंने कुछ देर तक सोचा, फिर आखिरकार अपनी और अपनी मंगेतर की तस्वीर को दो हिस्सों में काटकर अपनी तस्वीर मैंने रिपोर्टर को दे दी। तस्वीर देते वक्त उसे ताकीद कर दी कि बाद में वह उसे लौटा दें। लेकिन उसके वापिस मिलने की उम्मीद बहुत कम है। खैर, कोई फर्क नहीं पड़ता।

'मैं कह तो रहा हूँ कि कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन जब मैंने उस आधी तस्वीर को देखा जिसमें मेरी मंगेतर अकेली छूट गई थी, तो मैं काफी चौंक गया। क्या यह वही लड़की थी? चलिए, आपको समझाऊँ.....।

'वह लड़की बहुत खूबसूरत और आकर्षक थी। सतरह साल की उम्र और प्यार में साराबोर। लेकिन जब मैंने अपने हाथ की उस तस्वीर को देखा, जिसमें वह मुझसे अलग कट गई थी, तो अहसास हुआ कि वह लड़की किस कदर बोदी थी। और अभी, एक क्षण पहले तक मेरे लिए वह दुनिया की सबसे सुन्दर तस्वीर थी.....मुझे लगा जैसे मैं अचानक एक लम्बे सपने से जाग गया हूँ। अपना बेशकीमती खजाना मुझे भुरभुराता हुआ-सा लगा...। इस बिन्दु पर आकर कवि की आवाज और धीमी हो गई।

अखबार मैं जब वह मेरी तस्वीर देखेगी तो यकीनन उसे भी ऐसा ही लगेगा। उसे यह सोचकर ही दहशत होगी कि उसने मुझ जैसी आदमी से एक क्षण के लिए भी प्यार किया था।

'बस इतना ही किस्सा है!'

''लेकिन फिर भी मैं सोचता हूँ कि अगर वह अखबार हम दोनों की इकट्ठी तस्वीर छापे, जैसे वह खींची गई थी, तो क्या वह मेरे पास दौड़ी चली आएगी कि मैं कितना बढ़िया आदमी हूँ।''

●

निद्राजीवी

खलील जिब्रान

(अनुवाद : सुकेश साहनी)

मेरे गाँव में एक औरत और उसकी बेटी रहते थे, जिनको नींद में चलने की बीमारी थी। एक शांत रात में, जब बाग में घना कोहरा छाया हुआ था, नींद में चलते हुए माँ बेटी का आमना-सामना हो गया।

माँ उसकी ओर देखकर बोली, ''तू? मेरी दुश्मन,मेरी जवानी तुझे पालने-पोसने में ही बर्बाद हो गई। तूने बेल बनकर मेरी उमंगों के वृक्ष को ही सुखा डाला। काश! मैंने तुझे जन्मते ही मार दिया होता।''

इस पर बेटी ने कहा, ''ऐ स्वार्थी बुढ़िया! तू मेरे सुखों के रास्ते के बीच दीवार की तरह खड़ी है! मेरे जीवन को भी अपने जैसा पतझड़ी बना देना चाहती है! काश तू मर गई होती!''

तभी मुर्गे ने बाग दी और वे दोनों जाग पड़ीं।

माँ ने चकित होकर बेटी से कहा, ''अरे, मेरी प्यारी बेटी, तुम!''

बेटी ने भी आदर से कहा, ''हाँ, मेरी प्यारी माँ !''

●

हंस और मेघ

हाइ दाइक्वान

नीले आसमान में मेघ की भेंट हंस से हुई। मेघ ने आत्मतुष्टि के भाव से हंस से कहा, ''तुमने गौर किया होगा, मेरे दोस्त, तुममें और मुझमें कितनी समानता है। हम दोनों नीले आकाश में उड़ते हैं।''

''ऐसा नहीं है,'' हंस ने जवाब दिया। ''हम समान नहीं हैं। मैं हवा के खिलाफ चलता हूँ; तुम उसके साथ प्रणय-सूत्र में बँध गए हो।''

●

ठण्डी आग

लू शुन

(अनुवाद-बलराम अग्रवाल)

मैंने स्वप्न में देखा कि मैं बर्फ़ के पहाड़ पर दौड़ रहा हूँ ।

बर्फ़ीले आकाश को छूता यह एक विशाल और ऊँचा पहाड़ था। आकाश बर्फ़ के बादलों से अटा पड़ा था। हर टुकड़ा केंचुली-सा सफेद लग रहा था। पहाड़ की तलहटी में बर्फ़ का जंगल था। साइप्रस और पाईन के पेड़ों की पत्तियाँ और तने-सब बर्फ़ के थे।

लेकिन अचानक मैं बर्फ़ के पहाड़ पर दौड़ रहा हूँ।

नीचे-ऊपर बर्फ़ानी-ठंड थी, राख-सा भुरभुरापन था। उस पीली बर्फ़ पर अनगिनत सुर्ख साये थे, मूँगई जालों में गूँथें हुए। एकदम अपने पाँवों के नीचे मैंने एक लौ देखी। यह ठण्डी आग थी। बहुत भयानक लेकिन पूरी तरह स्थिर । पूरी तरह जमी हुई। काला-धुआँ जमी मूँगई टहनियों-सी एकदम जीवन्त। भट्टी से निकलती हुईसी। इसी के बिम्ब-प्रतिबिम्ब अनगिनत सायों के रूप में घाटी को सुर्ख बनाए हुए थे।

अहा! एक शिशु की तरह, धधकती-भट्टी से निकलती लपलपाती लपटों और तैरते जहाजों से उत्पन्न झागों को देखना मुझे हमेशा ही भला लगता रहा है। और,न सिर्फ़ देखना ; बल्कि पास से देखना। दुर्भाग्य,कि वे हर पल बदल रहे थे और स्थिर आकार में नहीं रह पा रहे थे। उन पर मुश्किल से ही दृष्टि जमती थीं और कोई स्थायी-प्रभाव नहीं पड़ता था।

ठण्डी आग, मैंने आखिर तुम्हें पा ही लिया।

जैसे ही मैंने ठण्डी आग को पास से देखने को उठाया, मेरी उँगलियाँ उसकी ठंडक से झुलस गईं। लेकिन दर्द की चिन्ता किए बिना मैंने उसे अपनी जेब में डाल दिया। एकाएक सारी घाटी पीली पड़ गईं। मैं उसी समय उस जगह को छोड़ने की जुगत में लग गया।

मेरे शरीर से धुएँ का एक छल्ला, उठा, जो कि पतले साँप-सा लहरा गया। हर जगह से सुर्ख लपटें निकलने लगीं। मैं उन लपटों में घिर गया। नीचे,मैंने पाया कि ठण्डी आग पुन: भभक उठी थी। उसने मेरे कपड़ों से शुरुआत की थी। और बर्फ़ीले धरातल पर बह निकली थी।

''अहा, दोस्त!'' उसने कहा, ''तुमने अपनी गर्मी से मुझे जगा दिया।''

मैंने तुरन्त उसका अभिवादन किया और नाम पूछा।

''मैं इस बर्फ़ीली-घाटी में आदमी द्वारा कैद थी।'' उसने मेरे सवाल को नजरअन्दाज कर कहा, ''मुझे बंदी बनाने वाले पहले ही तहस-नहस हो चुके हैं। और, इस बर्फ़ के द्वारा में भी लगभग मरने को थी। अगर तुमने मुझे अपनी गर्मी न दी होती और भभकने का यह मौका न दिया होता ,तो अब तक मैं कभी की नष्ट हो चुकी होती।''

''तुम्हारे जाग जाने पर मैं प्रसन्न हूँ। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि बर्फ़ की इस घाटी से छुटकारा कैसे पाऊँ। मैं चाहूँगा कि तुम्हें अपने साथ ले चलूँ ताकि तुम कभी न जमो और हमेशा प्रज्ज्वलित रहो।''

''ओह नहीं, तब तो मैं जला भी सकूँगी।''

''अगर तुम जला पाओगी, तो मुझे दुख होगा। इससे अच्छा है कि तुम्हें यहीं छोड़ दूँ।''

''ओह, नहीं यहाँ मैं जमकर मर जाऊँगी।''

''तब,क्या किया जाए?''

''तुम्हारी क्या राय है?'' उसने प्रतिप्रश्न किया।

''मैंने कहा न, मैं तो इस बर्फ़ की घाटी से निकल जाना चाहता हूँ।''

''तब तो ज्वलनशील हो पाना ही ठीक होगा।''

वह लाल धूमकेतु-सी उछली और हम दोनों घाटी से बाहर आ गए। अचानक एक बड़ी पत्थर-गाड़ी आई और मैं उसके पहियों के नीचे कुचलकर मर गया। पर, उसी क्षण वह गाड़ी घाटी में जा गिरी।

''आह! तुम अब कभी भी ठण्डी आग नहीं देख पाओगे।'' कहने के साथ ही मैं प्रसन्नतापूर्वक हँसा।

क्या ही अच्छा होता कि ऐसा होता !

●

कच्ची ईंट

हाए ताएछूवेन

भट्टे का मजदूर एक-एक कर कच्ची ईंटों को भट्टे में सजा रहा था, उनमें से एक इस डर से काँपने लगी कि वह भट्टे की तेज आग में जल जाएगी।

''डरो नहीं,'' दूसरी ईंटों ने उसे समझाया, ''यह सौभाग्य तो मुश्किल से मिलता है। आग ही हमें काम के लायक बनाती है।'' पर उसने एक शब्द भी नहीं सुना और कतराकर बगल में पड़ी घास के ढेर में छिप गई।

और इस प्रकार वह भट्टे में जाने से बच गई। जब कुछ दिनों के बाद वह पकी ईंटों से मिली तो पकी ईंटों ने उसके बारे में अफसोस जाहिर किया, किन्तु उसे यह देखकर कि उसकी सहेलियों का रंग थोड़ा लाल होने के सिवा ख़ास नहीं बदला है, उसने परवाह नहीं की।

जल्दी ही ईंटों को ले जाने के लिए मजदूर ले आई। एक ने कच्ची ईंट को वहाँ देखकर पूछा, ''अरे,यह यहाँ कैसे आ गई?'' उसने उसे उठाकर बाहर फेंक दिया। अपनी सहेलियों को खुशी-खुशी जाती देखकर कच्ची ईंट को बहुत अफसोस हुआ, पर अब अफसोस करने का कोई फायदा न था। वह यहाँ अलग,अकेली और बेकार पड़ी रही, फिर हवा चलने और बारिश होने के बाद धीरे-धीरे उसने अपना आकार खो दिया और अंतत: कीचड़ का लोंदा बन गई।

●

उल्लू

जेम्स थर्बर

एक बार एक उल्लू आधी रात के समय, जबकि आकाश में कोई साथ नहीं था, एक वृक्ष की टहनी पर बैठा था।

नीचे धरती पर ये छछून्दर उसकी नजर बचाते हुए, जाने लगे, तो उल्लू ने कहा, ''कहाँ जा रहे हो?''

छछूंदरों को हैरानी हुई कि ऐसे गहन अंधेरे में भी कोई उन्हें देख सकता है। वे जवाब देकर आगे निकल गए और रास्ते में जाने कितने ही जानवर मिले, उन सबको उल्लू के बारे में बताया और जबकि वह सभी जानवरों से बड़ा और अक्लमंद जानवर है, क्योंकि वह अँधेरे में देख सकता है और किसी भी जानवर को जवाब दे सकता है।

''मैं अपनी आँखों से देख लूँ तभी मानूँगा,'' पक्षियों के मुखिया ने कहा...फिर एक रात, जबकि बहुत गहरा अँधेरा था, वह उल्लू से मिलने गया। उसके पास जाकर पूछा, मेरे कितने पंजे हैं ?''

''दो,''उल्लू ने जवाब में कहा।

पक्षी ने इस किस्म के कुछ और सवाल और पूछे, उल्लू ने उनके बिल्कुल ठीक जवाब दिए।

पक्षी हैरान होकर लौटा ओर उसने जंगल के सभी जानवरों को उल्लू के बारे मे बताया कि वह संसार में सबसे बड़ा और अकलमंद जानवर है।

''क्या वह दिन के समय भी देख सकता है?'' लोमड़ी ने पूछा।

''हाँ , क्या वह दिन के समय भी देख सकता है?'' और दो से-तीन जानवरों ने लोमड़ी का सवाल दोहराया।

इस पर बाकी सभी जानवर जोर से हँस पड़े और लोमड़ी और उन दो-तीन जानवरों का मज़ाक उड़ाने लगे।

आखिर उन्हें इतना तंग किया कि लोमड़ी और उसके साथियों को वह इलाका छोड़कर भाग जाना पड़ा।

तब बाकी सभी जानवरों ने संदेशा भेजकर उल्लू को अपना सरदार बनने के लिए बुलाया।

जब उल्लू वहाँ आया, तो दोपहर का समय था और सूरज चमक रहा था। उल्लू धीरे-धीरे बड़ी शान से चलता हुआ आया और उसने आँखें फैलाकर हर किसी को देखा। सब पर उसका बहुत रौब पड़ा।

''यह तो साक्षात् ईश्वर लगता है।'' एक मुर्गी ने कहा।

''हाँ , बिल्कुल ईश्वर!'' बाकी के जानवर भी सहमत हुए।

उसके बाद उल्लू जहाँ कहीं भी जाता, सभी जानवर उसके पीछे-पीछे जाते। वह किसी चीज से टकराया, तो वे भी टकराते, आखिर वह एक बड़ी सड़क पर गया और उसके बीच में खड़ा हाकर आस-पास देखने लगा। बाकी जानवरों ने भी वैसा ही किया। तभी एक चील ने देखा कि सड़क पर एक ट्रक चला आ रहा है । उसने ट्रक के बारे में पक्षियों के मुखिया को बताया। पक्षियों के मुखिया ने उल्लू को बताया।

लेकिन उल्लू ने लापरवाही दिखाई।

''क्या आपको डर नहीं लगता?'' पक्षियों के मुखिया ने पूछा।

''डर कैसा?'' उल्लू ने बड़े सहज भाव से कहा, क्योंकि वह ट्रक को देख ही नहीं सकता था।

''यह तो ईश्वर है!'' बाकी जानवरों ने सोचा। फिर वे उल्लू के गिर्द जमा होकर उसका गुणगान करने लगे। तभी ट्रक बड़ी तेज़ रफ्तार से उन पर से गुज़र गया। कुछ एक जानवरों को छोड़कर शेष सब मारे गए। जिनमें उल्लू भी शामिल था।

खिड़की

एलन सनेगर

(अनुवादक : सुकेश साहनी)

तीन महीने से वह कमरे के एक ओर पलंग पर पड़ा है। विक्टर, जो उस कमरे में दूसरा रोगी है, अपने बैड पर लेटे-लेटे खिड़की से बाहर देख सकता है। वह उसे बाहर का आँखों देखा हाल सुनाता रहता है। आज भी वह उसे पेड़ों के बारे में, फूलों के बारे में और खासतौर पर एक लेडी टाइपिस्ट के बारे में बताता रहा है।

वह अक्सर सोचता, 'काश! उसका बैड खिड़की के पास होता और वह भी बाहर के दृश्यों का आनन्द ले सकता।' उसे लगता है कि विक्टर को इस बात का घमण्ड है कि उसका पलंग खिड़की के पास है। जैसे अकेला वह ही खिड़की का मालिक हो। इस ख्याल ने उसके दिल में विक्टर के लिए नफ़रत भर दी।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, विक्टर के लिए उसकी नफ़रत बढ़ती ही गई। दूसरी ओर विक्टर की हालत में देखकर कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए वह पास लगी घण्टी का बटन दबा देता था। ऊँघती हुई नर्सें आतीं, उसकी हालत देखकर डॉक्टर को बुलातीं, जो उसे एक इंजेक्शन देता जिससे विक्टर पुन: आराम की नींद सो जाता। अचानक उसे ख्याल आया, अगर वह रात में घण्टी का बटन न दबाए तो..?

उस रात जब उसकी आँख खुली तो उसने देखा-विक्टर हाँफ रहा है और उसे साँस लेने में बहुत दिक्कत हो रही है। उसने आँखें बंद कर लीं और नींद का बहाना किए रहा।

सुबह उसने देखा-सामने वाला पलंग खाली है और बिस्तर बदला हुआ है। डाक्टर के राउण्ड पर आते ही उसने पूछा,''क्या मुझे वह बैड मिल सकता है?''

''हाँ अवश्य..'' और कुछ रुककर डाक्टर ने कहा, बहुत बुरा हुआ, रात में तुम्हें विक्टर की तकलीफ का पता ही नहीं चला। अगर तुम जाग

रहे होते, तो शायद वह बच जाता।'' नर्स को उसका बिस्तर खिड़की के पास बदलने का आदेश देकर डाक्टर चला गया।

उसने बड़ी निश्चिन्तता के साथ दो तकिए एक-दूसरे पर रखे और खिड़की के बाहर निगाह डाली, पर बाहर न कोई पेड़ था, न कोई घर,न खंभा,न लेटर बॉक्स,न बगीचा और न ही कोई चौराहा। खिड़की के बाहर अस्पताल के पिछवाड़े की ऊबड़-खाबड़ जमीन थी, जहाँ से नालियों का गंदा पानी बह रहा था।

●

कमज़ोर

चेख़व

अपने बच्चों की अध्यापिका यूलिमा वार्सीयेव्ज़ा को आज मैं हिसाब चुकता करना चाहता था।

''बैठ जाओ यूलिमा वार्सीयेव्ज़ा।'' मेंने उससे कहा, ''तुम्हारा हिसाब चुकता कर दिया जाए। हाँ,तो फैसला हुआ था कि तुम्हें महीने के तीस रूबल मिलेंगे,हैं न?''

''नहीं,चालीस।''

''नहीं तीस। तुम हमारे यहाँ दो महीने रही हो।''

''दो महीने पाँच दिन।''

''पूरे दो महीने। इन दो महीनों के नौ इतवार निकाल दो। इतवार के दिन तुम कोल्या को सिर्फ़ सैर के लिए ही लेकर जाती थीं और फिर तीन छुट्टियाँ....., नौ और तीन बारह, तो बारह रूबल कम हुए। कोल्या चार दिन बीमार रहा, उन दिनों तुमने उसे नहीं पढ़ाया। सिर्फ़ वान्या को ही पढ़ाया और फिर तीन दिन तुम्हारे दाँत में दर्द रहा। उस समय मेरी पत्नी ने तुम्हें छुट्टी दे दी थी। बारह और सात, हुए उन्नीस। इन्हें निकाला जाए, तो बाकी रहे...हाँ इकतालीस रूबल, ठीक है?''

यूलिया की आँखों में आँसू भर आए।

''कप-प्लेट तोड़ डाले। दो रूबल इनके घटाओ। तुम्हारी लापरवाही से कोल्या ने पेड़ पर चढ़कर अपना कोट फाड़ डाला था। दस रूबल उसके और फिर तुम्हारी लापरवाही के कारण ही नौकरानी वान्या के बूट लेकर भाग गई। पाँच रूबल उसके कम हुए....''

''दस जनवरी को दस रूबल तुमने उधार लिए थे। इकतालीस में से सत्ताईस निकालो। बाकी रह गए चौदह।''

यूलिया की आँखों में आँसू उमड़ आए, ''मैंने सिर्फ़ एक बार आपकी पत्नी से तीन रूबल लिये थे....।''

''अच्छा यह तो मैंने लिखा ही नहीं, तो चौदह में से तीन निकालो। अब बचे ग्यारह। सो, यह रही तुम्हारी तनख्वाह। तीन,तीन...एक और एक।''

''धन्यवाद!'' उसने बहुत ही हौले-से कहा।

''तुमने धन्यवाद क्यों कहा?''

''पैसों के लिए।''

''लानत है! क्या तुम देखती नहीं कि मैंने तुम्हें धोखा दिया है? मैंने तुम्हारे पैसे मार लिये हैं और तुम इस पर धन्यवाद कहती हो। अरे, मैं तो तुम्हें परख रहा था.....मैं तुम्हें अस्सी रूबल ही दूँगा। यह रही पूरी रकम।''

वह धन्यवाद कहकर चली गई।

मैं उसे देखता हुआ सोचने लगा कि दुनिया में ताकतवर बनना कितना आसान है।

●

पुल

फ्रांज़ काफ्का

मैं कठोर और ठंडा था। मैं एक पुल था। मैं एक अथाह कुंड पर पसरा था। मेरे पाँव की अँगुलियाँ एक छोर पर। मैं भुरभुरी मिट्टी में अपने दाँत कसकर गड़ाए था। मेरे कोट के सिरे मेरे अगल-बगल फड़फड़ा रहे थे। दूर नीचे बर्फ़ीली जलधारा गड़-गड़ करती बह रही थी। कोई सैलानी इस अगम्य ऊँचाई पर नहीं निकलता था, पुल कभी तक किसी नक्शे पर विहित नहीं हुआ था। मैं केवल प्रतीक्षा ही तो कर सकता था। एक बार बन जाने के बाद,जब तक वह गिरे नहीं, किसी पुल के पुल होने का अंत नहीं हो सकता।

एक दिन शाम होते की बात है, यह पहली शाम थी या हज़ारवीं? मैं कह नहीं सकता, मेरे विचार हमेशा गड्ड-मड्ड और हमेशा चक्कर में रहते थे। एक गर्मी शाम होते की बात है, जलधारा का निनाद और गहरा हो चला था कि मैंने मानव कदमों की आहट सुनी। मेरी ओर, मेरी ओर। अपने आपको तानो, पुल तैयार हो जाओ, बिना रेलिंग की शहतीर, सँभालो उस यात्री को, जिसे तुम्हारे सुपुर्द किया गया है। उसके कदम बहकते हों तो चुपचाप उन्हें साधो, लेकिन वह लड़खड़ाता हो तो अपने आपको चौकन्ना कर लो और एक पहाड़ी देवता की तरह उसे उस पार उतार दो।

वह आया, उसने अपनी छड़ी को लोहे की नोंक से मुझे ठकठकाया, फिर उसने उसके सहारे मेरे कोट के सिरों को उठाया। और उन्हें मेरे ऊपर तरतीब से रख दिया। उसने अपनी छड़ी की नोंक

मेरे झाड़नुमा बालों में धँसा दी और देर तक उसे वहीं रखे रहा, बेशक इस बीच वह अपने चारों ओर दूर तक आखें फाड़कर देखता रहा था। लेकिन फिर मैं पहाड़ और घाटी पर विचारों में उसका पीछा कर ही रहा था कि वह अपने दोनों पाँवों के बल मेरे शरीर के बीचो-बीच कूदा।

मैं भंयकर पीड़ा से थर्रा उठा। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि यह क्या हो रहा था। कौन था वह? बच्चा? सपना? बटोही? आत्महत्या? प्रलोभक? विनाशक? और मैं उसे देखने के लिए मुड़ा। पुल का मुड़ना! मैं पूरी तरह मुड़ा भी नहीं था कि मेरे गिरने की शुरुआत हो गई। मैं गिरा, और एक क्षण में उन नुकीली चट्टानों ने मुझे चीर-फाड़कर रख दिया, जो तेज बहते पानी में से हमेशा चुपचाप मुझे ताकती रहती थीं।

●

यांत्रिक

चार्ली चैपलिन

सुबह हो रही थी। स्पेन की उस जेल में एक युवक देशभक्त को गोली से उड़ाया जाना था। वह फौजी दस्ते के सामने खड़ा था। सब तैयारी हो चुकी थी। सन्नाटा छाया हुआ था।

मृत्युदंड प्राप्त विद्रोही एक हास्य लेखक था और स्पेन में बहुत ही लोकप्रिय। गोली मारनेवाले दस्ते के नायक का एक ज़माने में मित्र रहा था। दोनों मेड्रिड विश्वविद्यालय में पढ़े थे। राजा और चर्च की सत्ता को उखाड़ने के लिए उन्होंने संघर्ष किया था। साथ बैठकर शराब पी थी। गप्पें लगाई थी और दार्शनिक विषयों पर घंटों बहस की थी। तब उनके मतभेद भी सद्भावनापूर्ण थे किंतु बाद में स्पेन का वातावरण आंतरिक अशांति से भर उठा। सैनिक टुकड़ी के नायक का वही पुराना मित्र आज प्राणदंड की प्रतीक्षा में सामने खड़ा था।

नायक के मन में अतीत की स्मृतियाँ डोल रही थीं। गृहयुद्ध छिड़ने के बाद कितना कुछ बदल गया था। आज सवेरे उन दोनों ने एक-दूसरे को देखा, जेल में। बोले कुछ नहीं, सिर्फ़ मुस्करा दिए।

हर चीज शांत थी। उस खामोशी में अचानक नायक की आवाज गूँज उठी, ''अटेंशन।''

आदेश मिलते ही फौजी टुकड़ी में एक सामूहिक हरक़त हुई। सिपाहियों के हाथ बंदूकों पर अकड़ गए और शरीर तन गए।

किंतु इसी दरम्यान कैदी ने खाँसा और गला साफ किया। इससे मानो सारी लय टूट गई। नायक ने तुरंत उस विद्रोही बंदी की ओर देखा कि शायद वह कुछ कहे, किंतु बंदी चुप था। सैनिकों की तरफ घूमकर नायक अगला आदेश देने के लिए तैयार हुआ। सहसा उसके विचार धुँधलाने लगे। मन नफरत से भर गया। उसने देखा कि दीवार से पीठ सटाकर बैठा बंदी खड़ा था और उसके सामने

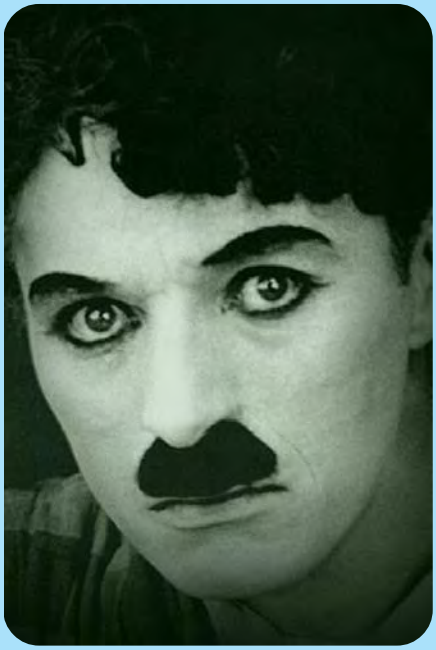

छह सैनिक। यह सब एक दु:स्वप्न की तरह था। सैनिक ऐसे लग रहे थे, मानो छह घड़ियाँ चलते-चलते बंद हो गईं। नायक याद करने लगा, ''अटेंशन'' के बाद कहना होगा, ''शोल्डर आर्म्स,'' फिर ''प्रेजेंट'' और अंतिम रूप से ''फायर''। उसे यह शब्द बहुत दूर और अस्पष्ट जान पड़े। वह कुछ बुदबुदाया, तो सिपाहियों ने अपनी बंदूकें सीधी तान दीं।

फिर कुछ पलों का अंतराल। जेल के बरामदे में किसी के पाँवों की तेज आहट फौजी दस्ते के नायक को एहसास हो गया कि मृत्युदंड स्थगित करने का आदेश आ पहुँचा है। वह सजग हो उठा।

''रुको!'', एक व्यग्र तत्परता के साथ वह चिल्लाया।

छह सैनिकों के हाथों में बंदूकें सधी हुई थीं। उन्हें एक ध्वनि में ''आदेशपालन'' करना सिखलाया गया था। यांत्रिक ढंग से शब्द के अर्थ से नहीं।

उन्होंने एक ध्वनि सुनी, ''रुको'' और बंदूकें दाग दी गईं।

●

Beacon Signs
1985 Inc.

7040 Torbram Rd. Unit # 4, Mississauga, ONT. L4T 3Z4

Specializing In:

Illuminated Signs awning & pylons

Channel & Neon letters

Architectural signs

Banners

VEHICLE GRAPHICS

Engraving

Silk screen

Silk screen

Design Services

Precision CNC cutout plastic, wood & metal letters & logos

Large format full Colour imaging System

SALES – SERVICE - RENTALS

Manjit Dubey

दुबे परिवार की ओर से हिन्दी चेतना को बहुत बहुत शुभकामनायें

Tel: (905) 678-2859 Fax: (905) 678-1271

E-mail: beaconsigns@bellnet.ca

कुछ लघुकथाएँ ऐसी हैं, जो पाठक को संवेदित और आन्दोलित ही नहीं करती, वरन् उसकी स्मृति का अनिवार्य अंश बनने का माद्दा रखती हैं। 'अविस्मरणीय' खण्ड में नए-पुराने लेखकों की ऐसी केवल 15 लघुकथाएँ दी हैं; जो इस विधा की ताकत का अहसास कराती हैं। इन कथाओं में कथ्य और शिल्प दोनों इतने कसे हुए हैं कि ये बरबस विद्वानों का ध्यान आकर्षित करने में सफल रही हैं। चाहकर भी इन कथाओं को भुलाया नहीं जा सकता। इन्हें विश्व लघुकथा साहित्य में हिन्दी का विशिष्ट योगदान कहा जा सकता है। ऐसी और बहुत सारी लघुकथाएँ हैं; जिन्हें स्थानाभाव के कारण यहाँ देना सम्भव नहीं है।

आग

असगर वजाहत

उस आदमी का घर जल रहा था। वह अपने परिवार सहित आग बुझाने का प्रयास कर रहा था लेकिन आग प्रचंड थी। बुझने का नाम न लेती थी। ऐसा लगता है जैसे शताब्दियों से लगी आग है, या किसी तेल के कुएँ में माचिस लगा दी गयी है या कोई ज्वालामुखी फट पड़ा है। आदमी ने अपनी पत्नी से कहा, ''इस तरह की आग तो हमने कभी नहीं देखी थी।''

पत्नी बोली, ''हाँ क्योंकि इस तरह की आग तो हमारे पेट में लगा करती है। हम उसे देख नहीं पाते थे।''

वे आग बुझाने की कोशिश कर रहे थे कि दो पढ़े-लिखे वहाँ आ पहुँचे। आदमी ने उनसे कहा, ''भाई हमारी मदद करो।'' दोनों ने आग देखी और डर गये। बोले, ''देखो, हम बुद्धिजीवी हैं, लेखक हैं, पत्रकार हैं, हम तुम्हारी आग के बारे में जाकर लिखते हैं।'' वे दोनों चले गये।

कुछ देर बाद वहाँ एक आदमी और आया। उससे भी इस आदमी ने आग बुझाने की बात कही। वह बोला, ''ऐसी आग तो मैंने कभी नहीं देखी... इसको जानने और पता लगाने के लिए शोध करना पड़ेगा। मैं अपनी शोध सामग्री लेकर आता हूँ, तब तक तुम ये आग न बुझने देना।'' वह चला गया। आदमी और उसका परिवार फिर आग बुझाने में जुट गये। पर आग थी कि काबू में ही न आती थी।

दोनों थक-हारकर बैठ गये। कुछ देर में वहाँ एक और आदमी आया। उससे आदमी ने मदद माँगी। उस आदमी ने आग देखी। अंगारे देखे। वह बोला, ''यह बताओ कि अंगारो का तुम क्या करोगे?''

वह आदमी चकित था क्या बोलता।

वह आदमी बोला, ''मैं अंगारे ले जाऊँगा।''

''अंगारे क्यों ले जाओगे?''

''हाँ ठंडे होने के बाद... जब वे कोयला बन जायेंगे...''

कुछ देर बाद आग बुझाने वाले आ गये। उन्होंने आग का जो विकराल रूप देखा तो छक्के छूट गये। उनके पास जो पानी था वह आग क्या बुझाता उसके डालने से तो आग और भड़क जाती। दमकल वाले चिंता में डूब गये। उनमें से एक बोला, ''यह आग इसी तरह लगी रहे इसी में देश की भलाई है।''

''क्यों?'' आदमी ने कहा।

''इसलिए कि इसको बुझाने के लिए पूरे देश में जितना पानी है उसका आधा चाहिए।''

''पर मेरा क्या होगा।''

''देखो तुम्हारा नाम गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड में आ जायेगा। तुम्हारे साथ देश का नाम भी... समझे?''

वह बातचीत हो ही रही थी कि विशेषज्ञों का दल वहाँ आ पहुँचा। वे आग देखकर बोले, ''इतनी विराट आग... इसका तो निर्यात हो सकता है... विदेशी मुद्रा आ सकती है... वह आग खाड़ी देशों में भेजी जा सकती है...''

दूसरे विशेषज्ञ ने कहा, ''वह आग तो पूरे देश के लिए सस्ती ऊर्जा स्रोत बन सकती है''

''ऊर्जा की बहुत कमी है देश में।''

''इस ऊर्जा से तो बिना पैट्रोल के गाड़ियाँ चल सकती हैं। यह ऊर्जा देश के विकास में महान योगदान दे सकती है।''

''इस ऊर्जा से देश में 'एकता' भी स्थापित हो सकती है। इसे और फैला दो...

''फैलाओ?'' वह आदमी चिल्लाया।

''हाँ बड़े-बड़े पंखे लगाओ... तेल डालो ताकि ये आग फैले।''

''पर मेरा क्या होगा?'' वह आदमी बोला।

''तुम्हारा फायदा ही फायदा है... तुम्हारा नाम तो देश के निर्माण के इतिहास में सुनहरे अक्षरों से लिखा जायेगा... तुम नायक हो''

कुछ दिनों बाद देखा गया कि वह आदमी जिसके घर में उसके पेट जैसी भयानक आग लगी थी, आग को भड़का रहा है, हवा दे रहा है।

●

रोटी का टुकड़ा

भूपिंदर सिंह

बच्चा पिट रहा था, लेकिन उसके चेहरे पर अपराध का भाव नहीं था। वह ऐसे खड़ा था जैसे कुछ हुआ ही न हो। औरत उसे पीटती जा रही थी, ''मर जा जमादार हो जा..... तू भी भंगी बन जा.... तूने रोटी क्यों खाई ?''

बच्चे ने भोलेपन से कहा, ''माँ , एक टुकड़ा उनके घर का खाकर क्या मैं भंगी हो गया ?''

''और नहीं तो क्या?''

''और जो काकू भंगी हमारे घर पर पिछले दस सालों से रोटी खा रहा है तो वह क्यों नहीं 'बामन' हो गया?'' बच्चे ने पूछा।

माँ का उठा हुआ हाथ हवा में ही लहराकर वापस आ गया।

●

सूअर

रमेश बतरा

वे हो-हल्ला करते एक पुरानी हवेली में जा पहुँचे। हवेली के हाते में सभी घरों के दरवाजे बंद थे। सिर्फ़ एक कमरे का दरवाजा खुला था। सब दो-दो, तीन-तीन में बँटकर दरवाजे तोड़ने लगे और उनमें से दो जने उस खुले कमरे में घुस गए। कमरे में एक ट्रांजिस्टर हौले-हौले बज रहा था और एक आदमी खाट पर सोया हुआ था।

"यह कौन है?" एक ने दूसरे से पूछा।

"मालूम नहीं," दूसरा बोला, "कभी दिखाई नहीं दिया मुहल्ले में।"

"कोई भी हो," पहला ट्रांजिस्टर समेटता हुआ बोला, "टीप दो गला!"

"अबे, कहीं अपनी जाति का न हो?"

"पूछ लेते हैं इसी से।" कहते-कहते उसने उसे जगा दिया।

"कौन हो तुम?"

वह आँखें मलता नींद में ही बोला, "तुम कौन हो?"

"सवाल-जवाब मत करो। जल्दी बताओ वरना मारे जाओगे।"

"क्यों मारा जाऊँगा?"

"शहर में दंगा हो गया है।"

"क्यों.. कैसे?"

"मस्जिद में सूअर घुस आया।"

"तो नींद क्यों खराब करते हो भाई ! रात की पाली में कारखाने जाना है।" वह करवट लेकर फिर से सोता हुआ बोला, "यहाँ क्या कर रहे हो?...जाकर सूअर को मारो न !"

●

पेट का कछुआ

युगल

गरीब बन्ने का बारह साल का लड़का पेट-दर्द से परेशान था और शरीर से बहुत कमजोर होता गया था। टोना-टोटका और घरेलू इलाज के बावजूद हालत बिगड़ती गई थी। दर्द उठता तो लड़का चीखना, और माँ -बाप की आँखों में आँसू आ जाते।

एक रात जब लड़का ज्यादा बदहवास हुआ, तो माँ ने बन्ने को बच्चे का पेट दिखलाया। बन्ने को देखा-छोटा कछुए के आकार-सा कुछ पेट के अन्दर से थोड़ा उठा हुआ है और हिल रहा है। गांव के डॉक्टर ने भी हैरत से देखा और सलाह दी कि लड़के को शहर को अस्पताल में ले जाओ।

बन्ने पत्नी के जेवर बेच लड़के को शहर ले आया। अस्पताल के सर्जन को भी अचरज हुआ-पेट में कछुआ! सर्जन ने जब पेट को ऊपर से दबाया तो कछुए-जैसी वह चीज इधर-उधर होने लगी और लड़के के पेट का दर्द बर्दाश्त के बाहर हो गया। सर्जन ने बतलाया-"लड़के को बचाना है, तो प्राइवेट से आपरेशन के लिए दो हज़ार रुपए का इन्तजाम करो।"

दो हजार! बन्ने की आँखें चौंधिया गई। दो क्षण साँस ऊपर ही अटकी रह गई। न! लड़के को वह कभी नहीं बचा सकेगा। उसे जिस्म की ताकत चुकती लगी। वह बेटे को लेकर अस्पताल के बाहर आ गया और सड़क के किनारे बैठ गया।

लड़के को कराहता देखकर किसी ने सहानुभूति से पूछा-"क्या हुआ है?"

बन्ने बोला-"पेट में कछुआ है साहब!"

"पेट में कछुआ?" मुसाफिर को अचरज हुआ।

"हाँ साहब! कई महीनों से है।" और बन्ने ने लड़के का पेट दिखलाया। पेट पर उंगलियों का टहोका दिया, तो वह कछुए-जैसी चीज ज़रा हिली। बन्ने का गला भर गया-"आपरेशन होगा साहब! डॉक्टर दो हजार माँगता है। मैं गरीब आदमी...." और वह रो पड़ा।

तब कई लोग वहाँ खड़े हो गए थे। उस मुसाफिर ने दो रुपये के नोट निकाले और कहा-"चन्दा से इकट्ठा कर लो और लड़के का आपरेशन करा लो।"

फिर कई लोगों ने एक-एक दो-दो रुपये और दिए। जो सुनता टिक जाता-पेट में कछुआ?...हाँ जी चलता है...चलाओ तो!

बन्ने लड़के के पेट पर उँगलियों से ठोकर देता। कछुआ हिलता। लड़के के पेट का दर्द आँखों में उभर आता। लोग एक, दो या पाँच के नोट उसकी ओर फेंकते-"आपरेशन करा लो भाई। शायद लड़का बच जाए!"

साँझ तक बन्ने के अधकुर्ते की जेब में नोट और आँखों में आशा की चमक भर गई थी।

अगले दिन बन्ने उस बड़े शहर के दूसरे छोर पर चला गया। वह लड़के के पेट पर टकोरा मारता। पेट के अन्दर का कछुआ ज़रा हिलता। लोग प्रकृति के इस मखौल पर चमत्कृत हाते और रुपये देते। बन्ने दस दिनों तक उस शहर के इस नुक्कड़ से उस नुक्कड़ पर पेट के कछुए का तमाशा दिखलाता रहा और लोग रुपये देते रहे। बीच में लड़के की माँ बेटे को देखने आती। बन्ने उसे रुपये थमा देता।

लड़के ने पूछा-"बाबू, आपरेशन कब होगा?"

बन्ने बोला-"हम लोग दूसरे शहर में जाकर रुपये इकट्ठे करेंगे।" फिर कुछ सोचता हुआ बोला-"मुन्ने, तेरा क्या खयाल है कि पेट चीरा जाकर भी तू बच जाएगा? डॉक्टर भगवान तो नहीं। थोड़ा दर्द ही होता है न? बर्दाश्त करता चल। यों जिन्दा तो है। मरने से कित्ती देर लगती है? असल तो जीना है।'

लड़का कराहने लगा। उसके पेट का कछुआ चलने लगा था।

●

काली धूप

वरियाम सिंह संधु

(अनुवाद -अशोक भाटिया)

तीखी दोपहर। किरणों के मुँह से बरस रही आग।

सवेरे सूर्य चढ़ने से पहले ही, दोनों माँ-बेटी खेत-खेत चलकर गेहूँ का सिला चुन रही थीं। सारे दिन की कमरतोड़ मेहनत। मुश्किल से रात के एक वक्त की रोटी।

बूढ़ी माँ थककर एक खेत के किनारे छोटी-सी बेरी के नीचे बैठ गई। पर बेटी सिला चुनती जा रही थी....चुनती जा रही थी। पसीना उसके साँवले रंग में घुलता जा रहा था।

दूर सड़क से उतरकर, पगडंडी पर, महलों वाले सरदारों की दोनों बेटियाँ शहर से पढ़कर लौट रही थीं। काली ऐनकें लगाए, छाते ताने, तंग वस्त्रों में उनके शरीर की गोलाइयाँ मछलियों की तरह मचल रही थीं। रूमाल से मुँह को हवा देतीं, आपस में बातें करतीं, खिलखिलाकर हँसती उसके पास से गुज़र गईं।

बेटी उन्हें जाते हुए कितनी देर तक देखती रही। पसीना उसके सिर से पैर तक चू रहा था। थकावट से उसकी कमर में दर्द हो गया था। भूख से पेट में बल पड़ रहे थे। बदन में मानो सुइयाँ चुभ रही हों।...उसे लगा जैसे वह अभी गिर पड़ेगी। जल्दी-जल्दी वह माँ के पास बेरी के नीचे जाकर बैठ गई। बेरी के पत्तों से धूप छन-छनकर आ रही थी।

पैबन्द लगी सलवार को उसने घुटनों से ऊपर उठाया। फिर फटे दुपट्टे से पसीना पोंछा। उसके शरीर का अंग-अंग थकान से निंदराया पड़ा था। उसके दिल ने चाहा कि छाया में लेट जाए। सो जाए....सो जाए।

फिर पता नहीं महलों वालों की गांव में दाखिल हो रही लड़कियों की पीठ पर नज़र टिकाए उसे क्या ख़याल आया। माँ से पूछने लगी, ''माँ, भला जवानी कब आया करती है?''

बूढ़ी माँ ने धँसी आँखों से उस चेहरे को गहराई से देखा। फिर किसी दार्शनिक की तरह बोली, ''बेटी! जब बहुत हँसी आए, खिलखिला के....बिना किसी बात के।''

लड़की के स्वर में जैसे सारे जहान का दर्द एकत्र हो गया, ''हाय! हाय! माँ, यह तो पिछले साल बहुत आई थी।'' हाथ में पकड़ा सिट्टा उसने उँगलियों में जोर से मसल दिया।

दूर तक... चारों ओर काली धूप धरती का बदन झुलसा रही थी।

●

कथा नहीं

पृथ्वीराज अरोड़ा

वह पेशाब करके फिर बातचीत में शामिल हो गया। दीदी ने कहा, ''पिताजी को बार-बार पेशाब आने की बीमारी है, इनका इलाज़ क्यों नहीं करवाया?''

उसने स्थिति को समझा। फिर सहजभाव में बोला, ''मैं अलग मकान में रहता हूँ, मुझे क्या मालूम इन्हें क्या बीमारी है?''

माँ बीच में बोली, ''तो क्या ढिंढोरा पिटवाते?''

उसने माँ की बात को नजरअन्दाज करते हुए कहा, ''देखो दीदी, अगर यह बताना नहीं चाहते थे तो खुद ही इलाज करवा लेते।'' थोड़ा रुककर आगे कहा, ''इन्होंने बहुत सूद पर दे रखे हैं, पैसों की कोई कमी नहीं इन्हें।''

पिता चिढ़े-से बोले, ''जवान बेटे के होते इस उमर में डॉक्टर के पीछे-पीछे दौड़ता?''

इस हमले को तल्खी में न झेलकर उसने गहरा व्यंग्य किया, ''आप सुबह-शाम मीलों घूमते हैं, मुझसे अधिक स्वस्थ हैं, फिर डॉक्टर के पास क्यों नहीं जा सकते थे?''

दीदी ने चौंककर देखा। आनेवाली विस्फोटक स्थिति पर नियंत्रण करने की ग़रज़ से बीच में ही दखल दिया, ''आखिर माँ-बाप भी अपनी संतान से कुछ उम्मीद करते ही हैं।''

वह अपनी स्थिति को सोचकर दु:खी होकर बोला, ''तुम नहीं जानती कि मेरा हाथ कितना तंग है। ठीक से खाने-पहनने लायक भी नहीं कमा पाता। तुम्हारी शादी के बाद तुम्हें एक बार भी नहीं बुला पाया।'' आँखों के गिर्द आए पानी को छुपाने के लिए उसने खिड़की से बाहर देखते हुए गम्भीर स्वर में कहा, ''सूद का लालच न करके मुझे कुछ बना देते तो मैं इनकी सेवा लायक न बन जाता!''

पिताजी ने रुआँसे होकर बताया, ''मेरे दो दाँत खराब हो गए थे, उन्हें निकलावाकर, नए दाँत लगवाए हैं, देखो!'' उन्होंने दाँत बाहर निकाल दिए।

माँ बार-बार रोने लगी, ''क्या करते हो? तुम्हारा सारा जबड़ा भी बाहर निकल आए तो किसी को क्या? दाँत न रहने पर आदमी ठीक से खा नहीं पाता?''

दीदी भी रोने लगी, ''दीपक, तुम्हें माँ-बाप पर जरा भी तरस नहीं आता?''

दीपक का चेहरा बुझते-जलते लट्टू की तरह होने लगा। दु:ख और आक्रोश में वह काँपने लगा। अगले ही क्षण उसने नकली दाँतों का सैट मेज पर रख दिया और सिसकता हुआ गुसलखाने की ओर बढ़ गया....।

●

उत्सव

श्याम सुन्दर अग्रवाल

सेना और प्रशासन की दो दिनों की जद्दोजेहद अंतत: सफल हुई। साठ फ़ीट गहरे बोरवैल में फँसे नंगे बालक प्रिंस को सही सलामत बाहर निकाल लिया गया। वहाँ विराजमान राज्य के मुख्यमंत्री एवं जिला प्रशासन ने सुख की साँस ली। बच्चे के माँ-बाप व लोग खुश थे।

दीन-दुनिया से बेखबर इलैक्ट्रानिक मीडिया दो दिन से निरंतर इस घटना का सीधा प्रसारण कर रहा था। मुख्यमंत्री के जाते ही सारा मजमा खिंडने लगा। कुछ ही देर में उत्सव वाला माहौल मातमी-सा हो गया। टी.वी. संवाददाताओं के जोशीले चेहरे अब मुरझाए हुए लग रहे थे। अपना साज़ोसामान समेट कर जाने की तैयारी कर रहे एक संवाददाता के पास समीप के गाँव का एक युवक आया और बोला, ''हमारे गाँव में भी ऐसा ही..''

युवक की बात पूरी होने से पहले ही संवाददाता का मुरझाया चेहरा खिल उठा, ''क्या तुम्हारे गाँव में भी बच्चा बोरवैल में गिर गया?''

''नहीं।''

युवक के उत्तर से संवाददाता का चेहरा फिर से बुझ गया, ''तो फिर क्या?''

''हमारे गाँव में भी ऐसा ही एक गहरा गड्ढा नंगा पड़ा है,'' युवक ने बताया।

''तो फिर मैं क्या करूँ?'' झुँझलाया संवाददाता बोला।

''आप महकमे पर जोर डालेंगे तो वे गड्ढा बंद कर देंगे। नहीं तो उसमें कभी

भी कोई बच्चा गिर सकता है।''

संवाददाता के चेहरे पर फिर थोड़ी रौनक दिखाई दी। उसने इधर-उधर देखा और अपने नाम-पते वाला कार्ड युवक को देते हुए धीरे से कहा, ''ध्यान रखना, जैसे ही कोई बच्चा उस बोरवैल में गिरे मुझे इस नंबर पर फोन कर देना। किसी और को मत बताना। मैं तुम्हें इनाम दिलवा दूँगा।''

धूप

सुभाष नीरव

लंच का समय।

चौथी मंज़िल पर स्थित अपने कमरे की खिड़की से उन्होंने बाहर झाँका। कार्यालय के कर्मचारी सामने चौराहे के बीचोंबीच बने पार्क की हरी-हरी घास पर पसरी गुनगुनी धूप का आनन्द ले रहे थे। उन्हें उन सबसे ईर्ष्या हो आयी। और वह भीतर ही भीतर भन्नाए, ''किस अहमक ने बनाई है यह सरकारी इमारत ! इस गुनगुनी धूप के लिए तरस जाता हूँ मैं।''

उन्हें अपना पिछला दफ्तर याद हो आया। वह राज्य से केन्द्र में प्रतिनियुक्ति पर आये थे। कितना अच्छा था वह आफिस ! सिंगल स्टोरी ! आफिस के सामने खूबसूरत छोटा-सा लॉन ! लंच के समय चपरासी स्वयं लॉन की घास पर कुर्सियाँ डाल देता था, आफिसर्स के लिए।

आफिस के कर्मचारी दूर बने पार्क में बैठकर धूप का मजा लेते थे। पर, यहाँ आफिस ही नहीं, सरकार द्वारा आबंटित फ्लैट में भी धूप के लिए तरस जाते हैं वे। तीसरी मंज़िल पर मिले फ्लैट पर किसी भी कोण से धूप दस्तक नहीं देती।

एकाएक उनका मन हुआ कि वह भी सामने वाले पार्क में जाकर धूप का मज़ा ले लें; लेकिन, उन्होंने अपने इस विचार को तुरन्त झटक दिया। अपने मातहतों के बीच जाकर बैठेंगे ! नीचे घास पर ! इतना बड़ा अफ़सर और अपने मातहतों के बीच घास पर बैठे !

वह खिड़की से हटकर सोफे पर अधलेटे-से हो गये। और तभी उन्हें लगा, धूप उन्हें अपनी ओर खींच रही है। वह बाहर हो गये हैं बिल्डिंग से। चौराहे के बीच बने पार्क की ओर बढ़ रहे हैं वह। पार्क में घुस कर बैठने योग्य कोई कोना तलाश करने लगती हैं उनकी आँखें।

पूरे पार्क में टुकड़ियों में बँटे लोग। कुछ ताश खेलने में मस्त हैं। कुछ गप्पें हाँक रहे हैं। कुछ मूँगफली चबा रहे हैं। कोई-कोई अलग-थलग बैठा है या लेटा है।

लोग उन्हें देख ताश खेलना बन्द कर देते हैं। गप्पें हाँकते लोग एकाएक चुप्पा जाते हैं। लेटे हुए लोग उठकर बैठ जाते हैं। पार्क में उनके बैठते ही लोग धीमे-धीमे उठकर खिसकने लगते हैं। कुछ ही देर में पूरा पार्क खाली हो जाता है और बच रहते हैं- वही अकेले !

अचानक उनकी झपकी टूटी। उन्होंने देखा, वह पार्क में नहीं, अपने आफिस के कमरे में हैं। उन्होंने घड़ी देखी, लंच समाप्त होने में अभी बीस मिनट शेष थे। वह उठे और कमरे से ही नहीं, बिल्डिंग से भी बाहर चले गये। पार्क की ओर उनके कदम खुद-ब-खुद बढ़ने लगे। एक क्षण खड़े-खड़े वह बैठने के लिए उपयुक्त स्थान ढूँढ़ने लगे।

उन्हें देख लोगों में हल्की-सी भी हलचल नहीं हुई। सब मस्त थे। लोगों ने उन्हें देखकर भी अनदेखा कर दिया था। वह चुपचाप एक कोने में अपना रूमाल बिछाकर बैठ गए। गुनगुनी धूप उनके जिस्म को गरमाने लगी थी। पिछले दो सालों में यह पहला मौका था, सर्दियों की गुनगुनी धूप में नहाने का।

लंच खत्म होने का अहसास उन्हें लोगों के उठकर चलने पर हुआ। वह भी उठे और लोगों की भीड़ का एक हिस्सा बनकर आफिस में पहुँचे। अपने कमरे में पहुँचकर उन्हें वर्षों बाद, खोई हुई किसी प्रिय वस्तु के अचानक पा जाने की सुखानुभूति हो रही थी !

पहरे पर संतरी

आनंद हर्षुल

संतरी पहरे पर था। उसकी बंदूक पहरे पर थी। वह पहरे पर इसलिए था कि उसे पहरे पर होने का वेतन मिलता है।

संतरी जिसके पहरे पर था, वह चीज़ उसकी पीठ के पीछे थी और इस तरह वह अपनी पीठ के पीछे की चीज के लिए जवाबदेह था।

संतरी अपने सामने की बस्ती, उस चीज़ को देख पाता था, जो सामने की बस्ती, उस चीज़ के लिए खतरा हो सकती थी। उसकी बंदूक का देखना और उसका देखना एक जैसा था।

एक दिन संतरी के सामने बलात्कार हुआ। अँधेरा...तीन चमकते लड़के... कार.... एक बुझी हुई लड़की..... और संतरी को वह नहीं दिखा, क्योंकि उसकी पीठ के पीछे की चीज़ को उस बलात्कार से कोई खतरा नहीं था।

एक दिन एक लड़का संतरी के पैरों को और उसकी बंदूक को झकझोरता रहा कि उसे बचा लें। पर संतरी और बंदूक -दोनों को वह नहीं हिला पाया और मारा गया। चार गुंडों ने उसे संतरी की आँखों के सामने काट डाला। वह गरीब पावभाजी बेचने वाला लड़का था। उसका दोष सिर्फ़ इतना था कि अपने ठेले में पावभाजी खाती लड़कियों से छेड़छाड़ करते गुंडो का उसने विरोध किया था और उसने अपनी जान दे दी थी। किसी स्त्री से बलात्कार के खिलाफ वह लड़का जान से बड़ी कोई चीज दे सकता था।

संतरी अपना काम कायदे से करता है। उसकी पीठ के पीछे की चीज़ सुरक्षित है वह बहुत कर्तव्यनिष्ठ संतरी है, पर वह आदमी नहीं है। वह रोबोट है।

दीवारें

डॉ. श्याम सुंदर 'दीप्ति'

"ससरी 'काल बापू जी! और क्या हाल है?" कश्मीरे ने घर के दरवाज़े के सामने गली में चारपाई पर बैठे बापू को कहा और साथ ही पूछा, "जस्सी घर पर ही है?"

"हाँ बेटा! और तू सुना, राजी हैं सब?"

"हाँ बापू जी! मेहर है वाहेगुरू की! आपको शहर की गली में पेड़ के नीचे बैठा देख, गाँव की याद आ गई। शहरी तो बस घरों में ही घुसे रहते हैं.. अच्छा बापू, मैं आता हूँ जस्सी से मिलके।" कहकर वह अंदर चला गया।

जस्सी ने कश्मीरे के आने की आवाज़ सुन ली थी। वह कमरे से बाहर आ गया और कश्मीरे को गले मिलता अंदर ले गया।

अपनी बातें खत्म कर कश्मीरे ने पूछा, "और बापू जी कब आए?"

"तबीयत कुछ खराब थी, मैं ले आया कि चलो शहर किसी अच्छे डॉक्टर को दिखा देंगे। पर इन बुज़ुर्गों का हिसाब अलग ही होता है। कार में बिठाकर ले जा सकते हो, टैस्ट करवा सकते हो, पर दवाई-बूटी इन्होंने अपनी मर्जी से ही लेनी होती है।" जस्सी ने अपनी बात बताई।

"चलो! तूने दिखा दिया न। अपना फ़र्ज़ तो यही है बस।"

"वह तो ठीक है। अब तूने देख ही लिया न, घर के अंदर कमरों में ए.सी. लगे हैं, कूलर-पंखे सब हैं। पर नहीं, बाहर ही बैठना है, वहीं लेटना है। बुरा लगता है न। पर समझते ही नहीं।"

"तूने समझाया?" कश्मीरे ने बात का रुख बदलते हुए कहा।

"बहुत माथा-पच्ची की।"

"चल। सभी को पता है, इन बुज़ुर्गों की आदतों का।" कहकर वह उठ खड़ा हुआ।

वह बाहर आ एक मिनट बापू के पास बैठ गया और उसी अंदाज़ में बोला, "बापू, तूने तो शहर का दृश्य ही बदल दिया।"

"हाँ बेटा! घर में पंखे-पुंखे सब हैं। पर कुदरत का कोई मुकाबला नहीं। एक बात और बेटा, आता-जाता व्यक्ति रुक जाता है। दो बातें सुन जाता है, दो बातें सुना जाता है। अंदर तो बेटा दीवारों को ही देखते रहते हैं।"

"यह तो ठीक है बापू! जस्सी कह रहा था, सभी कमरों में टी.वी. लगा है। वहाँ भी दिल बहल जाता है।" कश्मीरे ने अपनी राय रखी।

"ले ये भी सुन ले। मैं तो उसे दीवार ही कहता हूँ अब पूछ क्यों? बेटा, कोई उसके साथ अपने दिल की बात तो नहीं बाँट सकता न।"

●

नोट

अवधेश कुमार

उन्होंने मेरी आँखों के सामने सौ का एक नोट लहराकर कहा, "यह कवि-कल्पना नहीं इस दुनिया का सच है। मैं इसे जमीन में बोऊँगा और देखना, रुपयों की एक पूरी फसल लहलहा उठेगी।"

मैंने उस नोट को कौतुक और उत्सुकता के साथ ऐसे देखा जैसे मेरा बेटा पतंग देखता है।

मैंने उस नोट की रीढ़ को छुआ, उसकी नसें टटोलीं। उनमें दौड़ता हुआ लाल और नीला खून देखा।

उसमें मेरा खाना और खेल दोनों शामिल थे।

उसमें सारे कर्म, पूरी गृहस्थी, सारी जय और पराजय शामिल थी। भय और अभय, संचय और संशय, घात और आघात, दिन और रात शामिल थे।

मुझे हर कीमत पर अपने आपको उससे बचाना था।

मैंने उसे कपड़े की तरह फैलाया और देखना चाहा कि क्या वह मेरी आत्मा की पोशाक बन सकता है ?

उन्होंने कहा, "सोचना क्या और इसे पहन डालो। यह तुम्हारे पूरे अस्तित्व को ढक सकता है।"

●

अतिथि कबूतर

राम पटवा

रोज़ सुबह एक छत पर दो कबूतर मिला करते थे। दोनों में घनिष्ठ मित्रता हो गई थी। एक दिन दूर खेत में दोनों कबूतर दाना चुग रहे थे, उसी समय एक तीसरा कबूतर उनके पास आया और बोला, 'मैं अपने साथियों से बिछड़ गया हूँ । कृपया आप मेरी मदद करें।

दोनों कबूतरों ने आपस में गुटर-गूँ किया, "भटका हुआ अतिथि है... 'अतिथि देवो भव: 'लेकिन प्रश्न खड़ा हुआ कि यह अतिथि रुकेगा किसके यहाँ ? दोनों कबूतर अलग-अलग जगह रहते थे, एक मस्जिद की मीनार पर तो दूसरा मंदिर के कंगूरे पर।"

अंततः यह तय हुआ कि अतिथि कबूतर को दोनों कबूतरों के साथ एक-एक दिन रुकना पड़ेगा।

तीसरे दिन 'अतिथि' की भावभीनी विदाई हुई। दोनों मित्र अतिथि कबूतर को दूर तक छोड़ने जाते हैं। शाम को जब वे लौटे तो देखा-मंदिर और मस्जिद के कबूतरों, में 'अकल्पनीय' लड़ाई हो रही है। इस दृश्य से दोनों स्तब्ध रह जाते हैं। बाद में पता चलता है कि अतिथि कबूतर संसद के गुम्बद से आया था।

●

खेलने के दिन

कमल चोपड़ा

स्टोर खिलौनों से भर गया था। पत्नी का विचार था कि उन्हें किसी कबाड़ी के हाथों बेच दिया जाए और जगह खाली कर ली जाए, क्योंकि बच्चे बड़े हो गए हैं और अब उन खिलौनों की तरफ देखते भी नहीं थे। कुछ को छोड़कर ज़्यादातर खिलौने नए-जैसे ही थे। वह झुँझलाकर बोला था-''हर साल बच्चों का बर्थ-डे मनाते रहें और जब ढेर खिलौने आते रहें, तब ही इन्हें साथ की साथ दूसरों के बर्थ-डे पर बाजार से खरीद-खरीदकर नए देते रहें, ढेर तो लगना ही था। कबाड़ी क्या देगा, सौ-पचास?''

बाबूजी ने सुझाया-''जो हुआ, सो हुआ। हमारे बच्चों का बचपन खिलौनों में बीता-बस, यही संतोष की बात है। अब यह है कि अगर कहो, तो मैं ये खिलौने ले-जाकर गरीब बच्चों में बाँट आऊँ? और कुछ नहीं, तो एक नेक काम ही सही....।''

वे कुछ नहीं बोल पाए थे। बाबूजी इसे दोनों की सहमति समझकर सभी खिलौने लेकर चल दिए।

बड़े उत्साह के साथ वे इंडस्ट्री एरिया के पीछे बनी झुग्गियों की ओर चल दिए-कितने खुश होंगे वे बच्चे इन खिलौनों को पाकर। रोटी तो जैसे-तैसे वे बच्चे खा ही लेते हैं। तन ढँकने के लिए कपड़े भी माँग-ताँगकर पहन ही लेते हैं, पर खिलौने उन बेचारों के नसीब में कहाँ? उनके चेहरे खिल उठेंगे, आँखें चमक जाएँगी खिलौने देखकर....उन्हें खुश होता देखकर मुझे कितनी खुशी होगी। इससे बड़ा काम तो कोई हो ही नहीं सकता...।

झुग्गियों के पास पहुँचकर उन्होंने देखा-मैले-फटे कपड़े पहने दो बच्चे सामने से चले आ रहे हैं। उन्हें पास बुलाकर उन्होंने कहा-''बच्चो, ये खिलौने मैं तुम लोगों के बीच बाँटना चाहता हूँ.....इनमें से तुम्हें जो पसंद हो, एक-एक खिलौना तुम ले लो.....बिल्कुल मुफ्त...।''

हैरान होकर बच्चों ने उनकी ओर देखा, फिर एक-दूसरे की तरफ देखा, फिर अथाह खुशी भरकर खिलौनों को उलट-पुलटकर देखने लगे। उन्हें खुश होता देखकर बाबूजी की खुशी का ठिकाना न रहा। कुछ ही क्षणों में बाबूजी ने देखा-दोनों बच्चे कुछ सोच में पड़ गए। उनके चेहरे बुझते-से चले गए।

''क्या हुआ?''

एक बच्चे ने खिलौने को वापस उनके झोले में डालते हुए कहा-''मैं नहीं ले सकता। मैं इसे घर ले जाऊँगा, तो माँ-बाप समझेंगे कि मैने मालिक से ओवरटाइम के पैसे उन्हें बिना बताए ले लिये होंगे और उनका खिलौना ले आया होऊँगा...वे नहीं मानेंगे कि किसी ने मुफ्त में दिया होगा। शक में मेरी तो पिटाई हो जाएगी।''

दूसरा बच्चा खिलौनों से हाथ खींचता हुआ बोला, ''बाबूजी, खिलौने लेकर करेंगे क्या? मैं फैक्टरी में काम करता हूँ। वहीं पर रहता हूँ। सुबह मुँह अँधेरे से देर रात तक काम करता हूँ। किस वक्त खेलूँगा? आप ये खिलौने किसी 'बच्चे' को दे देना।''

●

जानवर भी रोते हैं

जगदीश कश्यप

चोर निगाहों से बन्तो ने देखा कि सरदारजी बार-बार उसकी ओर देख रही थी। उसने चाहा कि वह पूछ ले- कोई तकलीफ तो नहीं। कहीं सरदारनी पहले की तरह फिर से न बिफर पड़े-''नी बन्तो, मैं हाँ जी....तू की खाके मेरे सामणे बोलेगी...'' चाहती तो बन्तो भी उसे खरी-खरी सुना देती पर औरतों ने समझाया कि लड़ाका कुलवन्त कौर के मुँह लगना तो अपना चैन खोना है।

''तुसी वाज (आवाज) दित्ती मैनूं?'' बन्तो ने छत से खड़े होकर पुकारा। आँगन में खड़ी भैंस बार-बार बिदक रही थी। कुलवन्त ने इस अन्दाज से सिर हिलाया कि उसने कोई मदद नहीं माँगी है। फिर भी बन्तो जोर से बोली-''ठैर बीजी मैं आनियाँ...''

उस समय कुलवन्त खेतों में था। पुरबिए भैसों के साथ खर-पतवार साफ कर रहे थे। इधर सिरफिरों ने उसके बीमार पति, पुत्रवधू, उसके दोनों बच्चों को गोलियों से भून डाला था। पुत्र तेजिन्दर इस हत्याकाण्ड से पगलाया हुआ फिरता है। सरकार ने नौकरी देने की बात कही, पर कुछ नहीं हुआ।

बन्तो ने भैंस को सहलाया तो कुलवन्त को लगा कि उसकी पीठ सहलाई जा रही है। गाँव से झगड़ा करके वह सुखी नहीं रह सकी, यह अन्दाजा उसे अब हो रहा था। सिरफिरों की गोलियों से भैंस का कटड़ा भी मारा जा चुका था, जिस कारण भैंस कूदने लगी थी। बन्तो ने बाल्टी के पानी के छींटे भैंस के थन में मारे और धार काढ़ने लगी। कुलवन्त ने देखा-भैंस उसकी ओर इस अन्दाज़ से देखती हुई जुगाली-सी कर रही थी, मानों कह रही हो-''बन्तो का भी सारा परिवार गोलियों का शिकार हो गया। चलो तुम लोगों से सिरफिरों ने जो भी बदला लिया हो पर मैंने आतंकवादियों का क्या बिगाड़ा था जो मेरे कटड़े को मार गिराया।''

भैंस ने देखा कुलवन्त कौर बन्तो के नजदीक बैठ गई और उसकी पीठ से सिर टिकाकर रोने लगी। 'काश! कोई उसका भी रोना देख पाए,' गुमसुम भैंस ने सोचा।

●

जनहित

श्रीनिवास जोशी

राज्य में शेर का शिकार कानूनन अपराध था।

पहले दिन

मंत्रीजी के लाड़ले पुत्र की इच्छा हुई कि शेर का शिकार किया जाये।

दूसरे दिन

उच्चाधिकारियों को इसकी भनक पड़ी।

तीसरे दिन

समाचार पत्र में छपा कि अमुक वन में एक शेर आदमखोर हो गया है। जनता सावधान रहे।

चौथे दिन

जनहित में, शेर मार दिया गया।

●

BEST DEALS FLOORING

Residential & Commercial

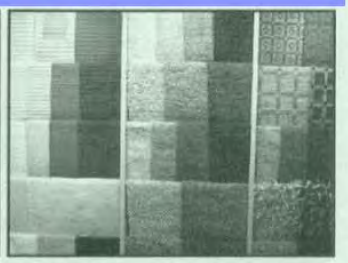

WE ALSO SUPPLY

• Base Boards • Quater Rounds • Mouldings • Custom Stairs
• All Kinds of Trims • Carpet Binding Available

Call: **RAJ 416-292-6248**
130 Dynamic Drive, Unit #21, Scarborough, ON M1V 5C9
www.bestdealsflooring.ca

Custom Blinds • Ciramic Tiles • Hall Runner
FREE- Installation - Under Padding - Delivery

Free delivery
Under pad
Installation

Residential
Commercial
Industrial
Motels & Restaurants

Free Shop at
Home Service Call:
416-292-6248

Jaswinder Saran
Sales Representative

Direct: 416-953-6233
Office: 905-201-9977
HomeLife/Future Realty Inc.,
Independently Owned and Operated Brockerage*
205-7 Eastvale Dr., Markham, ON L3S 4N8
Highest Standard Agents...Highest Results!...

HOMELIFE HIGHER STANDARDS
REALTOR
MLS MULTIPLE LISTING SERVICE

लघुकथा जगत् में उन कथाकारों की लघुकथाओं को अलग से रेखांकित करने की ज़रूरत है; जिन्होंने अपने रचना-कौशल से यह सिद्ध कर दिया कि लघुकथा भी किसी कहानी उपन्यास की तरह अपनी ताकत का अहसास करा सकती है ,पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ सकती है। नई ज़मीन में प्रस्तुत ये रचनाएँ विषय की दृष्टि से नई ज़मीन तैयार करने में सफल रही हैं। इस प्रकार की रचनाएँ लघुकथा जगत् में सीमित ही है। जिन रचनाओं तक हम पहुँच सके ,उनमें से दस लघुकथाएँ यहाँ प्रस्तुत करते हुए हर्ष हो रहा है। रघुनन्दन त्रिवेदी , मुकेश वर्मा,सत्यनारायण, आनंद एवं उर्मिल कुमार थपलियाल की लघुकथाएँ रचना कौशल की दृष्टि से भी एक मॉडल के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है। ये लघुकथाएँ हमें लघुकथा के भविष्य के प्रति आशान्वित करती हैं ।

मानुस -गंध

सरोज परमार

हवा में हल्की सी सरसराहट और हलचल महसूस हुई। नहीं, यह सिर्फ़ हवा का झोंका नहीं था। इसमें मानुस-गंध घुली थी। जो लोग प्रतिदिन, प्रतिपल इसके सम्पर्क में रहते हैं,वे इसे भूल सकते हैं। बल्कि भूल जाते हैं। पर वे इसे पहचानने में कैसे भूल कर सकती हैं जिन्हें बहुत-बहुत दिन हो जाते हैं इसकी कमी के अहसास को जीते और तब कुछ पल हासिल होते हैं ,इसे महसूस करने के। हँसते,बोलते,सुनते, 'गंध भरे' कुछ पल।

तथाकथित छुट्टियों में से महीने में एकाध बार कोई आता है। बाज़ार से ज़रूरत के सामान की व्यवस्था करने। (बाकी काम वे अपने कराहते-काँपते शरीर को करने को बाध्य करती हैं) और उस 'व्यवस्था दिवस' के आने में अभी पूरे बीस दिन का इन्तज़ार बाकी है। सुबह ही तो उन्होंने गिना है। फिर यह कौन.....

आँखें कमज़ोर सही, पर उस झुटपुट अँधेरे में गौर से देखा, तो नज़र आ ही गया। सचमुच में एक जीता जागता इंसान! बरबस ही उनके चेहरे पर कर्णचुम्बी मुस्कुराहट फैल गई।

भय, आतंक, निरीहता देखने के आदी लुटेरे की विमूढ़ दृष्टि देख रही थी-कभी अपने हाथ के हथियार को और कभी उस अजनबी चेहरे की स्वागतपूर्ण हार्दिक मुस्कुराहट को।

●

पहला संगीत

अखिल रायजादा

रोज़ की तरह एक गर्म, बेवजह उमस भरा दिन। पसीने में नहाते, किसी तरह साँस लेते यात्रियों को समेटे लोकल ट्रेन पूरी रफ्तार से चली जा रही थी। यात्रियों की इस भीड़ में मैं भी अपना नया खरीदा गिटार टाँगे खडा था। इस हालत में स्वयं और नए गिटार को सम्हालने में बड़ी परेशानी हो रही थी।

सौभाग्यवश दो स्टेशनों के बाद बैठने की जगह मिली। लोकल के शोर में एक सुर सुनाई पड़ा, ''जो दे उसका भला ,जो न दे उसका भी भला.....'' एक लँगड़ा भिखारी भीख माँगते निकला फिर दो बच्चे भीख माँगते निकले, फिर एक औरत खीरा बेचती आई। एक चायवाला और उसके पीछे गुटका, तम्बाखू, पाउच वाले चिल्लाते निकले। किनारे की सीट पर साथ बैठे परेशान सज्जन बड़े ध्यान से इन्हें देख रहे थे, बोल पड़े-''इतनी भीड़ में भी इन फेरी वालों, भिखारियों को जगह मिल ही जाती है। अभी मेरे ऊपर गर्म चाय गिरते गिरते बची है। आजकल तो छोटे-छोटे बच्चे भी भीख माँग रहे है।

तभी एक लड़की छोटे से लड़के को गोद में उठाए भीख माँगते गुजरी। उनके कटे-फटे कपड़े उनका परिचय करा रहे थे। दूसरे सहयात्री ने कहा-''ये देखिए भावी भिखारी। पता नहीं इनके माँ-बाप पैदा क्यों करते हैं?''

विगत छह माह से मैं भी इस रूट पर चल रहा हूँ परन्तु मैंने इन बच्चों को पहले भीख माँगते कभी नहीं देखा था। पहले सहयात्री ने कहा-''अरे परसो जिस भिखारिन की ट्रेन से कटकर मौत हुई थी ये उसी के बच्चे है!''

अब छोटे बच्चों के भीख माँगने के कारण ने अजीब सी खामोशी की शक्ल ले ली। सभी फेरीवालों, भिखारियों की तरह उस लड़की ने भी बच्चे को गोद में उठाए कई चक्कर लगाए। मैंने ध्यान दिया उसकी नजरें मुझ पर रुकती थी। ट्रेन चली जा रही थी, लोकल का अंतिम पड़ाव और मेरा गंतव्य आने में अब कुछ ही समय बचा था।

बिखरे बाल और उदास चेहरा ओढ़े, फटी हुई किसी स्कूल की ड्रेस में बच्चे गोद में उठाए वो लड़की अब मेरे ठीक सामने थी। मैंने पाया कि इस बार वो ना केवल मेरी ओर देख रही थी बल्कि उसने अपना हाथ भी आगे बढ़ा रखा था। मुझे अपनी ओर देखते वो बोली-''आज मेरे भाई का जन्मदिन है।'' अमूमन मेरी जेब में चाकलेट पड़ी रहती है । मैंने गोद में रखा गिटार किनारे रख कर जेब टटोली । दो चॉकलेट निकाल कर उसे दी। छोटा बच्चा किलकारी मारता उन पर झपटा, परन्तु बच्ची की उँगली फिर भी मेरी तरफ थी। अब तक इस अजीब सी स्थिति ने सभी यात्रियों का ध्यानाकर्षण कर लिया था। कुछ उन्हें गालियाँ देकर वहाँ से जाने को कहने लगे।

इसके पहले कि मैं कुछ समझूँ उसने कहा-''आज मेरे भाई का जन्मदिन है...'' मैं प्रश्नवाचक चिह्न- सा उसे ताक रहा था। वह लड़की फिर बोली-''आज मेरे भाई का जन्मदिन है। हैप्पी बर्थ डे बजा दो ना....'' लोकल अपनी रोज की रफ्तार में थी। मैंने केस से अपना नया गिटार बाहर निकाला और हैप्पी बर्थ डे टू यू बजाने लगा। छोटा बच्चा गोद से उतर कर नाचने लगा। सहयात्री आश्चर्य में थे। लड़की की आँखों में अद्भुत चमक थी। ''हैप्पी बर्थ डे टू यू'' बजाते पहली बार मेरी आँखें नम थी।

●

आईना

सत्यनारायण

आले में आईना रखा रहता। धुँधला, पर हाथ फिराते ही एकदम साफ। पिता रोज सवेरे उसके सामने खड़े हो जाते और आहिस्ता-आहिस्ता अपनी दाढ़ी बनाते। सब कुछ एक ही क्रम में। वह आईना पिता का आईना था। वे सब उसे पिता का आईना कहकर पुकारते। क्योंकि वे किसी को उसे हाथ नहीं लगाने देते थे। कई बार उनकी अनुपस्थिति में वह आईने के सामने खड़े होकर खुद को देखता तो उसमें उसकी जगह पिता का चेहरा तैरने लगता। वह घबराकर वहाँ से हट जाता।

''जब मैं बड़ा हो जाऊँगा।'' वह सोचता।

''इस आईने में ज़रूर कोई ख़ास बात है।'' मन गुनगुनाता।

''बड़े हो जाओ तब तुम भी इससे अपनी दाढ़ी बनाना। ये तुम्हारे दादा का है।'' एक दिन पिता ने उससे कहा।

''पिता का आईना!'' वह हैरान होकर उसे बार-बार छूता।

अपने अन्तिम दिनों में पिता को कम सूझने लगा था। सब कुछ धुँधला-धुँधला। लेकिन सुबह-सवेरे का क्रम कभी भंग नहीं हुआ। वे निश्चित समय आईने के सामने जाकर खड़े हो जाते। उसे अपनी बंडी से रगड़कर साफ करते और ब्रश से झाग उपजाकर धीरे-धीरे दाढ़ी बनाते।

एक दिन पिता चल बसे। उसके न आँसू आये न वह दहाड़ मारकर रोया। वह सिर्फ़ सन्न-सा सब देखता रहा और चुप हो गया। बहुत कोशिश की पर आँसू का एक कतरा बाहर नहीं निकला। परिवार के लोग हैरानी से उसे देखते रहे थे।

अब वह बड़ा हो गया था। पता ही नहीं चला धीरे-धीरे कब उसने पिता का स्थान ले लिया। रोज़ सवेरे उसी तरह उसी आईने के सामने खड़ा होकर दाढ़ी बनाता। शुरु-शुरु में उसमें से झाँकता पिता का चेहरा दिखायी देता। वह डर जाता। धीरे-धीरे उसका और पिता का चेहरा एकमेक हो गया। कई बार वह तय नहीं कर पाता कि वह पिता की दाढ़ी बना रहा है या अपनी।

''तू अभी बच्चा है।'' कभी ब्लेड से कट लग जाता तो पिता आईने से निकलकर कहते।

''तुम ठीक अपने पिता पर गए हो । तुम्हारा चेहरा, हाव-भाव, आदतें सब कुछ वैसे ही हैं । यकीन न हो तो फोटो से मिलान करके देख लो ।'' पत्नी अक्सर मज़ाक करती।

उस दिन वह देर से उठा था। पिछले कुछ दिनों से आँखों से धुँधला दिखाई देने लगा था। आईना भी वैसा ही हो गया था। लेकिन हाथ इतने अभ्यस्त हो गए थे कि बिना आईना देखे वह दाढ़ी बना लेता था । उस दिन देर रात तक नींद नहीं आई थी । सुबह-सवेरे उनींदे की हालत में आईने तक गया । वह वहीं रखा था, जहाँ रोज़ रहता था । पर आज उसके हाथ जाने क्यों काँप रहे थे । गालों पर साबुन के झाग लथेड़कर उसने आईना उठाया और बनियान से पोंछा । इसी बीच हाथ से फिसलकर आईना फर्श पर कई टुकड़ों में बिखर गया ।

वह थर-थर काँपने लगा और वहीं बैठकर ज़ोर से रोने लगा जैसे उसके पिता आज मरे हों ।

●

Hindi Pracharni Sabha

(Non-Profit Charitable Organization)

Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna ID No. 84016 0410 RR0001

'For Donation and Life Membership we will provide a Tax Receipt'

Annual Subscription: $25.00 Canada and U.S.A.

Life Membership: $200.00

Donation: $

Method of Payment: Cheque, payable to "Hindi Pracharni Sabha"

सदस्यता शुल्क
(भारत में)
वार्षिक: 400 रुपये
दो वर्ष: 600 रुपये
पाँच वर्ष: 1500 रुपये
आजीवन: 3000 रुपये

Contact in Canada:
Hindi Pracharni Sabha
6 Larksmere Court
Markham,
Ontario L3R 3R1
Canada
(905)-475-7165
Fax: (905)-475-8667
e-mail: hindichetna@yahoo.ca

Contact in USA:
Dr. Sudha Om Dhingra
101 Guymon Court
Morrisville,
North Carolina
NC27560
USA
(919)-678-9056
e-mail: ceddlt@yahoo.com

Contact in India:
Pankaj Subeer
P.C. Lab
Samrat Complex Basement
Opp. Bus Stand
Sehore -466001, M.P. India
Phone: 07562-405545
Mobile: 09977855399
e-mail: subeerin@gmail.com

धरोहर

आनंद

चकित-सा मैं राजघराने के विशाल संग्रहालय को देख रहा था। राजघराने का गौरवशाली अतीत अपने सम्पूर्ण वैभव और पराक्रम के साथ मौजूद था वहाँ, जबकि देश के ज़्यादातर लोगों का वर्तमान भी बिगड़ा जा रहा था। वहाँ, अपनी चमक-दमक से आँखें चुँधिया देने वाले बहुत-से मुकुट थे, जिनके बारे में प्रसिद्ध था कि हरेक उनके आगे झुकता,मगर वे किसी के आगे नहीं झुकते थे। थोड़ा आगे वे तलवारें, भाले और धनुष-बाण थे, जिनसे दुश्मन की छाती छेदकर मान मर्दन किया गया था। वे शेर, चीते और दूसरे खूँखार जंगली जानवर थे, जिनका किसी-न-किसी राजा ने शिकार किया था। यह राजा का प्रताप होता था कि कोई उनके हाथों अगर मारा भी जाता था, दर्शनीय और इतिहास की धरोहर बन जाता। अलग-अलग आकार और डिज़ाइन की मदिरा की सुराहियाँ और प्याले थे, हालाँकि खाली थे। उगालदान था, जिसमें किसी राजा ने थूका था। पहली बार लगा कि महानों का किसी में थूकना भी उसे महत्वपूर्ण बना देना है।

रानियों-महारानियों के रत्न जड़ित लिबास रखे थे, वे दर्पण थे, जिनमें सज-सँवर कर हरेक रानी खुद को निहारती होगी और सोचती होगी कि राजा उसे निहारेगा तो कैसा लगेगा? कलात्मक ढंग से बने कई सिंगार दान थे। किसी सिंगारदान की अहमियत इस लिए नहीं थी कि कारीगर ने उसे कितने कलात्मक ढंग से बनाया था, बल्कि इसलिए थी कि अमुक रानी इसका प्रयोग करती थी। सोने और चाँदी के काम वाले छोटे-छोटे नोकदार जूते थे। ठीक उन दिनों,जिन दिनों छोटे-छोटे राजकुमारों के नन्हें-नन्हें पाँव इन सुन्दर-सुन्दर जूतों से सजे होंगे, देश का ज़्यादातर बचपन गर्मियों में गर्म रेत पर नंगे पैरों जल रहा होगा, जबकि सर्दियों में ठंडी रेत पर ठिठुर रहा होगा।

वे महाकाव्य थे, जिन में कवियों ने राजाओं की वीरता के गुण गान किए थे। दूसरे राजाओं को लिखे पत्र रखे थे। वे हुक्मनामे थे, जिन्हें खास-खास मौकों पर जारी किया गया था। हरेक हुक्मनामे के नीचे उसे जारी करने वाले राजा के हस्ताक्षर थे।

राजघराने के अतीत के रू-ब-रू होते हुए यह विचार एकाएक आया कि मेरे पास अपने पूर्वजों से जुड़ी एक भी चीज़ नहीं है, हालाँकि होनी चाहिए थी। बेशक कोई बहुमूल्य चीज़ नहीं, मगर पूर्वजों का प्रयोग किया हुआ कुछ भी । पिता की पगड़ी या धोती का फटा-पुराना कोई हिस्सा। माँ का पहना कोई कपड़ा या चूड़ी का कोई टुकड़ा, या...नहीं, ज़ेवर मिलने की कोई सम्भावना नहीं थी। माँ के पास कोई जेवर नहीं था। अपने बचपन का मिट्टी का कोई टूटा-फूटा खिलौना भी मिल सकता था।

जल्दी से घर पहुँचा और अतीत की कोई धरोहर खोजने लगा, मगर निराश हुआ, क्योंकि मिला कुछ भी नहीं। अलबत्ता तो गरीबी और अभाव कुछ भी बचा रखने की मोहलत नहीं देते, फिर यह भी याद आया कि पिता का बनाया झोंपड़ा तो पिछले दिनों आई बाढ़ बहा ले गई थी। इस नए झोंपड़े में पुराना कुछ मिले भी तो कैसे?

सब कुछ गँवा चुके व्यक्ति-सा दु:ख में डूबा था कि गाँव का साहूकार बगल में बही दबाए, आया।

''शायद तुम्हें मालूम नहीं, तुम्हारे पिता की तरफ कुछ क़र्ज़ बकाया है।'' बही के पन्ने पलटते हुए उसने कहा, ''लो, खुद देख लो। एक-एक पाई का हिसाब लिखा है। तुम्हारे पिता का अँगूठा लगा है।''

मैं रोमांचित हो उठता हूँ। मेरे किसी पूर्वज का कुछ तो मिला। और कुछ नहीं तो पिता के अँगूठे का निशान ही सही। उतावला-सा अँगूठे का निशान देखता हूँ। जैसे हुक्मनामे के नीचे राजा के हस्ताक्षर थे, वैसे ही क़र्ज़ के नीचे पिता का अँगूठा था। तो ऐसा था उनका अँगूठा! मुँह माँगी मुराद पाए इंसान की तरह, खुशी से पागल-सा मैं, देर तक अँगूठे के निशान को देखता रहता हूँ। फिर थोड़े से मूलधन और बहुत से ब्याज के जोड़ को देखता हूँ। पैरों के नीचे की ज़मीन खिसकती-सी लगती है। साहूकार के ऋण से छुटकारा पाने के लिए पैसा था नहीं। मूलधन और ब्याज का जोड़ इतना था कि अपना झोंपड़ा बेचकर भी चुकाया जा नहीं सकता था।

अपने अतीत की किसी धरोहर को पाने के लिए कुछ ही देर पहले तड़प रहा था मैं। लेकिन अब छटपटा रहा था कि साहूकार के पास गिरवी रखे अपने पिता के अँगूठे के निशान से छुटकारा मिले तो कैसे?

●

तकनीक का धमाका

जावेद आलम

तकनीकी इन्कलाब की बदौलत बड़ी गाड़ियों के साथ बाइक तक में नए-नए सिस्टम आने लगे थे। बाइक पर हवा की रफ्तार से उड़ते, उसने नए लेज़र पावर के बारे में सोचा जो इस नए मॉडल में हाल ही इंट्रोड्यूस कराया गया था। इस पावर की मदद से वह अपने आगे जा रही हल्की गाड़ियों को एक-दो फुट तक दाएँ-बाएँ कर, अपने लिए रास्ता बना सकता था। आगे चलने वाली कोई छोटी-मोटी गाड़ी साइड नहीं दे रही हो तो इस किरण शक्ति द्वारा आप उसे अपनी राह से कुछ इधर-उधर कर सकते हैं ।

थोड़ी देर बाद ही उसे अपने आगे बाइक सवार नज़र आया। वह रोड डिवाइडर की रेलिंग से लगभग सटा हुआ हवा से बातें कर रहा था। इसने भी अपनी गाड़ी उसके पीछे डाल दी और यकायक हवा के साथ उसे विचार आया कि अगर वह अपनी किरण से इस बाइक सवार को ज़रा भी दाएँ तरफ़ खिसका दे तो वह रेलिंग में घुस जाए। हे भगवान! यह मैं क्या सोच रहा हूँ? तभी जैसे किसी ने उसे ज़रा-सा दाएँ खिसका दिया। धमाके की गूँज के अलावा उसे कुछ भी याद न रहा।

●

उस मकान में

मुकेश वर्मा

रिटायरमेंट के अगले ही दिन हम जिस मकान में पहुँचे, वह शहर से थोड़ा हटकर अर्धविकसित कॉलोनी में बना था। मकान पहाड़ी की चढ़ाई पर था। वहाँ से ढेर सारा आसमान और दूर की झील पास दिखती थी, यहां तक कि उसका पानी भी दिखता था। बाजार नहीं दिखता था लेकिन पास था। मेरी पत्नी ने बहुत सोच-समझकर पसन्द किया था। रिटायरमेंट के नज़दीकी दिनों में काम की कुछ ऐसी व्यस्तता रही कि मैं इस मकान को पहले देख नहीं पाया; लेकिन सदा की तरह पत्नी की कार्य-कुशलता, दूरन्देशी और चतुर बुद्धि के भरोसे भली तरह निश्चिन्त रहा।

जब मैं पहली बार पहुँचा, रिटायर हो चुका था। सामान उतर रहा था। सबसे पहले मैंने ट्रक से एक कुर्सी निकलवाई। बरामदे में रखी और बैठ गया। सिगरेट जलाकर कौतूहल से उस मकान को देखा जहाँ मुझे अब जिन्दगी के आखिरी दिन गुज़ारने थे। फिर टहलते हुए उस खिड़की को देखा जिसके करीब हमारा पलंग लगाया जा रहा था। खिड़की में से किसी डाल के फूल बार-बार भीतर घुसने की कोशिश करते और बाहर हो जाते। उस रसोई-घर को देखा जहाँ मेरी आखिरी दाल रोटी बननी थी। उस छोटे से पूजाघर को देखा जहाँ जल्द ही पत्नी के साथ चटाई पर बैठकर मुझे भगवान के साथ अपना और उनका आखिरी समय गुज़ारना था।

धीरे से बाहर निकला। गेट से एक रास्ता सीधे झील को जाता था। झील के दूसरे सिरे पर श्मशान था। लौटते हुए कदमों को गिना। आश्वस्त वापस लौट आया। लेकिन गहरी थकान लगी। रिटायरमेंट के बाद पहली गहरी थकान। मैंने हँसना चाहा लेकिन हँस नहीं पाया। यह अजब लगा।

वापसी पर देखा। पत्नी अखबार वाले को कल से ज़्यादा अखबार लाने के निर्देश दे रही थी। साहब अब ज़्यादा अखबार पढ़ेंगे। सोने के कमरे में टी.वी. ऐसी जगह रखा गया ,जहाँ से दिन-रात देखा जा सकता है,पसरे हुए,अधलेटे भी।

हाथ भर दूरी पर किताबों की अलमारी, जिससे टेबिल पर टेलीफोन, पानी का जग, गिलास, दवाइयों की ट्रे। पलंग के पास घंटी जिससे कभी भी किसी को बुलाया जा सके। नज़दीक दीवार पर चिपके काग़ज़ में फेमिली डाक्टर,बेटे-बेटियों,बैंक,पोस्ट आफिस,पेंशन-आफिस और एक-दो दोस्तों के टेलीफोन नम्बर।

पत्नी ने मेरे सूट और कपड़े सन्दूक में बन्द कर दिए। मेरे लाख मना करने पर भी चार-छह कुर्ता-पजामा सिलवाए गए। धोती भी ली और शाल भी। ऐसी चप्पलें खरीद लाए जिसके तल्ले खुरदुरे और चिकने फर्श पर कतई फिसल न सकते हों। मैंने देखा कि जहाँ चप्पलें रखी हैं, वहाँ एक छड़ी भी रख दी गई है। छड़ी की मूँठ भद्दी और चिकनी थी। कमरे में कहीं ऐश ट्रे नहीं थी। कचरे में फेंक दी गई थी।

रात का कातर अँधेरा है। बहुत दूर से तेज़ ढोलकों पर कीर्तन की अस्पष्ट आवाज़ें भरकर रह-रहकर आ रही हैं । करीब लेटी पत्नी के हल्के खर्राटे हौले से उठ-बैठ रहे हैं। मैं उठा। बाहर छत पर आया। दूर झील का पानी चाँदनी में चमक रहा है। उसके आगे श्मशान का अँधेरा है। भीतर आकर मैंने धोती-कुर्ता पहना। शाल ओढ़ी। चप्पलों में पाँव डाले और छड़ी उठा ली। ड्रेसिंग टेबिल के सामने खड़ा हो गया। बत्ती जला दी। आईने में एक अजनबी इंसान खड़ा था। मैंने रोना चाहा लेकिन रो नहीं सका। यह अजब लगा।

●

समाजवाद

उर्मिल कुमार थपलियाल

दिन भर धरना,रैली,प्रदर्शन और नारेबाज़ी के बाद वह जब रात को घर लौटा तो बेहद थक गया था। जैसे वो एक दर्द हो ,जो निकास नहीं पा रहा हो। घर जाकर उसने बड़ी दिक़्क़त से अपनी दोनों टाँगें फेंक दी। एक टाँग मेज़ के पास और दूसरी बाथरुम के दरवाज़े के पास जाकर गिरी। अपने दर्दीले कंधे उचकाकर उसने दोनों हाथों से अपना भारी सर अलग किया। वो तकिए और बिस्तर के नीचे लुढ़क गया। अपने दोनों हाथ उसने झटके से अलग किए। वे पलंग के इधर-उधर जा गिरे। उसका धड़ बिस्तर के बीचों-बीच कहीं जाकर अटक गया। अब वह कमरे में कहीं नहीं था। उसकी एक विभाजित सी उपस्थिति थी। आँखों की पलकें बंद थी जैसे किसी ने उन्हें सी दिया हो। वह लगभग अभंग था।

सवेरा होते ही उसके दरवाज़े की साँकल खटकी। खटकने की आवाज़ सुनने से पहले, एक तरफ पड़े चेहरे की पलकें खुलीं। दरवाज़े पर कोई बड़ी हड़बड़ी में चिल्ला रहा था कि- ''उठो, जल्दी उठो। समाजवाद आ गया है।'' वो अस्तव्यस्त था। दरवाज़े की साँकल फिर बजी और चिल्लाने वाला अगले मकान की तरफ बढ़ गया। पाँव पहने। कंधों पर सर टिकाया और सड़क की तरफ दौड़ पड़ा।

कहीं कुछ नहीं था। चिल्लाने वाला किसी दूसरे मकान की साँकल बजा रहा था। पागलों की तरह। मुड़-मुड़ कर उसे देख रहे हैं। कुछ हैरत में हैं कुछ चकित। कुछ देर के बाद लोगों के हँसने की आवाज़ उसे सुनाई देने लगी। उसे रोना आने लगा। वह रोने लगा।

उसे लगा कुछ गड़बड़ ज़रूर है; क्योंकि जब वो रोने लगा तो उसके आँसू उसकी पीठ पर बह रहे थे।

●

पावर विन्डो

अरुण मिश्र

आतंकवाद प्रभावित क्षेत्र था अत: शासकीय वाहनों में भी लाल एवं पीली बत्तियाँ लगाना प्रतिबन्धित था। वे बत्तियाँ देखकर विस्फोट कर देते थे। क्षेत्र की निगरानी समिति का दौरा कार्यक्रम था। अफसरों का लाव-लश्कर बन-सँवरकर जनता की सेवा हेतु दौरे पर था। एग-पेग-लेग की मुकम्मल व्यवस्था थी। समूचा जिला स्वागत द्वारों से अटा पड़ा था। यूँ तो काफिले में कुल चौबीस गाड़ियाँ थीं, पर साहब जिस 'शेवरलेट तवेरा' में सवार थे, उसकी रफ्तार बेजोड़ थी । मातहत अधिकारियों, सुरक्षाकर्मियों की गाड़ियाँ काफी पीछे छूट जाती थीं। वातानुकूलित गाड़ी की पिछली सीट पर अधलेटे हुए साहब चने के खेतों की हरियाली देख रहे थे। एग-पेग-लेग के नियमित सेवन से ऊब चुके साहब को अचानक हरे चने खाने की तीव्र इच्छा हुई ;सो आदेशात्मक लहजे में बोले, ''रामसिंह,स्टाप द कार' चालक ने तत्काल ब्रेक लगाकर कहा ''जी सर'' साहब ने इच्छा जाहिर की, निजी सहायक और चालक अगले ही पल कूदकर चने के खेत में जा पहुँचे। वे चने के पौधे उखाड़ने को झुके ही थे कि एक रौबदार भदेस आवाज़ सुनाई दी, ''अरे भइया जोका करय्ये तनक रुको तो।'' दोनों पल भर को ठिठके और आवाज़ की दिशा में देखने लगे। एक मानवाकृति उनकी तरफ दौड़ती दिखी। अगले ही पल सिर्फ़ लंगोटी पहने छह फुट का ग्रामीण ,तेल पिलाई काली भीमसेनी लाठी लिये उनके समक्ष खड़ा था। उसके शरीर की फड़कती मछलियाँ उसके बलिष्ठ होने का प्रमाण थीं।

साहब पावर विन्डो का काँच नीचे कर माज़रा देख रहे थे। ग्रामीण ने लाठी को बाएँ हाथ में थामा और हाँफते हुए कहने लगा, ''भइया जेहै ठाकुर को खेत, तुम अबहीं फोरन बाहर चलो,'' इस अप्रत्याशित व्यवहार से दोनों एक-एक कदम पीछे हटे फिर सूखते गले को थूक से तर करते हुए निजी सहायक ने भौहें टेढ़ी करते हुए कहा-''अरे तू कौन है मिस्टर,आदमी पहचान कर बात किया करो। जानते हो किससे बात कर रहे हो?'' ग्रामीण ने तपाक से कहा-''हमावो नाव शिवधारी है और खेत की रखबारी करत हैं, मालिक को नाव बच्चा बहादुर सिंह है।'' अब तक निजी सचिव सम्भल चुके थे। प्रशासनिक पौरुष जाग गया था। अत: साहब की ओर इशारा करते हुए कहने लगे, ''सुनो मिस्टर, साहब को चार-छह पौधे चनों के चाहिए, अचानक साहब को खाने का मन हो गया है।'' ग्रामीण ने गम्भीर होकर कहा-''सुनो भइया, हम रखवारी करते हैं; तनक समझौ, हम मालिक नई हैं रखवाल हैं। मालिक के कहे बगैर एक दाना ना मिलहै।'' मामला उलझता देख साहब गाड़ी से नीचे उतरकर खेत की मेड़ पर पहुँचे और दोनों को हिकारत की नज़रों से देखा ,मानो कह रहे हों दो कौड़ी के आदमी को सेट नहीं कर सकते हो, जेब से पचास का नोट निकाला और उसको लहराकर बोले-''लो पकड़ों चनों के पैसे।'' ग्रामीण ने लाठी पटककर कहा-''भइया बात तो समझो, हम इतै तीन पुश्तन से रखवाली करत, पर कोई माई को लाल अँगुली नाय उठा सकत। चनो को झाड़ तो हमारी लहाश जैहे तब उखाड़ पैहो। हमने अगर बेईमानी करी तो हमारी रोजी-रोटी चली जैहे।'''

बात बहुत बिगड़ जाती मगर तभी गाड़ियों का काफ़िला वहाँ आ पहुँचा। सुरक्षाकर्मियों की गाड़ी काफ़िले में सबसे आगे थी। पुलिस कप्तान ने उतरकर साहब को सलूट बजाया। इतनी गाडियाँ देख ग्रामीण भौंचक्का रह गया । एक गाड़ी से कार्बाइन धारी जवान उतरे। अब शिवधारी की हालत पतली हो गई। उसको लगा कि साहब खुदा तो नहीं पर खुदा से कम भी नहीं हैं। उसकी लाठी उसके हाथ से छूट गई। निजी सहायक ने सारा वाकया कप्तान साहब को कह सुनाया। कप्तान तुरन्त भड़का - ''साले हरामखोर तेरी ये जुर्रत....फिर अचानक उसको साहब का ध्यान आया। उसने चापलूसीपूर्ण स्वर में कहा, ''सॉरी सर ! कष्ट के लिए क्षमा चाहते हैं।'' साहब कुछ बोले नहीं । वापस गाड़ी में बैठ गए। कप्तान ने जवानों को इशारा किया, पलक झपकते ही उन्होंने खेत का एक कोना उखाड़ डाला, मानों वे पूर्व प्रशिक्षित हों । निजी सहायक और चालक भी शेर हो गए थे। चालक ने ग्रामीण का हाथ पकड़ा और घसीटते हुए साहब की गाड़ी के पास ले आया। शिवधारी ऐसे खड़ा था मानो कोई मुजरिम कट्रे में खड़ा हो, साहब को अदब के साथ चने पेश किए गए। साहब ने गुरूर के साथ गर्दन टेढ़ी कर सिर्फ़ दो पौधे लिये, बाकी चनों का गट्ठर चालक ने गाड़ी की डिक्की में डाल दिया। शिवधारी को छोड़ अब सब चने खा रहे थे। निजी सहायक ने शिवधारी की ओर अँगुली से इशारा कर कप्तान से कहा, ''इस बदतमीज का क्या किया जाए?'' कप्तान को अपनी वफ़ादारी दिखाने का मौका मिला, वह तुरन्त साहब के समीप पहुँचकर खुशामदी लहज़े में बोला, ''सर इस हरामखोर के ऊपर अन-लॉ-फुल प्रीवेंशन एक्ट लगा देते हैं, साला जेल में ही सड़ जाएगा,'' साहब कुछ बोले नहीं पूर्ववत् गम्भीरता ओढ़े गर्व से शिवधारी की ओर एकटक देखने लगे। मानो कह रहे हों कि अब पता चला कि हम कौन है? शिवधारी की घिग्घी बँधी हुई थी। जीवन में इतना भयभीत आज से पहले वह कभी नहीं हुआ था, तब भी नहीं, जब गाँव में डकैत घुस आए थे। उसका मन कर रहा था कि वह सरपट भाग जाए और सदा के लिए इस पुश्तैनी रखवाली के काम से किनारा कर ले। पर उसको बन्दूकों का भय था.....भागा नहीं कि गोली चली।

साहब ने इशारे से शिवधारी को बुलाया, मन-मन भर के भारी पाँव लिये वह गाड़ी के पास पहुँचा, उसने धीमे स्वर में कहा-''जी हुजूर।'' साहब ने उजड़े खेत की तरफ इशारा किया और मीठे स्वर में बोले-''तो मिस्टर अब तुम अपने मालिक को क्या जवाब दोगे? चार पौधे उखाड़ने में तुम्हारी नौकरी जा रही थी यहाँ तो आधा खेत उजड़ गया है?'' शिवधारी चुप मुँह में जैसे जुबान न हो। साहब ने दुबारा कड़े स्वर में प्रश्न दोहराया । शिवधारी को लगा कि उत्तर आवश्यक है। अत: उसने बड़ी मासूमियत से कहा, ''हुजूर कह दे हे-रात में नींद लग गई,जँगली सुअर खाय गए।'' तीन मिनट तक मुकम्मल सन्नाटा व्याप्त रहा, फिर बाल पकड़कर घसीटकर शिवधारी को कप्तान साहब ने अपनी गाड़ी में डाल दिया पर साहब को हरे चने भी लोहे के चने जैसे लग रहे थे।

●

FAMILY DENTIST

Dr. N.C. Sharma
Dental Surgeon

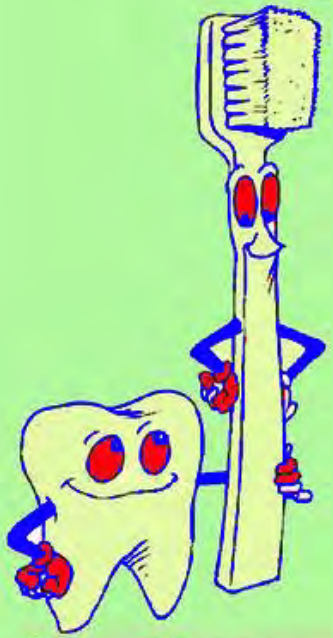

Dr. C. Ram Goyal
Family Dentist

Dr. Narula Jatinder
Family Dentist

Dr. Kiran Arora
Family Dentist

Call us at: 416-222-5718

1100 Sheppard Avenue East, Suite 211, Toronto, Ontario M2K 2W1 Fax: 416-222-9777

खुलता बंद घर

चैतन्य त्रिवेदी

कोई खास बात नहीं थी। चाबी गिर पड़ी थी। चारों तरफ अँधेरा था और अँधेरे में चाबी ढूँढना कितना मुश्किल काम है! जहाँ चाबी के गिरने की आवाज़ हुई, वहाँ घण्टों खड़ा रहता आया हूँ। आज भी घर के दरवाज़े पर मैं अकेला खड़ा सोच रहा था कि चाबी नहीं मिली तो ताला कैसे खुलेगा और मैं घर में दाखिल कैसे हो पाऊँगा? मुझे रात कहीं बाहर गुज़ारनी होगी या फिर इसी सहन में।

मैं अंदाज़े से ज़मीन पर हाथ फिरा रहा था, चाबी मिल जाए शायद। चाबी तो नहीं मिली, टूटी चूड़ी का एक टुकड़ा मिल गया, जिससे मुझे पत्नी के हाथों की तब की खनखनाहट याद आ गई, जब वह नई-नई आई थी। अब वह यदाकदा ही चूड़ियाँ पहनती है। स्मृतिपटल के एक गवाक्ष का ताला खुला।

हथेली में चुभे काँच के कारण खून की बूँद निकल आई। सड़क की मद्धिम रोशनी में मैंने देखा तो पत्नी के चेहरे की छोटी-सी बिंदी की तरह लगी खून की वह बूँद, जिसे देखकर पता नहीं मैं कहाँ खो गया, जबकि मुझे ढूँढनी चाबी है।

अगली बार कागज़ का टुकड़ा मिला। मैंने उजाले की तरफ जाकर देखा तो उस कागज़ पर बच्चे की भँगाई नई किताब का नाम लिखा था।

वहीं दरवाज़े के बाजू वाले पैसेज में रिबन की एक चिंदी मिली, मानो उस रिबन में झाँकते हुए बेटी पूछ रही हो, "पापा, नया रिबन लाए क्या?" घर, जो घर के भीतर नहीं पाया मैंने, वही घर दरवाज़े के आसपास बिखरा पड़ा था। चाबी मिल नहीं रही थी, लेकिन घर खुलता जा रहा था।

स्मृतियों में पिता

रघुनंदन त्रिवेदी

अपनी ज़िन्दगी में पिता वह सब हो सकते थे जो वे खुद या हम चाहते। घर में सबसे छोटा मैं था। मेरी इच्छा थी उन्हें घोड़ा बनकर खूब तेज़ भागते रहना चाहिए।

भाई मुझसे बड़े थे। वे चाहते थे -पिता नाव बनें ताकि बारिश के दिनों में हम चाहें तो नदी पार कर सकें। माँ और बहन का खयाल था कि उन्हें छाते में बदल जाना चाहिए , जो धूप में भी उतना ही ज़रूरी होता है जितना बारिश में।

घर में किसी एक की भी इच्छा अधूरी रह जाती तो पिता कष्ट पाते, इसलिए ज़रूरत के मुताबिक वे घोड़े और नाव और छाते में बदलते रहे।

'बदलना अपने को थका लेना है'-एक दिन पिता ने कहा। उनकी उम्र तब साठ साल थी। वे सचमुच थके हुए घोड़े की तरह हाँफ रहे थे और अब लालटेन या कुतुबनुमा जैसी कोई चीज़ हो जाना चाहते थे।

हम लेकिन चाहते थे कि वे बच्चों की पसन्द के हिसाब से हारमोनियम बनें और कमरे में बैठ जाएँ।

एकदम नई चीज़ था शुरू-शुरू में हारमोनियम घर के लिए। कुतूहलवश बच्चे उन्हें घेरकर बैठ जाते और जब मन होता, बजाते। पर जल्दी ही उनके सुर बिगड़ गए। यह भी तब हुआ जब बच्चे हारमोनियम से उकता गए थे। हारमोनियम बने पिता बच्चों की उपेक्षा से आहत होकर स्वत: बजने लगे । कई बार तो आधी रात हो जाने पर भी। असल में वे चाहते थे हम सब पहले की तरह चकित-से उनका किसी भी चीज़ में बदल जाने का जादू देखें और उन्हें घेरे रहें, शायद इसी कारण बिना किसी से पूछे एक दिन वे पेड़ हो गए। देखा जाए तो यहीं से उनकी कठिनाइयों का सिलसिला शुरू हुआ।

पेड़ में तब्दील होकर घर में वे जहाँ बैठते, वही धँस जाते-कभी भाई के कमरे में, कभी मेरे कमरे में। बार-बार उन्हें उखाड़कर दूसरी जगह ले-जाना पड़ता ,जो एक मुश्किल काम था। इसलिए एक दिन हमने प्रार्थना की कि वे पेड़ के सिवाय कुछ और हो जाएँ। पेड़ होकर पिता खुद कष्ट पा रहे थे, क्योंकि उखाड़ते वक्त न चाहते हुए भी ज़रा-सी बेरहमी हो जाती और जड़ों के टूटने से उनका शरीर थर-थर काँपता।

हमारी बात मानते हुए वे फिर से पिता बने, मगर उनके शरीर का कम्पन यथावत् रहा। डॉक्टर के मुताबिक इस बीमारी का नाम पार्किन्सन था और यह लाइलाज थी। लेकिन डॉक्टर को पता नहीं था कि पिता खुद को बदलने का जादू जानते हैं। वह एक पर्ची पर कुछ दवाइयों के नाम लिखकर घर से अभी गया ही था कि पिता के चेहरे पर मुस्कराहट आई। बेशक वे कमज़ोर हो चुके थे, मगर इतने भी नहीं कि एक बार और न बदल सकें। उनका चेहरा लाल था। हाथ-पैर काँप रहे थे। वे बदलने की कोशिश कर रहे थे। इस कोशिश में तीन-चार मिनट लगे। इन तीन-चार मिनटों में ही शरीर की पूरी ताक़त लगाकर वे एक तस्वीर में तब्दील हुए और मेरे कमरे में टीवी के दाईं ओर जहाँ दीवार खाली थी, टँग गए।

'सम्पदा' में कुछ ऐसे समर्थ लेखक दिए गए हैं ,जिन्होंने अपने रचना-कर्म से लघुकथा -जगत् को समृद्ध किया है । ये लम्बे अर्से से अपनी प्रभावी लघुकथाओं के द्वारा इस विधा में निरन्तर सशक्त उपस्थिति बनाए हुए हैं । सभी को यहाँ समाविष्ट करना सम्भव नहीं था । इस शृंखला में केवल 30 लेखक दिए गए हैं । इन्होंने अपने लेखन और अन्य रचनात्मक प्रयासों से लघुकथा जगत् को विकास-पथ पर आगे बढ़ाया है । इनके बिना लघुकथा साहित्य की चर्चा पूरी नहीं होती ।

उसका दर्द

विकेश निझावन

उसने सोचा, अबके मायके जाएगी तो माँ के सीने लगकर खूब रोयेगी। सब बता देगी कि ससुराल में उसे कैसी प्रताड़ना सहनी पड़ रही है।

माँ की देहरी पर कदम रखा तो माँ उसे देखते ही फूट पड़ी , तू इस चौखट से क्या गई, मेरा तो सारा सुख ही छिन गया। बहू मुझे कैसे सता रही है तू क्या जाने। अब तो बेटा भी पराया हो गया। इस उम्र में भला कहाँ जाऊँ मैं ?

वह भाभी के सामने पड़ी तो भाभी सुबक पड़ीं, हाय! तू यह घर छोड़ कर क्यों चली गई बिट्टो रानी। तेरे जाने के बाद तो माँ मुझसे बिल्कुल सौतेला व्यवहार करने लगी है। तू थी तो बीच बचाव करके मुझे बचा लिया करती थी। भगवान जाने अब अपना क्या बनेगा।

भाई कह रहे थे, तेरे जाने के बाद तो माँ बिल्कुल सठिया गई है।खुद तो पागल हो चुकी है, हमें भी पागल बना डालेगी।

छोटा भाई कह रहा था, दीदी, जाते हुए कुछ पैसे देती जाना। माँ और भाई तो फीस के अलावा एक पैसा नहीं देते।

छुटकी कह रही थी, दीदी, अबके जाओ तो मेरे लिए भी वहाँ कोई लड़का पसन्द कर लेना। मैं भी तुम्हारी तरह सुखी हो जाना चाहती हूँ।

वह लौट गई थी। अपना सुख और उनका दु:ख लिये।

●

प्रबन्धन

सुदर्शन रत्नाकर

''माँ मैंने तुम से नहीं कहा था कि तुम भूखी रह कर मुझे पढ़ाओ । तुम एक समय का खाना खाकर गुज़ारा करती रही, यह तुम्हारी अपनी मर्ज़ी थी? तुमने अपनी आत्मतुष्टि के लिए मुझे पढ़ाया लिखाया । मैं पढ़-लिख कर खूब कमाऊँ। तुम्हारा स्वार्थ निहित था तुम मुझे खुश और सुखी देखना चाहती थी न? सो देख लिया । अब अफ़सोस किस बात का । फिर मेरा पालन-पोषण करना पढ़ाना-लिखाना यह तुम्हारी ड्यूटी थी । तुमने पूरी कर दी । जितना मैं कर सकता हूँ ,उतना कर रहा हूँ, फिर शिकायत क्यों माँ?''

लक्ष्मी ने तीर्थ पर जाने के लिए बेटे से पैसे माँगे थे । उसके इन्कार करने पर लक्ष्मी ने उसे जब बताया कि कैसे उसने कष्ट झेल कर इस योग्य बनाया कि वह एक विदेशी कम्पनी में अच्छे वेतन पर काम कर रहा है । उसके प्रत्युत्तर में समीर ने उसे यह लम्बा -चौड़ा भाषण दे दिया।उसके पास पैसे होते तो वह कभी बेटे से नहीं माँगती ।वह जितना कमाती थी अपने खर्चे के लिए कम से कम रख कर शेष समीर को भेज देती थी। उसे अच्छे स्कूल में शिक्षा दिलवाई। कॉलिज में वह होस्टल में रह कर पढ़ता था । उसे क्या मिला । अकृतज्ञ बेटे की जली कटी बातें। उसका कलेजा छलनी हो गया। वह कुछ कहना तो नहीं चाहती थी,पर उससे रहा नहीं गया, बोली, ''समीर बेटे तुम भी तो अपनें बच्चों को पढ़ा रहे हो उन्होंने तो तुम्हें नहीं कहा । अपनी इच्छा से अच्छे स्कूल में पढ़ा रहे हो। कल को वे भी तुम्हें ऐसा ही उत्तर देंगे। समय बड़ा बलवान होता है जैसा बोओगे,वैसा ही काटना पड़ता है।''

''माँ मैं इस आशा से उन्हें नहीं पढ़ा रहा और न ही उनको यह जताऊँगा कि उनके पापा ने कोई अहसान किया है। फिर मैं उनसे अपने लिए कुछ मागूँगा क्यों? मैं अपने भविष्य के लिए अभी से सचेत हूँ । अपने बुढ़ापे के लिए अलग से पैसा जमा कर रहा हूँ आपने ऐसा क्यों नहीं सोचा?''

कैसे कहता कि उसकी जमा पूँजी तो वही है। अगर इतने पैसे होते तो वह एक समय का खाना खाकर निर्वाह क्यों करती । सोच उसे भी थी लेकिन उसने अपना भविष्य बेटे में देखा था, जो इस समय केवल अपने भविष्य की बात सोच रहा था, उसके वर्तमान की नहीं। सोच कर वह अंदर तक छीज गई।

●

अशुभ दिन

पवित्रा अग्रवाल

ससुराल आई बहू ने सास से कहा 'मम्मी जी अगले महीने की सात तारीख को गृह प्रवेश करने का प्रोग्राम है। आपको तारीख सूट करेगी न ?'

'अरे बहू तुझे इतनी भी समझ नहीं है....अगले सप्ताह से पितृ पक्ष शुरू हो रहे हैं...उन दिनों गृह प्रवेश कैसे हो सकता है ?'

'पर क्यों माँजी ?'

'अरे यह श्राद्धों के दिन होते हैं...इन दिनों कोई शुभ काम नहीं किए जाते।...अंग्रेज़ी पढ़ लिख कर तुम लोग भी अंग्रेज़ हो गए हो...भूल गए हो अपनी परम्पराओं को ।'

सास की बात सुन कर बहू का मुँह ऐसे मुरझा गया जैसे बिना पानी के पौधे। दूसरे ही पल उसे याद आया कि उन्हीं दिनों देवरानी भी माँ बनने वाली है।...वह मुस्कुरा कर देवरानी से बोली ''मधु इन अशुभ दिनों में तुम को भी बच्चे को जन्म देने का शुभ काम नहीं करना चाहिए।'

●

नसीहत

चित्रा मुद्गल

एक बच्चे की गिड़गिड़ाहट ने तन्मयता भंग की, ''सुबू से भुक्का है मेम साब। एक दस पैसा पेट के वास्ते.....आपका बाल-बच्चा सुखी रहेगा.....'' पत्रिका से दृष्टि हटाकर उस बच्चे को देखा। खासा हा-का चंट बच्चा लगा वह मुझे। आदतन नसीहत टिका दी, ''जाओ, जाकर कहीं काम-धाम करो। इतने बड़े होकर भीख मांगते शर्म नहीं आती?'' कहकर मैंने एक बार बस की प्रतीक्षारत लंबी क्यू को देखा, फिर पत्रिका में उलझ गई। भीख देना मेरे उसूल के खिलाफ है। तभी यह एहसास हुआ कि बच्चा सचमुच भूखा है तो बजाय उसे पैसे देने के खाने के लिए कुछ खरीद देती।

''आती तो है मेमसाहब! पन कौन काम देता है हम सड़क-छाप को?'' उसने मेरी उपेक्षा की परवाह न कर ढिठाई से कहा। ''क्यों नहीं देंगे?'' मैंने प्रतिप्रश्न किया, ''ईमानदारी और मेहनत से काम करने का वादा करो तो....कौन नहीं रखेगा? घरेलू नौकरों की कमी तो हर घर में है...मगर, सच तो यह है कि काम तुम लोग करना चाहो तब न! फोकट का खाने को मिलता है तो मेहनत क्यों करोगे भला? जाओ, तंग मत करो।''

लड़का तेज़ भी था, अड़ियल भी, टला नहीं, बोला, ''आपको नौकर की ज़रूरत है?''

''हाँ, है तो....''

''तो फिर....अपुन को काम पर रख लो न! ..शपथ ! चोरी-चपाड़ी का अपने को आदत नईं....जो बोलेगा, सब करेगा। घर का एक कोने में पड़ा रहेगा.....मंजूर?'' मैं उसके जवाब से पसोपेश में पड़ गई। पूरे वक़्त के लिए एक नौकर की मुझे सख्त ज़रूरत थी। दफ्तर और घर साथ-साथ चल नहीं पा रहे थे। कितनी बार कहा इन्होंने कि एक नौकर क्यों नहीं रख लेतीं, पर मुश्किल तो यह थी कि खा-पीकर भी नौकर सौ रुपए से कम पगार नहीं मांगता था। और इतनी तनख्वाह देना मेरे बस का नहीं था। सोचा, यह तो छोटा है, ताबे में भी रहेगा और काम भी ढंग का सीख जाएगा। पगार भी ज़्यादा नहीं देनी पड़ेगी। पूछा, ''तुम्हारे माँ-बाप किधर रहते हैं?''

''माँ अपना बचपन में मर गया। बाप है, पन बाप ने तीसरी शादी बनाया, वो उधर 'भारत नगर' का झोंपडपट्टी है न, उधरीच रेता।''

''ठीक है। मैं तुम्हें रख लूंगी। अपने घर ले चलो। तुम्हारे मां-बाप से तय कर लेती हूँ कि आज से तुम हमारे घर रहोगे....''

''माँ से पूछना, मेम साब! अपन रेता है। निकाल दिया उसने घर से....''

''क्या मतलब?''

''बोत खड़ुस है वो, अक्खा दिन भुक्का रखती थी। क्या करता, अपुन पड़ोस का 'बेकरी' से पाव चोरी करके कू लगा। एक दिन हाथ आ गया शेठ के....वो मारा...दे दिया पोलिस को....माँ-बाप बोल दिया-मैं उसका बच्चा नई। थाने से छुटा तो टिकट घरका सामने हमाली करना शुरू किया....पन...बिल्ला मंगता न हमाली करने का वास्ते....एक दादा के घर में रेता मैं। 'भीख' का पइसा वोइच लेता। फकत सुबू-शाम खाने को देता.....तुम हमारा पर ईस्वास करो.....अपुन दगा नई करेगा.....नक्की....रख लो न मेमसाब!....

उसके इतिहास ने मेरी हिम्मत निचोड़ ली। घर नहीं, घाट नहीं, जिस पर लफंगों का साथ। घर थोड़े ही लुटवाना है मुझे।

''देखो, सच तो यह है'', मैंने फौरन बात पलटी, ''मेरे पास तो पहले से ही एक नौकर है, तुम्हें रखकर क्या करूँगी, हाँ,यह लो पाँच रुपए।'' मैंने उसे 'पर्स' में से फौरन पाँच का नोट निकालकर थमाते हुए कहा, ''कुछ धंधा कर लेना....बूट-पालिश का या रूमाल-उमाल बेचने का....छोटी-मोटी चीज़ें बहुत-से बच्चे ट्रेनों में बेचते हैं।''

वह प्रतिक्रिया में तमतमा उठा। पाँच का नोट मेरे चेहरे पर उछालकर बोला, ''भीख न दो मेम साब, भीख! दस पैसा....पाँच पैसा...सीख क्यों देता है, व तुम खुदीच हमारा पर विस्वास नई कर सकता?.....नई माँगता। रखो अपना पैसा....'' और वह मेरी नसीहत का खोखलापन मुझ पर ही पटककर सर्र से भीड़ में गायब हो गया।

●

संत वाणी

माधव नागदा

पंडाल खचाखच भर चुका है। अलग-अलग ब्लॉक। हर ब्लॉक में एक टीवी ताकि संत छवि को समीप से निहारा जा सके। संत दूर व्यास पीठ पर विराजमान हैं। प्रवचन चल रहा है।

एक अधेड़ा हाँफ़ती-काँपती आती है और ऐन टीवी के सामने हाथ जोड़ बैठ जाती है।

''मीठा बोलो। दूसरों के लिए और कुछ न कर सको तो मीठा बोलो।'' संत के श्रीमुख से मानो फूल झर रहे हैं।

अधेड़ा के कारण संत की छवि छिप जाती है। पीछे बैठा दर्शक श्रोता चिल्लाता है, ''माँ जी, यहाँ टीवी के सामने मत बैठो। उधर जाओ। हटो यहाँ से।''

रोचक प्रसंग छूटा जा रहा था। महिला टस से मस नहीं हुई।

''डोकरी सुना नहीं क्या? हट यहाँ से।''

''हट कर कहाँ जाऊँ? तुम्ही जगह बता दो।''

''जगह चाहिए तो जल्दी मरा करो ना।''

उधर पंडाल में संत वाणी गूँज रही थी, ''और कुछ न कर सको तो मीठा बोलो। मीठी वाणी अमृत तुल्य होती है।''

●

सुख सरबतिया का

श्याम सखा श्याम

सरबतिया बड़बड़ाती जा रही थी, ''अरे! कैसी सुखी है वो, पति विलायत में, बेटा अमरीका में और बिटिया मसूरी हॉस्टल में और यह मरी अपनी ठण्डी कोठरी में झुलसती रहती है (ठण्डी कोठरी से, उसका मतलब शायद एकरकण्डीशनड कमरे से था) और मुझसे कहती है कि खसम दारू पीकर पीटता है तो छोड़ दे उसको। अरे ! दारू की मार दुखती है तो उसकी बाहों की जकड़न जो सुख देती है; कलेजा ठण्डा करती है, उसको यह 'ठण्डी' क्या जाने ?''

''मुझे तो इन बड़े लोगन की माया समझ में ना आवे है। जो मकान फिलेट (फ्लैट) , कार, फ्रिज, ए.सी. के पीछे भागते रहवें हैं और असली सुख को भूल जावें हैं।''

''अरे! मरद की मार के बाद, उसका पिआर (प्यार) कितना रसीला हो जावे है वो क्या खा के समझेगी यह।''

'मार के बाद मरद की मनुहार और अंगरलियों के बीच उसके मुँह से झरने वाले फूल से सबद 'सरबतिया हमकू मुआफ कर देओ, तुहार फूल सा बदन कैसा-कैसा कर दीन्हा है रे। हम सच मा ही पापी हैं, सरबतिया।' उसे क्या मालूम कि यह सब सुन कर टीसता बदन सचमुच फूल सा महक उठता है।''

''अरे ! पूरा महीना खटने के बाद, रामू हमार बिटवा, जब हमार हथेली पर दौ सौ रुपल्ली लाकर रक्खे है ना; तो रामू तो होवे है किरसन कन्हाई और हम जसोदा मैया हो जावें हैं।''

''उसका अमरीकन बेटा आया। आते ही हाए माम! कह कर एक बोसा (चुम्मा) जड़कर बेशरम फोनवा से उलझ गया। एक घंटे में ही जाने कहाँ से दस-बीस जीन्स वाली परकटी, मरदानी लड़कियाँ और जुल्फों वाले जनाने लड़के आ मरे। उन्हें लेकर जो उड़न-छू हुआ, अमरीकन बिटवा तो पूरे दस दिन बाद घर लौटा था। और यह दस दिन परेतनी की तरह, उसके लाए तोहफों पर हाथ फिराती सूनी आँखों से छत निहारती रही थी।''

''क्या, वह सुख मिला उसे, जो मैं छुट्टी वाले दिन रामू को नहलाकर उसके बालों से जूँ निकाल कर अंगोर लेती हूँ।''

आज सरबतिया का पारा सातवें आसमान पर लगता है। पीछे आ रही बसन्ती ने सोचा और फिर कदम बढ़ा कर साथ चलते-चलते कहने लगी, ''अरी! मौसी हुआ क्या, जो इतना बड़बड़ाए जा रही हो।''

सरबतिया ने बसन्ती की ओर देखा तो उसकी अपनी आँखों में एक अजीब अपनापन उतर आया था, ऐसा सरल दिलकश अपनापन जो ये गरीब केवल अपनों को ही नहीं, थोड़ा सा दिल मिल जाने पर परायों को भी दे डालते हैं।

यह अपनापन, अमीरी की चाक-चौबन्द जिन्दगी में ऐसे गायब हो जाता है, जैसे कोई लुप्त प्राय: पखेरू प्रजाति। अमीरी की सुख-सुविधा में स्वार्थ की एक ठण्डी लिजलिजाती, ऐसी परत चढ़ जाती है कि रिश्तों की हरारत ही गुम हो जाती है।

सरबतिया कहने लगी, ''अरी बसन्ती! आज बड़ी कोठी वाली से चाय के साथ बदन दर्द की गोली क्या माँग ली, पूछ मत क्या हुआ? गोली देकर बीबी फट पड़ी बम की तरह, कहने लगी 'आज फिर मारा होगा, तेरे पियक्कड़ मरद ने, मेरी समझ में नहीं आता, तुम क्यों रोज़ हाड़ कुटवाती रहती हो उससे, छोड़ दे मुए को और यहीं आकर मेरे सर्वेन्ट क्वाटर में रह मज़े से और भी जाने क्या-क्या कहा मेरा तो सिर भिन्ना गया था?''

पर जाने दे, वो बेचारी तो हमारे से भी गई-बीती है। तभी तो अकेली पड़ी रहती है, उस भुतहा कोठी में, अरे! नौकर-चाकर माली-दरबान, क्या खाकर पति, बेटे-बेटी का सुख देंगे। खामख्वाह गुस्सा गई मैं तो, वो तो सचमुच तरस के काबिल है।''

'है ना', कहकर सरबतिया अपनी खोली में घुस गई।

●

अंतहीन सिलसिला

विक्रम सोनी

दस वर्ष के नेतराम ने अपने बाप की अर्थी को कंधा दिया, तभी कलप-कलपकर रो पड़ा। जो लोग अभी तक उसे बज्जर कलेजे वाला कह रहे थे, वे खुश हो गए। चिता में आग देने से पूर्व नेतराम को भीड़ सम्मुख खड़ा किया गया। गाँव के बैगा पुजारी ने कहा, ''नेतराम...!''साथ ही उसके सामने उसके पिता का पुराना जूता रख दिया गया, ''नेतराम बेटा, अपने बाप का यह जूता पहन ले।''

''मगर ये तो मेरे पाँव से बड़े हैं।''

''तो क्या हुआ, पहन ले।'' भीड़ से दो-चार जनों ने कहा।

नेतराम ने जूते पहन लिये तो बैगा बोला, ''अब बोल, मैंने अपने बाप के जूते पहन लिये हैं।''

नेतराम चुप रहा।

एक बार, दूसरी दफे, आखिर तीसरी मर्तबा उसे बोलना ही पड़ा, ''मैंने अपने बाप के जूते पहन लिये हैं।'' और वह एक बार फिर रो पड़ा।

अब कल से उसे अपने बाप की जगह पटेल की मजदूरी-हलवाही में तब तक खटते रहना है, जब तक कि उसकी औलाद के पाँव उसके जूते के बराबर नहीं हो जाते।

●

पुरुष

डॉ. सतीशराज पुष्करणा

बस गंतव्य की ओर बढ़ी जा रही है और मार्कण्डेय जी भी उस बस के एक यात्री हैं। वह सबसे आगे दाहिनी खिड़की की ओर बैठे हैं। वह खिड़की से बाहर पीछे छूटते जा रहे दृश्यों का अवलोकन करते जा रहे हैं और अपने जीवन को प्रकृति से जोड़ते हुए सोच रहे हैं। कभी वह प्रफुल्लित लगने-लगते हैं और कभी उदास। इतने में उनके पीछे की सीट से हल्के-हल्के दो नारी स्वरों का वार्तालाप उनके कानों से टकराया, जो उन्हें सुखद लगा।

अब उनकी दृष्टि तो खिड़की से बाहर थी किन्तु मन पिछली सीट पर। उनका चेहरा कुछ द्वन्द्व एवं कुछ तनाव में दीखने लगा। अपनी उम्र और प्रतिष्ठा को देखते हुए वह चाहकर भी अपने पीछे घूमकर देख नहीं पा रहे हैं और मन ऐसा है कि उन्हें पीछे मुड़कर देखने को बाध्य कर रहा है। किन्तु लोकाचार के हाथों विवश मार्कण्डेय जी पुन: खिड़की से बाहर पीछे की ओर भागते जा रहे दृश्यों को देखने लगते हैं। किन्तु अब वह प्रकृति को अपने से नहीं पिछली सीट पर बैठी नारियों से जोड़कर सोच रहे हैं। उनके मानस पटल में कभी युवतियों के चेहरे उभरते हैं, कभी अधेड़ और कभी उससे भी अधिक आयु एवं सुन्दरता का अनुमान वह अवश्य लगा रहे हैं। अनुमान फिर अनुमान ही हुआ करता है।

उन्हें झुंझलाहट हो रही है कि बस कहीं रुक क्यों नहीं रही है? बस रुके और वह ज़रा अपनी सीट से हटें और पीछे सहज रूप से देख सकें। अपराध-बोध से भी बच जाएं। किन्तु बस चलती ही जा रही है। मौसम थोड़ा ठंडा होने लगा है। हवा के झोंके उन्हें अच्छे लग रहे हैं, आनन्द प्रदान कर रहे हैं। मन में कही हल्की-सी गुदगुदी भी हो रही है। चेहरा प्रफुल्लित-सा होने लगता है। उन्हें हरियाली दिखाई पड़ रही है।

बाहर हल्की बूंदा-बांदी आरम्भ हो जाने के बावजूद उन्हें इसका कोई एहसास नहीं है। वह पीछे बैठी नारियों के रूप एवं स्वरूप की कल्पना में खोए हैं। एक-से-एक सुन्दर चेहरे उनके मानस पटल पर बाहरी दृश्यों की तरह आते और ओझल होते जा रहे हैं। तेज़ हवा के झोंके के साथ पानी के हल्के छींटे खिड़की के खुले कपाटों से उनके चेहरे को भिगो रहे हैं, मगर उन्हें इसका कोई विशेष एहसास नहीं हो पा रहा है। एकाएक पीछे से नारी स्वर हल्के से उनके कानों से टकराया, ''अंकल ! प्लीज खिड़की बन्द कर दीजिए न।''

इस स्वर ने उन्हें चौंका दिया और उनकें मुँह से निकला, ''अच्छा बेटा !'' और किसी स्वचालित मशीन की भांति उनके हाथ खिड़की की ओर बढ़ जाते हैं, धीरे से खिड़की का बन्द कर देते हैं।

अब उनका मन शांत हो गया और उनकी निगाहें सामने बैठे बस चला रहे ड्राइवर की पीठ से चिपक जाती है।

●

बिन शीशों का चश्मा

रामकुमार आत्रेय

उस दिन गाँधी जयन्ती थी। स्कूल में धूमधाम से मनाई जानी थी। गाँधी जी की मूर्ति की ज़रूरत पड़ी तो उसे स्कूल के कबाड़खाने में ढूँढा गया। ढूँढ़नेवाला एक अबोध बच्चा था। उसके अध्यापक ने उसे ऐसा करने को कहा था। मूर्ति वहीं एक कोने में पड़ी मिल गई। प्लास्टिक की थी। पर उसका चश्मा गायब था। बच्चे ने बहुत ढूँढ़ा पर नहीं मिला। कबाड़ के ढेर में मिलता भी तो कैसे मिलता।

बच्चा मूर्ति को झाड़-पोंछकर बाहर ले जाने लगा तो अचानक वह बोल पड़ी-'बेटा, ज़रा रुको।'

बच्चा रुक गया। बोला-'कहिए बापू, क्या कहना है?'

बच्चे के लिए वह मूर्ति, मूर्ति नहीं, बापू गाँधी ही थे।

'बेटा मेरा चश्मा नहीं है। ऐसे में मैं कैसे देख पाऊँगा? वैसे भी चश्मे के बिना मैं लोगों को किसी जोकर जैसा नज़र आऊँगा। मेरा अपमान न कराओ बेटा। पहले कोई चश्मा ले आओ कहीं से।' मूर्ति का स्वर अनुरोध भरा था।

'ठीक है, बापू जी। मैं अपने दादा जी का चश्मा ले आता हूँ। लेकिन बापू, उस चश्मे में शीशे नहीं हैं। दादा जी के हाथों से छूटकर एक दिन पत्थर पर गिर गया था। शीशे टूट गए थे। तब से वे उसी बिन शीशे वाले चश्मे को लगाए रहते हैं।' बच्चे ने बापू की मूर्ति को बताया।

मूर्ति हँसने लगी। उसकी हँसी किसी बच्चे जैसे निर्मल थी। कहने लगी-'फिर तुम्हारे दादा जी उस चश्मे से देखते कैसे होंगे?'

'देखेंगे कैसे, वे तो अन्धे हैं!'

'अन्धे हैं? तो फिर उन्हें चश्मा लगाने की क्या जरूरत है?' आश्चर्य-चकित मूर्ति के मुँह से निकला।

'अन्धे होने से पहले ही दादाजी चश्मा लगाया करते थे। बाद में अन्धा होने पर भी उन्होंने चश्मा नहीं उतारा। जब हमने इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि चोर-लुटेरों को यह बात थोड़े ही मालूम है कि वे अन्धे हैं। घरवाले दिन में खेत में काम करने चले जाते हैं तो वे दरवाज़े के पास चारपाई पर बैठे रहते हैं। लोग समझते हैं कि वे देख रहे हैं। इसलिए घर में कोई नहीं घुसता है। हम लोगों ने यह बात किसी को बताई भी नहीं है। चश्मे को हाथ लगाकर यह तो कोई देखने से रहा कि वहाँ शीशे हैं कि नहीं।' बच्चे ने सबकुछ सच-सच बता दिया।

इस पर मूर्ति ने तुरन्त कहा-'बेटा, बस, मुझे तो उसी चश्मे की जरूरत है। आज के लिए माँग लाओ उसे अपने दादा जी से। अच्छा है, मैं भी अपने नाम पर होने वाले पाखण्डपूर्ण नाटक को नहीं देख पाऊँगा!'

कहने की ज़रूरत नहीं कि बच्चे ने अपने घर से उस चश्मे को लाकर मूर्ति को पहना दिया।

आश्चर्य तो इस बात का था कि समारोह की समाप्ति के पश्चात जब उस बच्चे ने उस चश्मे को घर ले जाने के लिए उतारना चाहा तो वह उतरा ही नहीं। अब वह मूर्ति का स्थाई हिस्सा बन चुका था!

●

आम आदमी

शंकर पुणतांबेकर

नाव चली जा रही थी।

मँझधार में नाविक ने कहा, ''नाव में बोझ ज़्यादा है, कोई एक आदमी कम हो जाए तो अच्छा, नहीं तो नाव डूब जाएगी।''

अब कम हो जाए तो कौन कम हो जाए? कई लोग तो तैरना नहीं जानते थे, जो जानते थे उनके लिए भी परले चार जाना खेल नहीं था।

नाव में सभी प्रकार के लोग थे- डाक्टर, अफसर, वकील, व्यापारी, उद्योगपति, पुजारी, नेता के अलावा आम आदमी भी। डाक्टर, वकील, व्यापारी ये सभी चाहते थे कि आम आदमी पानी में कूद जाए। वह तैरकर पार जा सकता है, हम नहीं।

उन्होंने आम आदमी से कूद जाने को कहा, तो उसने मना कर दिया।

बोला, ''मैं जब डूबने को हो जाता हूँ तो आप में से कौन मेरी मदद को दौड़ता है, जो मैं आपकी बात मानूँ ?''

जब आम आदमी काफी मनाने के बाद भी नहीं माना, तो ये लोग नेता के पास गए, जो इन सबसे अलग एक तरफ बैठा हुआ था। इन्होंने सब-कुछ नेता को सुनाने के बाद कहा, ''आम आदमी हमारी बात नहीं मानेगा तो हम उसे पकड़कर नदी में फेंक देंगे।''

नेता ने कहा, ''नहीं-नहीं ऐसा करना भूल होगी। आम आदमी के साथ अन्याय होगा। मैं देखता हूँ उसे। मैं भाषण देता हूँ। तुम लोग भी उसके साथ सुनो।''

नेता ने जोशीला भाषण आरम्भ किया जिसमें राष्ट्र,देश, इतिहास,परम्परा की गाथा गाते हुए, देश के लिए बलि चढ़ जाने के आह्वान में हाथ ऊँचा कर कहा, ''हम मर मिटेंगे, लेकिन अपनी नैया नहीं डूबने देंगे नहीं डूबने देंगे नहीं डूबने देंगे'' !

सुनकर आम आदमी इतना जोश में आया कि वह नदी में कूद पड़ा।

जगमगाहट

रूप देवगुण

वह दो बार नौकरी छोड़ चुकी थी। कारण एक ही था-बॉस की वासनात्मक दृष्टि, किन्तु उसका नौकरी करना उसकी मजबूरी थी। घर की आर्थिक दशा शोचनीय थी। आखिर उसने एक अन्य दफ्तर में नौकरी कर ली। पहले दिन ही उसे उसके बॉस ने अपने कैबिन में काफी देर तक बिठाए रखा और इधर-उधर की बातें करता रहा। अबकी बार उसने सोच लिया था, वह नौकरी नहीं छोड़ेगी; वह मुकाबला करेगी। कुछ दिन दफ्तर में सब ठीक-ठाक चलता रहा, किन्तु एक दिन उसके बॉस ने उसे अपने साथ अकेले में उस कमरे में आने के लिए कहा, जहाँ पुरानी फाइलें पड़ी थीं। उन्हें उन फाइलों की चैकिंग करनी थी। उसे साफ लगा रहा था कि आज उससे कुछ गड़बड़ होगी। उस दिन बॉस भी सज-धजकर आया था।

एक बार तो उसके मन में आया कि कह दे कि मैं नहीं जा सकती, किन्तु नौकरी का खयाल रखते हुए वह इन्कार न कर सकी। कुछ देर में ही वह तीन कमरे पार करके चौथे कमरे में थी। वह और बॉस फाइलों की चैकिंग करने लगे। उसे लगा जैसे उसका बॉस फाइलों की आड़ में केवल उसे ही घूरे जा रहा है। उसने सोच लिया था कि ज्यों ही वह उसे छुएगा, वह शोर मचा देगी। दस-पन्द्रह मिनट हो गए, लेकिन बॉस की ओर से ऐसी कोई हरकत न हुई।

अचानक बिजली गुल हो गई। वह बॉस की ही साजिश हो सकती है, यह सोचते ही वह काँपने लगी। लेकिन तभी उसने सुना, बॉस हँसते-हँसते कह रहा था, ''देखो, तुम्हें अँधेरा अच्छा नहीं लगता होगा। तुम्हारी भाभी (बॉस की पत्नी) को भी अच्छा नहीं लगता। जाओ, तुम बाहर चली जाओ।'' इस अप्रत्याशित बात को सुनकर वह हैरान हो गई। बॉस की पत्नी, मेरी भाभी, यानी मैं बॉस की बहन।

सहसा उसे लगा, जैसे कमरे में हज़ार-हज़ार पावर के कई बल्ब जगमगा उठे हैं।

कुन्दन

पवन शर्मा

कमरे में लाल रंग का ज़ीरो वॉट का बल्ब जल रहा था। ऐसा लग रहा था, जैसे पूरे कमरे में सुर्ख लाल खून बिखरा हुआ हो। दीवार घड़ी में पौने बारह बजे थे। अचानक पलंग पर उसने करवट बदली। पत्नी चौंक गई,''क्यों....सोए नहीं क्या?''

''नींद नहीं आ रही है।'' वह बोला, और सोई हुई पत्नी की तरफ करवट बदल ली।

''क्यों?''

''बस, यों ही।''

''कोई कारण तो होगा ही।''

''बाबूजी की चिट्ठी आई है आज। मकान गिरवी रखा था, उसकी मियाद पूरी हो गई है। अगर पैसे न चुकाए तो मकान नहीं रह पाएगा। लिखा हैं कि बारह हज़ार की व्यवस्था कर दो; नहीं तो पुश्तैनी मकान हाथ से निकल जाएगा।''

''गिरवी ही नहीं रखना था मकान।''

''क्यों न रखते गिरवी, लोगों को पता कैसे चलता कि ठाकुर गजेंद्रपाल सिंह ने अपनी इकलौती बेटी की शादी किसी रईस से कम नहीं की है.....इज़्ज़त तो बनाए रखनी थी उन्हें....सिर्फ़....खोखली इज़्ज़त....'' उसके स्वर में व्यंग्य था, ''और मुसीबत हमारे सिर पर पटक दी। उधर भैया से भी बारह हज़ार की माँग की है। अरे, अपना बैंक बैलेंस ही छह -सात हज़ार का होगा। बाकी के कहाँ से दे दूँ उन्हें?''

पत्नी पलंग पर उठकर बैठ गई, ''ऐसा करो, मेरे पास जो जेवर हैं, उन्हें बेच दो और बाबूजी को पैसे दे दो।''

''नहीं अंजु, तेरे पास तो थोड़े से ही जेवर हैं, अगर वे बिक जाएंगे, तो तेरे पास क्या बचेगा? वे तो तेरी शोभा की चीजें हैं।''

''औरत की शोभा तो उसका पति होता है। और फिर जेवर औरत की शोभा के लिए थोड़े ही होते है ; वे तो ऐसे ही वक़्त के लिए होते हैं! सच, कल बेच देना,नहीं तो पुश्तैनी मकान हाथ से निकल जाएगा।''

वह कुछ नहीं बोला। लाल रंग के ज़ीरो वॉट के बल्ब में उसे अपनी पत्नी का चेहरा कुन्दन की भाँति चमकता दिखाई दिया।

पाठ

अभिमन्यु अनत

इंग्लैण्ड का एक भव्य शहर।

प्रतिष्ठित अंग्रेज़ परिवार का हेनरी। उम्र अगले क्रिसमस में आठ वर्ष। स्कूल से लौटते ही वह अपनी माँ के पास पहुँचकर बोला ''मम्मी कल मैंने एक दोस्त को खाने पर बुलाया है।''

''सच! तुम तो बड़े सोशल होते जा रहे हो।''

''ठीक है न माँ ?''

''हाँ बेटे, बहुत ठीक है। मित्रों का एक-दूसरे के पास आना-जाना अच्छा रहता है। क्या नाम है तुम्हारे दोस्त का।''

''विलियम।''

''बहुत सुन्दर नाम है।''

''वह मेरा बड़ा ही घनिष्ठ है माँ। क्लास में मेरे ही साथ बैठता है।''

''बहुत अच्छा।''

''तो फिर कल उसे ले आऊँ न माँ ?''

''हाँ हेनरी, ज़रूर ले आना।''

हेनरी कमरे में चला गया। कुछ देर बाद उसकी माँ उसके लिए दूध लिये हुए आई।

हेनरी जब दूध पीने लगा तो उसकी माँ पूछ बैठी।

''क्या नाम बताया था अपने मित्र का।''

''विलियम।''

''क्या रंग है विलियम का ?''

हेनरी ने दूध पीना छोड़कर अपनी माँ की ओर देखा। कुछ उधेड़बुन में पड़ कर उसने पूछा।

''रंग ? मैं समझा नहीं।''

''मतलब यह कि तुम्हारा मित्र हमारी तरह गोरा है या काला ?''

एक क्षण चुप रहकर दूसरे क्षण पूरी मासूमियत के साथ हेनरी ने पूछा,

''रंग का प्रश्न जरूरी है क्या माँ ?''

''हाँ हेनरी, तभी तो पूछ रही हूँ।''

''बात यह है माँ कि उसका रंग देखना तो मैं भूल ही गया।''

●

बहू का सवाल

बलराम

रम्मू काका काफी देर से घर लौटे तो काकी ने ज़रा तेज़ आवाज़ से पूछा, 'कहाँ चलेगे रहब, तुमका घर कैरिक तनकब चिन्ता-फिकिर नाई रहति हय।' तो कोट की जेब से हाथ निकालते हुए रम्मू काका ने विलंब का कारण बताया, 'ज़रा ज्योतिशीजी के घर लग चलेगे रहन, बहु के बारे मा पूछयं का रहय।'

रम्मू काका का जवाब सुनकर काकी का चेहरा खिल उठा, सूरज निकल आने पर खिल गये सूरजमुखी के फूल की तरह। तब आशा भरे स्वर में काकी ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की, 'का बताओं हईनिं ?'

चारपाई पर बैठते हुर रम्मू काका ने कंपुआइन भाभी को भी अपने पास बुला लिया और बड़े धीरज से समझाते हुए उन्हें बताया, 'शादी के बाद आठ साल लग तुम्हरी कोखि पर शनीचर देवता क्यार असरू रहो, ज्योतिशीजी बतावत रहयं, हवन-पूजन कराया कयअव उई शनीचर देउता का शांत करि द्याहयं, तुम्हंयं तब आठ संतानन क्यार जोगु हय। अगले मंगल का हवन-पूजन होई। हम ज्योतिशीजी ते कहि आये हन।' रम्मू काका एक ही साँस में सारी बात कह गये।

कंपुआइन भाभी और भइया चार दिन की छुट्टी पर कानपुर से गाँव आये थे ओर सोमवार को उन्हें कानपुर पहुँच जाना था। रम्मू काका की बात काटते हुए कंपुआइन भाभी ने कहा, 'हमने बड़े-बड़े डाक्टरों से चेकप करवाया है और मैं कभी भी माँ नहीं बन सकूँगी।'

कंपुआइन भाभी का जवाब सुनकर रम्मू काका सकते में आ गये और अपेक्षाकृत तेज़ आवाज़ में बोले, 'तब फिरि हमें साल बबुआ केरि दूसरि शादी करि देवे। अबहिन ओखेरि उमर हये का हय।'

रम्मू काका की यह बात सुनते ही कंपुआइन भाभी को क्रोध आ गया तो उन्होंने सच्ची बात उगल दी, 'कमी मेरी कोख में नहीं, आपके बबुआ के शरीर में है। मैं माँ बन सकती हूँ,पर वे बाप नहीं बन सकते। और अब, यह जानने के बाद आप क्या मुझे दूसरी शादी करने की अनुमति दे सकते हैं ?'

●

चटसार

पंकज कुमार चौधरी

मौजा कबखंड की मुख्य सड़क के किनारे एक बीमार सा भवन, जिसके दरवाजे और खिड़कियाँ कब के निकल चुके थे। अपनी बदहाली पर चुपचाप आँसू बहाता वह गाँव की प्राथमिक पाठशाला थी। कुछ बच्चे नंग-धड़ग, कुछ मैले-कुचैले, किसी की नाक बहती हुई तो किसी की कनपट्टी से कड़वा तेल चूता हुआ। कुछ लक्ष्यहीन बैठे हुए, कुछ कंधे से झोला टाँगे पहुँचते हुए तो कुछ समूह बांधकर चापाकल पर पैर धोते, मुँह पोंछते, कुल्ला करते या फिर बिन तमाशे के ही तमाशबीन बने हुए। इतने में सड़क से एक आदमी सूअर के बच्चे की पिछली टाँग बांधकर लाठी से टाँगे हुए जा रहा था। सूअर का बच्चा (पाहुर) लगातार चिल्ला रहा था। स्कूल के सारे बच्चे खेलकूद छोड़कर उसे स्तब्ध भाव से देखने लगे। जब पाहुर ओझल हो गया तो बच्चों ने एक गंभीर सवाल सब के सामने रख दिया 'बताओ जी, वह सूअर का बच्चा क्यों रो रहा था?'

एक बच्चे ने कहा-नहीं जानते हो जी! इसके पैर बंधे थे, फिर लाठी से टँगा था इसी दर्द से वह रो रहा था। दूसरे ने कहा-नहीं भई तुम नहीं जानते, डोम उसको अपनी माँ के पास से दूसरी जगह ले जा रहा था, इसलिए वह रो रहा था। तीसरा बच्चा बीच में ही बोला-ऊँ-हूँ...तुम भी नहीं समझ पाए। अरे उसे अभी तक कुछ खाने को नहीं मिला था, इसलिए रो रहा था। अंत में काफी गंभीर होकर एक बच्चे ने कहा-किसी ने नहीं समझा! मैं बताता हूँ। अरे । वह डोम पढ़ाने के लिए उसे स्कूल ले जा रहा था। उसी डर से वह रो रहा था। एकाएक सब बच्चे चिल्ला पड़े-हाँ... हाँ सही बात! सही बात!!

●

खून

राघवेन्द्र कुमार शुक्ला

भिनसारे केर उजियार के जीवन प्रवाह और गीले खेतन की माटी की सोंधी मह-मह करती महक को पछुआ पवन ले बहे फरर-फर फर। माथे पे उगी ओस को पी जाए,औ खेतन पे पिले पड़े खेतिहर बदल जाएँ गमकउआ महुआ के फूलन मां।

सब ओर हरे-हरे हरहराते खेत। सब खेतन मां एकौ ठाकुर अजुद्धा परसादौ केर खेत। ओ मां भी गम-गम गमकते महुआ के फूल। सबै लगन सबै मगन। ओस में बूड़ी गम-गम गमकती सोंधी माटी, ओस में बूड़े खेत, खेतन में खैलें हंसते-किलकते बिरवै। बिरवन से खेले खेतिहर। खेतिहरन मां एक सत्तू। काली चमर-चमर पसीने से चमकती ठसी ठुसी ताड़ अस गठी देह। ठाकुरै के खेत पर ठाकुर का नमक हलाल। नमकै भकोसे और नमकै बहाए और नाम बताए बालू। बालू, सत्तू बैठे नियरै नियरै। राम जुहार, कहो सरकार! का हार चार। दोनों के आंसू, दोनों की हे-हे, दोनों की हां-हां, सब साथै-साथै। हृदय में दाह, पीर, बालू की अघाए-अघाए सांसे। बिन आंसू-सिसकी केर विलाप, ''लागै है हरामी आज मारै डारी जान। अपन लरिकौ केर बैरी हुई गा रे। गंगा लाभ करा देई आज।'' निराई करत-करत सत्तू पूछित, ''अरे को, मार देई,केकर मार देई।'' बीड़ी केर धुएं संग बालू फूंकिस-''औ को, मलिकवां मार देई, दैत हुई गा है रे।'' फिर अघाई सांस। पर सत्तू की सांस गई अटक।

बिन कपड़न वैसे ही लंगोटी मां भागा। लागे है पीछे अगिया बैताल आऐ लागा। मुसहर टोला, अहीर टोला, बाभन टोला और परकटे विहंग सा गिरा आकर अजुद्ध परसाद के आगे। रिसते रक्त का चित्कार। पैरों में चिमटा परकटा विहंग। दुहाई हौ सरकार-दुहाई हौ। ठाकुर धुन्ना बन गवा रहै औ लरिका रुई केर ढ़ेर। रुई धुनकता धुन्ना अचानकै वापिस ठाकुर अजुद्धा परसाद में और ढेर लरिके में बदलि गया। विहंग ने फिर विलाप किय, ''हजूर

हमका मार लेयो, बचऊ का छोड़ देयो, माफ कर देयो मालिक । घर केर चिराग है। हजुर... मालिक...... अन्नदाता....।''

अबकि सत्तू बना ढेर । ठाकुर बन के धुन्ना पिल पड़ा ओपे ''काहे बे तोहार प्रान काहे निकलत हैं । तोहार अम्मा काहे.....है । तोर काहे फटत है।'' हाथ,पैर,मुँह सबै साथै चलै। धुन्ना उबल-उबल के पिला ढेर। दे धाड़-दे धाड़, खूब धुनका। एक बार फिर सब बदल गवा। धुन्ना से ठाकुर निकला ढेर से सत्तू। ठाकुर ने सत्तू के धकेला एक ओर। ठंडी-ठंडी नाल दोनल्ली केर, काली-काली, चम-चम, खूनखोर। गरम-गरम हाथ ठाकुर केर। ठाकुर कि दहाड़''आज तो ससुर किस्साए खतम कर देव ।''

ढेर से निकला सत्तू भी फुँफकारा, वहीं सहमी-सहमी बैठी अपनी मेहरारू से अपन लरिका का छीनकेर चढ़ी गवा आँगन के कुँए की जगत पे। और दहाड़ा,

''हौ सरकार! करो किस्सा खतम, हमऊ कर देब ई किस्सा खतम।''

ठाकुर हँसी में जहर फूँकिस ''तोहोर कौन किस्सा बे।''

सत्तुआ आंखिन का लाल-लाल निकार के चीखा, ''वही किस्सा जो आप हमरी लोगाई के संग शुरू किए रहै।''

ठाकुर की झल्लाहट ''अबे माँ के....,कौन किस्सा? का लाल बुझक्कड़ बनत है। साफ-साफ बूझो न।''

फिर बदला सबै कछु, कोउ न मालिक न नौकर सब भूलि के सत्तू दहाड़ा,

''ई तो आपौ जानत हौ कि इ लरिका केकेर है?'' हाथ में थमे अपने लरिका को पंच सेरी कद्दू की नाईं हवा में सत्तू ने लहराया।

''अब जो आप हमरे लरिका के परान लैहो तो आपहू केर लरिका न बची। इ अगर तोहार खून है, तो उ हमार।''

शिक्षा

भगीरथ

अध्यापक ने अंग्रेज़ी का नया पाठ आरम्भ करने से पहले छात्रों से पूछा–''होमवर्क कर लिया है?'' चालीस में से दस बच्चों ने कहा–''हाँ सर, कर लिया है।'' बाकी बच्चे चुप रहे। अध्यापक ने उन बच्चों को खड़ा होने का आदेश दिया जो होमवर्क करके नहीं लाए थे। अब एक-एक को ऐसे सवाल पूछने लगा जैसे थानेदार अपराधी से पूछता है।

''होमवर्क क्यों नहीं किया?'' अध्यापक ने एक से कड़ककर पूछा। वह चुप। बच्चे सहम गए।

''मैं पूछता हूँ होमवर्क क्यों नहीं किया?''

फिर चुप्पी। ''अबे ढीठ, बोलता क्यों नहीं? क्या ज़बान कट गई है? वैसे तो क्लास को सिर पर उठाए रहोगे, लेकिन जब पढ़ाई-लिखाई की बात आती है तो इनकी नानी मर जाती है। बोलो, होमवर्क क्यों नहीं किया?''

''सर...भूल गया।'' सुरेश ने डरते-डरते कहा।

''भूल गए! वाह! साहबज़ादे भूल गए! खाना क्यों नहीं भूला? कपड़े पहनना क्यों नहीं भूला? बताओ!'' अध्यापक ने उसका मखौल उड़ाते हुए कहा।

लड़का चुप। सिर झुकाए खड़ा रहा-अपराध-बोध से ग्रसित। अध्यापक दूसरे बच्चे के पास जाता है।

''और कुन्दन, तुमने होमवर्क क्यों नहीं किया?''

''सर, मैथ्स का काम बहुत था। टाइम ही नहीं मिला।''

''अच्छा!....तो तुम मैथ्स का काम करते रहे! इंगलिश तुम्हें काटती है! इसके लिए तुम्हारे पास टाइम नहीं हैं मत दो टाइम। इंगलिश अपना भुगतान ले लेगी, बच्चू, समझे?'' अध्यापक ने धमकी दी।

अध्यापक तीसरे बच्चे के पास गया।

''क्यों बद्रीप्रसाद जी, आपने काम क्यों नहीं किया?''

''सर, काम तो कर लिया, लेकिन कॉपी नहीं लाया।''

''वाह! क्या कहने! क्या खूबसूरत बहाना बनाया है! तुम ज़रूर राज-नेता बनोगे। पढ़ने से क्या फायदा! जाओ एमएलए का इलेक्शन लड़ो।''

''और तुम्हारा क्या कहना है?'' चौथे छात्र के पास जाकर पूछा।

''.....''

''तुम क्यों बोलेगे! दिन-भर फिरते हो या कंचे खेलते रहते हो। तुम्हें टाइम कहाँ से मिलेगा? चोर-उचक्के बनोगे। बाप का नाम रोशन करोगे। करो, मुझे क्या!''

''दिनेश, तुम तो अच्छे लड़के थे, तुमने क्यों नहीं किया?''

''सर, समझ में नहीं आया?''

''क्यों समझ में नहीं आया?'' उन्होंने आवाज़ को सख्त कर पूछा।

''सर, कुछ भी समझ में नहीं आया।'' बच्चे की आवाज़ काँपी।

''माँ'-बाप से कहो थोड़ा बादाम खिलाएँ। मैं घंटे-भर भौंकता रहा और तुम्हें कुछ समझ में नहीं आया!''

सभी लड़के लज्जित, अपमानित, मुँह लटकाए खड़े हैं। अध्यापक विजेता की तरह सीना ताने खड़ा है। सजा-चालीस उठक-बैठक और चार-चार बेंत।

एक लड़का सोचता है-जहाँ इतनी जलालत हो, वहाँ क्या भविष्य बनेगा! दूसरा सोचता है-बेहतर है इस जहन्नुम से भाग चलें।

दाँत पीसता हुआ तीसरा लड़का सोचता है-इस मास्टर ने ऐसी-तैसी कर रखी है। इसकी तो अकड़ सीधी करनी पड़ेगी।

चौथा सोच रहा है-यह स्कूल है या जेल? मौके की तलाश में है कब उसे खिड़की-दरवाज़े और बेंच तोड़ने का सौभाग्य प्राप्त हो।

पांचवां कुछ नहीं सोचता। वह भोंथरा होता जाता है-कुंठित और ठस्स।

रांग नंबर

मुरलीधर वैष्णव

''पापा प्लीज़.....फोन नहीं रखना, मैं जानती हूँ, मैंने आपका विश्वास तोड़ा। मैं बहुत पछता रही हूँ कि घर से भागकर मुंबई आ गई....मैं यहाँ बहुत परेशान हूँ, पापा!.....मैं तुरंत घर लौटना चाहती हूँ। पापा प्लीज़....!

एक बार....सिर्फ एक बार कह दीजिए कि आपने मुझे माफ कर दिया!'' उसने फोन पर 'हैलो' सुनते ही गिड़गिड़ाना शुरू कर दिया था।

''बेटी, तुम कहाँ हो? तुम जल्दी ही घर लौट आओ। मैंने तुम्हारी सब गलतियाँ माफ कर दीं...।'' कहकर उस आदमी ने फोन रख दिया।

पचास वर्षीय वह कुँवारा-प्रौढ़ सोचने लगा कि उसकी तो शादी ही नहीं हुई, यह बेटी कहाँ से आ गई? लेकिन वह तत्काल समझ गया था कि किसी भटकी हुई लड़की ने उसके यहाँ रांग नम्बर डायल कर दिया था।

बहरहाल, उसे इस बात की खुशी थी कि उसकी आवाज़ उस लड़की के पिता से मिलती-जुलती थी और उसने उसे 'रांग नंबर' कहने की बजाय ठीक जवाब दिया था।

कन्धे पर बैताल

बलराम अग्रवाल

गारा-मजदूरी करके थोड़ी-बहुत कमाई के बाद शाम को रूपलाल घर की ओर लौट रहा था। अपनी ही धुन में मस्त। बीड़ी सुट्याता हुआ।

रास्ते में, एक झाड़ी के पीछे से कूदकर एक लुटेरा अचानक उसके सामने आ खड़ा हुआ। रूपलाल अचकचा गया। लुटेरे ने उसको सँभलने का मौका नहीं दिया। छुरा चमकाकर गुर्राया ''जान प्यारी है तो जो कुछ पास में है, निकालकर ज़मीन पर रख दे, चुपचाप।''

चेतावनी सुनकर रूपलाल ने एक नज़र लुटेरे के चेहरे पर डाली, दूसरी उसके छुरे पर और अण्टी से निकालकर उस दिन की सारी कमाई ज़मीन पर रख दी।

''अब भाग यहाँ से,'' लुटेरा दहाड़ा, ''पीछे मुड़कर देखा तो जान से मार डालूँगा।''

रूपलाल पीछे पलटा और दौड़ पड़ा।

''विक्रम!'' यह कहानी सुनाने के बाद उसके कंधे पर लदे बैताल ने उससे पूछा, ''सवाल यह है कि एक मेहनतकश होते हुए भी रूपलाल ने इतनी आसानी से अपनी कमाई को क्यों लुट जाने दिया? संघर्ष क्यों नहीं किया? डरकर भाग क्यों गया?''

''बैताल !'' विक्रम ने बोलना शुरू किया, ''रूपलाल का लुटेरे के चेहरे और छुरे पर नज़र डालना उसकी निडरता और बुद्धिमत्ता दोनों की ओर इशारा करता है। ऐसा करके वह कई बातें एक साथ सोच जाता है। पहली यह कि हर हाथापाई को संघर्ष नहीं कहा जा सकता। जोश के जुनून में ग़ैर-हथियार आदमी का किसी हथियारबंद आदमी से उलझ जाना उसकी मूर्खता भी सिद्ध हो सकता है। दूसरी यह कि भाग जाना हमेशा ही पलायन नहीं कहलाता। संघर्ष में बने रहने के लिए कभी-कभी आदमी का ज़िंदा रहना ज़्यादा ज़रूरी होता है।''

''बिल्कुल ठीक।'' बैताल बोला, ''उचित और अनुचित का विवेक ही मजदूर की असली ताकत होता है।...अब, अगली समस्या-कथा सुनो''

''अब बस करो यार! मेरा मौन टूट गया...'' विक्रम बोला, '' ...अब कंधे पर से खिसको और अपने पेड़ पर उलटे जा लटको, जाओ।''

''किस ज़माने की बात कर रहे हो विक्रम।'' बैताल बोला, ''तुम अब आम आदमी हो गये हो, राजा नहीं रहे। इस ज़माने में समस्याओं का बैताल तुम्हारे कंधे से कभी उतरेगा नहीं, लदा रहेगा हमेशा। तो सुनो''

''उफ!'' विक्रम के मुँह से निकला और कंधे पर लदे बैताल समेत थका-हारा-सा वह वहीं बैठ गया।

●

शुरुआत

कृष्णानंद कृष्ण

बस्ती में श्मशानी सन्नाटा पसरा हुआ था। चारों तरफ जले-अधजले सामान का ढेर लगा था। कहीं-कहीं छोटे-मोटे पशुओं के कंकाल भी नज़र आ रहे थे। गाँव के लोगों ने पूरी रात गाँव के बाहर बरगद और पीपल के नीचे बने चबूतरे पर गुज़ार दी थी। बोझिल पलकों से नींद काफूर हो चुकी थी। सारे लोग भविष्य की चिंता में डूबे हुए सूनी आँखों से एक-दूसरे को देख रहे थे, चुपचाप, बेजुबान। वे अपने उजड़े चमन को निहार रहे थे।

गाड़ियों के काफिले रुकने से श्मशानी बस्ती के मुरदों में कुछ जान आ गई थी। फिर दुग्ध-धवल वस्त्रों में नेताजी के साथ-साथ उनके समर्थकों की भीड़ भी उतरी। पीछे-पीछे पत्रकारों एवं छायाकारों की फौज भी थी। बस्ती से उठती चिरायन गंध और वस्तुओं के जलने की गंध से बचने के लिए नेताजी ने रुमाल से नाक बंद कर बस्ती वालों की तरफ मुखातिब होते हुए उन्होंने उन लोगों को अपने पास बुलाने का संकेत दिया। छायाकारों के कैमरे चालू हो गए थे। पत्रकार खोजी नज़रों से घटना के भीतर की घटना को तलाशने में जुटे थे।

अर्जुन अलग-थलग खड़ा इन सारी बातों को देख रहा था। बस्ती का मुखिया नेताजी के पास चला गया था। नेताजी उसे सांत्वना दे रहे थे। अपने समर्थकों के माध्यम से सब लोगों को आर्थिक सहायता देने के लिए कह रहे थे। अर्जुन को लग रहा था वे फिर एक बार उजड़ने के लिए अभिशप्त हो रहे हैं। यह खेल तो वह कई वर्षों से देख रहा है। वह भीतर से बेचैन था। काका को उसने कितना समझाया था, किंतु काका लगता है फिर नेता की बातों में आ गए। नेता के समर्थक लोगों को पंक्तिबद्ध कर रहे थे। उससे रहा नहीं गया। उसने चबूतरे पर चढ़कर हाेंक लगाई-''काका।'' और चुपचाप दूसरी ओर मुड़ गया। सारे लोग उसके पीछे चल पड़े। काका भी मन मारे उसी ओर बढ़ गए।

नेताजी स्तब्ध समर्थकों के साथ जली हुई चिरायन गंध के बीच खड़े थे।

●

छत्रछाया

डॉ. रामकुमार घोटड़

घर के पिछवाड़े में खाली जगह पर पेड़ लगे हुए थे। पिताजी की मृत्यु के बाद लड़के ने कटवाने शुरू कर दिए। जब एक पेड़ शेष रहा तब माँ ने कहा, ''बेटा, इस पेड़ को रहने दो, काटो मत।''

''क्यों माँ?''

''यह पेड़ तुम्हारे पिताजी का लगाया हुआ है,''

''किसी पेड़ को कोई न कोई लगाता ही है माँ।''

''मैं इसी पेड़ में तुम्हारे पिताजी की आत्मा का अहसास करती हूँ। जब भी मैं इसकी छाँव में बैठती हूँ तो मन को सकून मिलता है, और यूँ लगता है कि मैं उनके स्नेह, सानिध्य व छत्रछाया में बैठी हूँ ।''

और लड़के ने उसकी बगल में एक और पेड़ लगा दिया।

●

हँसाने वाले

मुकेश शर्मा

शाम साढ़े पाँच बजे का समय था। लोग कार्यालयों से घर लौट रहे थे। पहाड़गंज की वह प्रमुख सड़क भीड़ से भरती जा रही थी। सड़क पर एक कार तेज़ गति से आई और सड़क के बीच रास्ता रोक कर खड़ी हो गई । कार में से गोविन्दा उतरा और उसने पीछे आ रहे स्कूटर को हाथ देकर रुकवाया। स्कूटर रुकते ही गोविंदा ने स्कूटर सवार की गिरेबान पकड़ कर पीटना शुरू कर दिया।

कार की पिछली सीट से दरवाज़ा खोलकर दो युवक बाहर आए और वे भी स्कूटर सवार पर पिल पड़े। स्कूटर सवार अपने स्कूटर सहित सड़क पर गिर गया और गोविन्दा अपने साथियों के साथ उसे बुरी तरह से पीटने लगा।

''क्या हुआ, क्या हुआ?'' चारों ओर लोग इकट्ठे हो गये, 'अरे कुछ हुआ भी होगा, क्यों पीट रहे हो उस बेचारे को?'

''ये बेचारा है? साला.....,, गोविन्दा एक भद्दी सी गाली निकाल कर बोला, 'पीछे लड़की को टक्कर मार कर आ रहा है। लड़की का पैर टूट गया होता। ऊपर से वहाँ रुकने की बजाए भागने की कोशिश कर रहा था।''

'अच्छा, मारो साले को.....' भीड़ में से एक आवाज़ आई।

''कहाँ है लड़की? बुलाओ उस लड़की को। साले से माफी मँगवाएँगे।'' एक आवाज़ उभरी।

तब तक स्कूटर सवार अपने कपड़े झाड़कर खड़ा हो चुका था और गोविन्दा का एक साथी उसके सिर के बाल कसकर पकड़े हुए था।

''आ गई.... आ गई।'

तभी भीड़ को हटाती हुई एक स्त्री वहाँ पहुँची। वह लँगड़ाकर चल रही थी।

'यही थी।' गोविन्दा ने पुष्टि की।

'कहाँ लगी, मैडम?' एक मनचले ने पूछा।

''हाय-हाय, हमारा पाँव तोड़ दिया होता इस कलमुँहे ने।''

आवाज़ सुनते ही सभी चौंके ''अरे, ये लड़की नहीं, हिजड़ा है।''

'क्या...?' गोविन्दा की आँखें छोटी हो गईं। ध्यान से देखा, लोग सही कह रहे थे।

'हाय-हाय, अरे दइया रुक तो जाता कम से कम।' लोग हँसने लगे, 'ये तो साला हिजड़ा है, हम तो लड़की समझ रहे थे।'

गोविन्दा को शर्मिन्दगी महसूस हुई, वह स्कूटर सवार से माफ़ी माँगने लगा, 'सॉरी दोस्त, मुझे नहीं मालूम था ये हिजड़ा है।'

''हाय दइया, कोई हमें डॉक्टर तक तो पहुँचा दो रे।'' भीड़ छँटने लगी । उसके दोनों दोस्त पिछली सीट पर आ जमे और गाड़ी तेज़ गति से दौड़ती चली गई।

●

पड़ोसी

अज्ञात

लिफ्ट से अपने दसवीं मंजले स्थित कमरे में चढ़ते हुए मैंने नोटिस पढ़ा-श्रीमती मुखर्जी का एक सौ रुपये का नोट कहीं गुम गया है। पाने वाले कमरा नं. 65 में पहुँचा देने की कृपा करें।

सूचना पढ़कर मुझे बड़ा दु:ख हुआ। श्रीमती मुखर्जी एक अनाथ गरीब बुढ़िया हैं और अड़ोस-पड़ोस के छोटे-मोटे काम करके अपना भरण-पोषण करती है।

करीब दो घटे बाद मैंने उसका दरवाज़ा खटखटाया। उसने दरवाज़ा खोला। लेकिन चेहरे को देखने से लग रहा था कि वह अपना पैसा वापस पा गई है।

मेरे पूछने पर वह बोली, 'हाँ, मुझे मेरा पैसा मिल गया है। दूसरी मंजिल वाले वैद्य साहब को मिला था। श्री राम अवतार तथा जनाब कुतुबुद्दीन ने भी उसे पाया था। शायद आपको भी मिला है! परन्तु आप सबको मिलने से पूर्व ही वह मुझे अपने कोट की जेब से मिल गया था। कृपा करके पैसे मिलने की सूचना जल्दी से नोटिस बोर्ड पर टाँग दीजिए वर्ना कुछ औरों को भी वह मिल जाएगा।''

●

मानव धर्म

सुरेश शर्मा

पिछले दिनों मुरादाबाद के दंगों के बाद हमारे शहर में भी तनाव का वातावरण चल रहा था। उन्हीं दिनों एक बार मैं अपनी पत्नी और बच्चों के साथ सिनेमा देखने गया था।

जैसे ही सिनेमा हाल से हम बाहर आए, तो देखा कि सड़क पर भगदड़ मची थी। सभी फुर्ती के साथ भागे जा रहे थे। मैंने पता लगाया तो मालूम हुआ कि शहर में दंगा-फसाद हो रहा है।

सुनकर मेरी पत्नी और बच्चे भयभीत हो गए। हमारा घर शहर से काफी दूर था। कोई रिक्शा-ताँगा नहीं था।

तभी एक युवक हमारे पास आया और हमारी समस्या जानकर हमें अपनी कार से हमारे घर तक छोड़ने को राजी हो गया।

रास्ते भर मेरी पत्नी मुसलमानों को भला-बुरा कहती रही। वह व्यक्ति सुनकर मुस्कराता रहा।

रास्ते में पत्थर- वर्षा से कार का पिछला काँच फूट गया। खैर, हम सकुशल घर पहुँच गए।

मैंने सौ रुपए का नोट निकाल कर उस युवक को देते हुए आभार व्यक्त किया। उसने रुपया लेने से इंकार करते हुए कहा क्या मानव धर्म की कोई कीमत होती है, भाई साहब?

मेरी पत्नी ने उसका परिचय पूछा तो मुस्कराते हुए उसके अपना नाम बताया, ''नजमल हुसैन''।

और हमारे मुँह पर धुँआ छोड़ते कार चली गई।

●

श्रद्धांजलि

डॉ. सतीश दुबे

पिता की मौत हुए चार दिन हो चुके थे। वह घुटनों पर चेहरा नीचे किए बैठा था। तभी छोटे भाई ने कान में बुदबुदाया, ''पिता के दफ्तर से एकाउण्टेण्ट आए हैं।''

उसने सिर उठाकर, सामने बिछे जूट के बोरे पर गमगीन मुद्रा बनाए आलथी-पालथी मारकर बैठे व्यक्ति की ओर देखा। पाँचेक मिनट बाद वह बोरे सहित उसकी ओर खिसका, ''मौत के तीसरे दिन बाद मिलनेवाला एक्सग्रेशिया पेमेन्ट ले आया हूँ.....सरकार की जी.सी. पर यही बड़ी मेहरबानी है। लो, ए.आर. पर दस्तखत कर दो।''

उसने दस्तखत कर दिए।

उन्होंने नोटों की गड्डियाँ उसकी ओर खिसका दीं।

''गिन लो !...तुम्हें क्या बताएँ, पटेल बाबू बड़े अच्छे आदमी थे। सज्जन इतने कि बेज़ा लफ़्ज़ कभी ज़बान पर नहीं लाए...किफ़ायत-पसंद बहुत थे; कहते थे-एक पैसा भी इधर-उधर ख़र्च करना संतान का पेट काटना है।''

उसकी निगाहें उनकी ओर उठ गई।

''हाँ-हाँ ....ऐसा ही सुझाव था उनका। शायद तुम्हें नहीं मालूम वो पीने के शौकीन थे, पर पीना नहीं चाहते थे इसलिए कि....''

''यह आप ग़लत बोल रहे हैं, उन्होंने ताज़िन्दगी.....''

''तुम बच्चे हो, क्या जानो ! वे इसलिए नहीं पीते थे कि पैसा ख़र्च होगा।''

उसने पिता की याद में आँसू पोंछ लिए।

''अच्छा, मैं चलता हूँ....''

''जी, अच्छा....''

''सुनो ! ऐसा करो, इसमें से सौ-दो सौ रुपए दे दो.....हम एक-दो लोग कहीं बैठ लेंगे....इससे उनकी आत्मा को शांति मिलेगी।''

''आप लोगों के शराब पीने से उनकी आत्मा को शांति मिलेगी?''

''हाँ, तनखा के अलावा जो भी पेमेन्ट मिलता था, उसमें से वे ज़रूर कुछ न कुछ देते थे, और कहते थे-इसकी दारू पी लेना....अपने पैसे से हमको पीते देख वे खुश होते थे....''

उसने उनकी ओर घृणा की दृष्टि से देखा तथा नोट उनके सामने रख दिए, ''ले लीजिए।''

उन्होंने सौ के दो नोट उठा लिए तथा 'अच्छा, मैं चलता हूँ' की मुद्रा में उठ खड़े हुए।

●

प्रदूषण

सूर्यकांत नागर

मगर की तरह मुँह फाड़े पुराने जूतों को सड़क किनारे बैठे मोची से सिलवाने के लिए उस दिन मैं मजबूर हो गया। खड़खड़िया साइकिल को सड़क किनारे टिकाकर, मैंने जूते मोची को सुपुर्द कर दिए तथा एक ओर खड़ा हो गया।

वह मार्ग, कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय को जाता था। तेरह से सोलह-सत्रह वर्ष की लड़कियों के झुंड एक के बाद एक बतियाते हुए वहाँ से गुजर रहे थे। फैशन परेड की भांति गुज़रते समूहों में से लड़कियों के कुछ वाक्य बीच-बीच में मेरे कानों तक पहुँच रहे थे।

''महाचोर देखी ?''

''हाँ, पर राजेश खन्ना में अब वह बात नहीं।''

''कागज़ की नाव देखी ?''

''डैडी-मम्मी ले ही नहीं गए। कहते हैं, 'ए' सर्टिफिकेट वाली है।''

''किसी दिन स्कूल से तड़ी मारकर चलें।''

''अरे हट ! । रीजेंसी में सिनेमा वाले स्ट्रिक हैं।''

''सुना है, आजकल चिंटू और नीटू के बीच कुछ पक रहा है।''

''अरे ! ये तो जोड़ी बनाने के फिल्मी नुस्खे हैं।''

''अपना वह नया शिंदे सर कितना इतराता है !''

''छींट का बुशर्ट पहन स्वयं को छोटी-सी बात की हीरो समझता है।''

''मुझे तो बहुत प्यारा लगता है, बिलकुल अमोल पालेकर जैसा !''

मैं लड़कियों के इस अंतिम समूह को देखता रह जाता हूँ।

इस बीच मोची ने जूते सीकर मेरे सामने रख दिए हैं।

फिर भी मेरी तंद्रा नहीं टूटती। आख़िर वह बोल पड़ता है, ''का छोकरिअन में रम गए बाबू ?''

उसे क्या जवाब देता !

क्या यह कहता कि लड़कियों के उस अंतिम समूह का वह अंतिम वाक्य मेरी बेटी का था।

●

कबूतरों से भी ख़तरा है

एन. उन्नी

मेरे पिताजी ने भी कबूतर पाले थे। कबूतर पालना उनके लिए टाइम पास करने का साधन नहीं था। वे सचमुच कबूतरों से प्यार करते थे। उनको नहलाना-धुलाना, समय-समय पर दाना चुगाना, उनसे बातें करना आदि कार्यों में पिताजी समर्पित थे। पिताजी के चारों तरफ कबूतर नृत्य करते थे। धीरे-धीरे ऊपर उड़कर पिताजी को हवा देते थे।

एक दिन ऊपर उड़ा कबूतर घर के ऊपर चक्कर लगाकर कहीं उड़ गया। पिताजी ने कबूतर की बोली बोलकर घर के चारों तरफ चक्कर काटे, लेकिन कबूतर देखने को नहीं मिला। पिताजी पागल-से हो गए। खाना नहीं खाया और रात-भर सोए भी नहीं। दूसरे दिन सुबह बेचैनी से पिताजी फिर मुहल्ले के चक्कर काटने लगे। थके-भूखे कबूतर जी वापस घर लौटे। पिताजी खुश तो थे, लेकिन इस खुशी में एक अस्पष्ट क्रूरता भी निहित थी। पिताजी ने उस कबूतर के पंख काट दिए। उसके लिए एक जीवन-साथी को भी लेकर आए थे, लेकिन फिर कभी पिताजी और कबूतरों का संबंध उतना मधुर नहीं रहा।

कबूतर बच्चे देने लगे। बच्चे बड़े होने लगे। बच्चे धीरे-धीरे उड़ने लगे। एक दिन पिताजी के सामने बच्चे उड़ने लगे तो बड़े कबूतर ने उन्हें क्रोध से देखा, मगर वह कुछ बोला नहीं, क्योंकि कबूतर को मालूम था कि उसकी भाषा पिताजी समझने लगे हैं। पिताजी भी कबूतर के व्यवहार से सावधान हो गए। शाम को कबूतरों को पिंजरे में बंद करके पिताजी बेचैन हो रहे थे। वे पिंजरे के बाहर एक

कुशल जासूस की तरह निश्छल खड़े अन्दर की बातचीत ध्यान से सुन रहे थे। पिताजी के चेहरे के हाव-भावों से मुझे लगा कि कोई गंभीर बात हो रही है।

बड़ा कबूतर बच्चों को सावधान कर रहा था- 'बेटे, तुम उस आदमी के सामने कभी भी उड़ने का प्रयास मत करना। वह तुम्हारे पंख काट देगा। तुम्हें मालूम हैं, बाहर की दुनिया कितनी सुंदर और असीम है। एक बार मैंने भी देखा था। अनंत विशाल, रंग-बिरंगे आकाश में मैं खो गया था। लौटकर आने की इच्छा मुझे कतई नहीं थी, लेकिन भूख और प्यास के कारण मुझे लौटना पड़ा। बाहर से दाना-पानी जुटाने की जानकारी मुझे उस समय नहीं थी, लेकिन बाद में मालूम पड़ा कि बाहर की आज़ाद दुनिया में हमजातों का झुण्ड है। उनके साथ मिलकर मैं भी भूख और प्यास से जूझ सकता था.....।''

पिता-कबूतर की व्यथा को देखकर बच्चे ने कहा, ''अब मेरा क्या? तुम्हारे बड़े होने का इन्तज़ार कर रहा था मैं....अब हम साथ उड़ेंगे। अपनी जैसी कमज़ोरियों से तुम्हें बचाना भी है।''

मुझे लगा कि पिताजी भयभीत हो उठे हैं। रात को दो-तीन बार पिताजी बिस्तर छोड़कर बाहर चले गए थे। दूसरे दिन सुबह होते ही पिताजी ने पिंजरा खोला और सभी कबूतरों को आकाश में उड़ा दिया तो मैंने पिताजी से पूछा, ''आपने यह क्या किया पिताजी? आपने कबूतरों को क्यों उड़ा दिया?''

पिताजी ने बोझिल स्वर में कहा, ''बेटे, जब प्रजा आज़ादी की तीव्र इच्छा से जाग उठती है तो बड़े से बड़ा तानाशाह भी घुटने टेकने को मजबूर हो जाता है। फिर तुम्हारा पिता तो...''

कुआँ और कुआँ

पारस दासोत

हरिजन लड़की के साथ हुए... बलात्कार के कारण... लम्बी चली आ रही लड़ाई का परिणाम यह हुआ...कि दो हरिजनों की दिन-दहाड़े हत्या कर दी गई। गुस्सा....खून बहाने से भी शान्त न हुआ। और दोनों लाशें, गाँव के हरिजन कुएँ में डाल दी गईं...कुएँ का पानी लाल हो गया।

परिणाम यह हुआ...कि कुछ ही दिनों बाद...महाजनी कुएँ का पानी भी लाल हो गया।

पूरे गाँव में दहशत छा गई...।

गोताखोरों को कुएँ में उतारा गया।

परन्तु...

मेंढक...कछुओं...के सिवा कुछ भी हाथ न लगा।

'करें...तो क्या करें...?' चारों तरफ से आवाज़ आने लगी।

भीड़ के पास खड़ा मास्टर...सब-कुछ सुनता रहा।

एक साहूकार ने कहा, 'हमें अपने कुएँ का पानी उलीचकर.... उसे पूरी तरह.... साफ़ करना चाहिए।'

यह सब देख-सुनकर.... मास्टर बोला- 'अगर इस कुएँ को साफ करना ही है.... तो चलो मेरे साथ....।'

और...

उसने अपने कदम...हरिजन कुएँ की तरफ़ बढ़ा दिए।

कपों की कहानी

अशोक भाटिया

आज फिर ऐसा ही हुआ। वह चाय बनाने रसोई में गया तो उसे फिर वही बात याद आ गई। उसे फिर चुभन हुई कि उसने ऐसा क्यों किया?

दरअसल उसके घर की सीवरेज पाइप कुछ दिन से रुकी हुई थी। आप जानते हैं कि ऐसी स्थिति में व्यक्ति घर में सहज रूप में नहीं रह पाता। यह आप भी मानेंगे कि यदि जमादार न होते तो हम सचमुच नरक में रह रहे होते। खैर, दो जमादार जब सीवरेज खोलने के लिए आ गए, तो उसकी साँस में साँस आई। वे दोनों पहले भी इसी काम के लिए आ चुके हैं। एक आदमी थक जाता तो दूसरा बाँस लगाने लगता। कितना मुश्किल काम है! वह कुछ देर पास खड़ा रहा, फिर दुर्गंध के मारे भीतर चला गया। सोचने लगा कि इनके प्रति सवर्णों का व्यवहार आज भी कहीं-कहीं ही समानताभरा दीखता है। नहीं तो, अधिकतर अमानवीय व्यवहार ही होता है। इतिहास तो जातिवादी व्यवस्था का गवाह है ही, आज भी हम सवर्ण इनके प्रति नफरत दिखाकर ही अपने में गर्व अनुभव करते हैं। यह संकीर्णता नहीं तो और क्या है?

उसके मन में ऐसा बहुत-कुछ उमड़ रहा था कि बाहर से आवाज़ आई, ''बाऊजी, आकर देख लो।''

वह उत्साह से बाहर गया। पाइप साफ हो चुकी थी।

''बोलो, पानी या फिर चाय?'' उसने पूछा।

''पहले साबुन से हाथ धुला दो।'' वे बोले। शायद वे उसकी उदारता को जानते हैं। वह उनके प्रति अपनी उदारता को यादकर खुश होने लगा। हाथ धुलवाते हुए उसने जान-बुझकर दोनों के हाथों को स्पर्श किया ताकि उन पर उसकी उदारता का सिक्का जमने में कोई कसर न रह जाए। पैसे तो पूरे देगा ही, पर लगे हाथ एक अवसर मिल गया। बोला, ''एक बार साबुन लगाने से हाथों की बदबू नहीं जाती। रसोई की नाली रुकी थी, तो मैंने कल हाथ से गंद निकाला था। उसके बाद तीन बार हाथ धोए, तब जाकर बदबू गई।''

''बाऊजी, हमारा तो रोज़ का यही काम है। थोड़ी चाय पिला दो।''

वह यही सुनना चाहता था। यह तो मामूली बात है। इनके प्रति हमारे पूर्वजों द्वारा किए अन्याय के प्रायश्चित के रूप में हमें बहुत कुछ करना चाहिए। लेकिन क्या?-यह वह कभी नहीं सोच पाया।

वह रसोई में बड़े उत्साह के साथ चाय बनाने में जुट गया। चाय का सामान डालकर उसने तीन कप निकाले। एक कप बड़ा लिया और दो छोटे; फिर सोचा-यह भेदभाव ठीक नहीं। उन्हें चाय की ज़रूरत मुझसे ज़्यादा है। यह सोचकर उसने तीनों एक-से कप उठाए। ऐसे और कई कप रखे थे, लेकिन उसने एक कप साबुत लिया और दो ऐसे लिए जिनमें क्रैक पड़े हुए थे।

उधर चाय में उफान आया, तो उसने फौरन आँच धीमी कर दी।

●

मेरे अपने

कमलेश भारतीय

अपना शहर व घर छोड़े लगभग बीस साल से ज़्यादा वक्त बीत चुका । इस दौरान बिटिया सयानी हो गई । वर ढूँढा और हाथ पीले करने का समय आ गया। विवाह के कार्ड छपे, सगे-सम्बन्धियों व मित्रों को भेजे । शादी के शगुन शुरू हुए आँखें द्वार पर लगी रहीं। इस आस में कि दूर -दराज़ के सगे -सम्बन्धी आएँगे। वे सगे सम्बन्धी, जिन्होंने उसे गोदी में खिलाया और जिन्हें बेटी ने तोतली ज़ुबान में पुकारा था । पण्डित जी पूजा की थाली सजाते रहे । मैं द्वार पर टकटकी लगाए रहा । मोबाइल पर सगे सम्बन्धियों के सन्देश आने लगे। सीधे विवाह वाले दिन ही पहुँच पाएँगे जल्दी न आने की मज़बूरियाँ बयान करते रहे ।

मैं उदास खड़ा था । इतने में ढोलकवाला आ गया । उसने ढोलक पर थाप दी । सारे पड़ोसी भागे चले आए और पण्डित जी को कहने लगे - और कितनी देर है ? शुरू करो न शगुन !

पण्डित जी ने मेरी ओर देखा । मानो पूछ रहे हों कि क्या अपने लोग आ गए? मेरी आँखे खुशी से नम हो गईं। परदेस में यही तो मेरे अपने हैं। मैंने पण्डित जी से कहा-शुरू करो शगुन , मेरे अपने सब आ गए !

●

लेखकों से अनुरोध

बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा आलेख न भेजें । अपनी सामग्री यूनीकोड फॉण्ट में टैक्स्ट फाइल के द्वारा ही भेजें । पीडीएफ़ या जेपीजी फ़ाइल में नहीं। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ई मेल आदि लिखना होना ज़रूरी है । आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र भी अवश्य भेजें । पुस्तक समीक्षा के साथ पुस्तक के आवरण का चित्र अवश्य भेजें ।

हिन्दी चेतना विशेषांक के लिए जो रचनाएँ मिली थीं, उन्हीं में से स्वागतम् की रचनाओं का चयन किया गया है। इन रचनाकारों में विषय की दृष्टि से लघुकथा के क्षेत्र में कुछ नया करने की बेचैनी नज़र आती है। इनकी यही अप्रोच इनको अन्य नए लघुकथाकारों की भीड़ से अलग करती है। हम आशान्वित हैं कि ये लघुकथाकार सजग सृजन से इस विधा के विकास में कुछ नया जोड़ेंगे। हिन्दी-लघुकथा-जगत् इन उत्साही रचनाकारों का स्वागत करता है।

चीरहरण

सुरेन्द्र कुमार पटेल

''उफ!''

मेरे मुँह से निकल गया।

''क्या हुआ अंकल ,मेरी फोटो ठीक से नहीं आई क्या?''

मुझे झटका लगा। अभी मैं उससे अंकल कहलवाने की उमर में नहीं था और, वाकई खिड़की से आ रही रोशनी की वजह से फोटो ठीक नहीं आई थी।

उसकी जानकारी में बात आने से मैं कुछ-कुछ भयभीत था। बात को हल्का करने के लिए मैंने पूछा, ''लेकिन आपको कैसे पता, मैं फोटो ले रहा था ?''

''मुझे सब समझ में आता है अंकल। ट्रेन का सफ़र काफी पुराना हो गया न। मेरा घर और मेरा कॉलेज कम से कम इतना दूर तो हैं ही कि ट्रेन के सफ़र का मौका मिल सके। इस साल फाइनल ईअर में हूँ, शहर के अंतिम छोर में बने रविदास कालेज में।'' उसने बताया।

मैं चुपचाप उसकी तरफ देखता रहा। वह एक खूबसूरत लड़की थी। अगर ऐसी लड़की सफ़र में हमसफ़र बनें तो उससे बात करने में मुझे अच्छा लगता था।

अक्सर मैं बेशरमी से सवाल किया करता और आखिर में वहाँ तक पहुँच जाता ,जहाँ तक किसी को किसी के बारे में पहुँचना नहीं चाहिए।

मगर आज मैं केवल सुन रहा था।

''वैसे अंकल आप करते क्या हैं, शादी-वादी तो हो ही गई होगी?''

''ओह!''

इन दोनों सवालों ने मुझे आहत कर दिया। मैं एक प्राइवेट स्कूल में टीचर था, और शादी भी एक साल पहले ही हो चुकी थी।

''मैं एक प्राइवेट कंपनी में हूँ, और हाँ शादी की बात चल रही है, हुई नहीं है।'' मैने झूठ बोला।

''ओह! सो नाइस। मगर आपको विलम्ब नहीं करना चाहिए।'' उसने हँसते हुए कहा।

अब मुझमें इतनी ताक़त नहीं रह गई थी कि मैं उससे कुछ पूछता या कोई प्रत्युत्तर देता। वह एक ऐसी ही लड़की थी, जो खुलकर बात कर सकती थी।

पर मेरी खोखली मानसिकता तो सिर्फ उन लड़कियों की तलाश किया करती, जो मेरे सवालों से सकुचाए, शरमाए और यहाँ तक कि घबरा जाए। मगर वह उन लड़कियों में से नहीं थी।

''अंकल!''

मैंने देखा ,वो खड़ी हो गई थी। उसने मेरी तरफ पलटकर कहा, ''अब मेरा गंतव्य नज़दीक है, मैं गेट पर जा रही हूँ। यदि आप चाहें तो मेरी फोटो ले सकते हैं।''

मैंने महसूस किया जैसे दुर्योधन आज सभा के बीच बेबस खड़ा था और द्रौपदी उसके अंगों को एक-एक कर निर्वस्त्र कर रही थी। जब वह पूरी तरह निर्वस्त्र हो गया तो वह तेज़ कदमों से सभा से बाहर चली गई।

●

क़ीमत

जगदीश राय कुलरियाँ

'मैंने कहा जी ! आप कब के शराब पीने लगे हो। आपको पता है कि टाइम क्या हुआ है, रात के बारां बजने को हैं। अपना शाम आज पहली दफा फैक्टरी गया है और अभी तक घर नहीं लौटा है। मेरा मन बहुत घबरा रहा है' भागवती अपने पति सेठ राम लाल से बोली।

'वह कौन सा दूध पीता बच्चा है। आ जाएगा फालतू में क्यों टेंशन ले रही हो। थोड़ा इंतज़ार करो। नहीं तो कोई फोन वगैरह करके पता करता हूँ।' कुछ ही समय पश्चात दरवाजे की घंटी बजने से भागवती के साँस में साँस आता है।

'क्यों बेटा इतना लेट आज कल का समय बहुत खराब है मेरी तो जान मुट्ठी में आई पड़ी थी।' भगवती एकदम बोली।

'अरे! कोई फोन ही कर देता तेरी माँ बडी चिंता कर रही थी, चल बता कि तुझे अपनी फैक्टरी कैसी लगी ?' रामलाल ने अपने बेटे से पूछा।

'फैक्टरी तो ठीक है पापा जी ! पर मेरी समझ में ये बात नहीं आ रही कि आप ने वहाँ पर सिर्फ बाहर के ही मजदूर क्यों रखे हुए हैं, जब कि अपने पंजाबी लोग तो यहाँ पर खाली घूमते फिर रहे हैं।'

'बेटा ! तुम्हारी समझ में नाहीं आवे ये बातें'

'कैसे पापा जी ?

'तुझे तो पता ही है कि हमारी फैक्टरी में कैसा काम है, मामूली सी लापरवाही से ही मजदूर की मौत हो जाती है, यदि इन में से कोई मजदूर मर खप जाए तो यह दस बीस हजार रुपए लेकर समझौता कर लेते हैं और अपने वाले तो लाखों की बात करते है।' सेठ राम लाल ने खिसियानी हँसी हँसते हुए एक और पैग अपने अंदर डाल लिया।

●

व्यवहार

कृष्ण कुमार यादव

वह गाँव के बड़े दबंग व्यक्ति थे। रुतबा इतना कि पिछले कई सालों से प्रधानी उनके ही घर में थी। उनकी बहू को लड़का हुआ तो घर पर खुशियों की बहार आ गई। उस दिन क्या ज़बरदस्त पार्टी दी थी उन्होंने मेहमानों की खातिरदारी में कल्लू भी लगा हुआ था। अचानक उसे शिशु के रोने की आवाज़ सुनाई दी। अंदर जाकर देखा तो नवजात शिशु सोते-सोते जाग गया था और अपनी माँ को न पाकर रो रहा था। उसने दुलारवश नवजात शिशु को गोद में लिया कि मालकिन के पास पहुँचा देगा। अचानक बहू बाथरूम से निकलीं और उसके हाथ से बेटे को छीन लिया। "तुम्हारी हिम्मत कैसी हुई इसे छूने की ?"

"मालकिन मैं तो. !"

"एक तो नीची जाति के हो, उस पर से तुमने मेरे बच्चे के सुकोमल शरीर को हाथ लगा दिया! अब तो इसे पंडित जी को बुलाकर मंत्रोच्चारण के बीच गंगाजल से स्नान कराना होगा।"

कुछेक महीने बाद। पता चला गाँव में जिले के कलेक्टर साहब आने वाले हैं। प्रधान होने के नाते ठाकुर जी ने पूरा बंदोबस्त कर लिया कि कलेक्टर साहब को कोई परेशानी न हो। कलेक्टर साहब अपनी कार से उतरे तो ठाकुर साहब सपरिवार स्वागत में फूल-माला लिये खड़े थे। कलेक्टर साहब की जमकर खातिरदारी हुई।

जब उनके जाने का समय हुआ तो ठाकुर साहब अपने पौत्र को लेकर आए और उनकी गोद में डाल दिया, "कलेक्टर साहब यह हमारा वंश है, आप इसे भी आशीर्वाद दें।"

दूर खड़ा कल्लू सोच रहा था- कि कलेक्टर साहब भी तो उसी की जाति के हैं!

●

पुरस्कार

सुधा भार्गव

यह उन दिनों की बात है जब मैं कलकत्ते में जय इंजीनियरिंग वर्क्स के अंतर्गत उषा फैक्टरी में इंजीनियर था । जितना ऊँचा ओहदा उतनी भारी भरकम जिम्मेदारियाँ ! खैर... मैं चुस्ती से अपने कर्त्तव्य पथ पर अडिग था ।

अचानक उषा फैक्टरी में लौक आउट हो गया । छह माह बंद रही । हम सीनियर्स को वेतन तो मिलता रहा पर रोज़ जाना पड़ता था । आये दिन मजदूर अफसरों का घेराव कर लेते थे क्योंकि लौक आउट होने का कारण, वे उन्हें समझते थे ।

छ: माह के बाद नींद हराम हो गई तरह-तरह की अफवाहें जड़ ज़माने लगी, बंद हो जायेगा वेतन मिलना, छँटनी होगी कर्मचारियों की, इस्तीफा देने मजबूर किया जाएगा, फैक्टरी बंद होगी ।

दिन -रात मैं सोचता -भगवान् नौकरी छूट गई तो क्या होगा...। तीन बच्चों सहित कहीं एक दिन भी गुज़ारा नहीं ।

एक अन्तरंग मित्र जो देहली में रहते थे सलाह दी -एक माह की छुट्टी लेकर तुम यहाँ आ जाओ । मशीने मैं खरीदूँगा तुम कार के पार्ट्स बनाना ।

वहाँ जाकर मैंने कार के पार्ट्स की ड्राइंग की फिर उसके अनुसार पार्ट्स बनवाए । मैंने अपनी सफलता की सूचना मित्र को बड़े उत्साह से दी ।

बोले -पार्ट्स तो बनवा लिए पर इनके विज्ञापन का कार्य भी आपको करना पड़ेगा । प्रारंभ में तो दरवाज़े -दरवाज़े आपको ही जाना पड़ेगा । इनके इस्तेमाल करने से होने वाले फायदे आपसे ज़्यादा अच्छी तरह दुकानदारों को कौन समझा सकेगा । उनकी माँग पर निर्भर करेगा कितना माल बने । व्यापार में शुरू -शुरू में अकेले ही सब करना पड़ते है । मेरा मतलब माल बनाना, बेचना, पैसा उगाहना आदि आदि ।

व्यापार के मामले में मैं नौसीखिया ! बाप दादों में कोई व्यापारी नहीं ! इतनी भागदौड़ वह भी अकेले...। फैक्टरी में तो अलग -अलग विभाग के अलग दक्ष अफसर व कर्मचारी होते थे । यहाँ मैं समस्त विभागों की खूबियाँ अपने में कैसे पैदा करूँ !

इस डाँवाडोल परिस्थिति में मैंने निश्चय किया -पार्ट्स लुधियाना में छोटे-छोटे कारखानों से बनवाकर उन्हें बेचूँगा । लुधियाने में मेरी जान पहचान भी थी ।

कार का एक विशेष पार्ट ५ रुपये का बना । मैंने उसकी क़ीमत १०रुपये रखी ।

इस बारे में दोस्त की सलाह लेनी भी आवश्यक समझी ।

वे बोले -१०रुपये बहुत कम है, १५ रखिये ।

-इतनी ज़्यादा...! पार्ट बिकेगा नहीं ।

-सब बिकेगा । जो ज़्यादा से ज़्यादा झूठ बोलने वाला होता है वही बड़ा व्यापारी बनता है । यहाँ ईमानदारी से काम नहीं चलता ।

कई दिन गुज़र गये पर उनकी बात पचा न पाया। मेरी स्थिति बड़ी अजीब थी ! पैसा मेरा दोस्त लगा रहा था इस कारण उसकी बात माननी ज़रूरी थी मगर मानूँ कैसे ! मेरी आत्मा कुलबुलाने लगती, बार-बार धिक्कारने आ जाती ।

आखिर हिम्मत करके एक सुबह बोल ही दिया -यार, मुझसे यहाँ काम धंधा नहीं होगा । कलकत्ते ही वापस जा रहा हूँ ।

-जानता था...जानता था ,तुमसे कोई काम नहीं होगा । ये इंजीनियर सब बेकार होते हैं ।

उस पल मैं हज़ार बार मरा होऊँगा.....।

कलकत्ते पहुँचते ही फैक्टरी गया ।

मेरी मेज़ पर एक लिफाफा रखा हुआ था । काँपते हाथों से उसे खोला । लग रहा था जैसे सैकड़ों बिच्छू एक साथ उँगलियों में डंक मार रहे हों ।

मेरे नाम पत्र था...

आपकी ईमानदारी व मेहनत से प्रशासक वर्ग बहुत प्रभावित है । अत: पदोन्नति करके आपको हैदराबाद भेज रहे हैं ताकि फैन फैक्टरी में भी विकास-विभाग सँभालकर नये -नये डिज़ाइन के पंखों का निर्माण करें ।

हमारी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं ।

●

जीव

प्रियंका गुप्ता

''पिंकी, ओ पिंकी, अरे मैंने कल सुबह की रोटी यहाँ कैसेरोल में रखी थी, कहाँ गई...?''

मिसेज शर्मा की परेशान आवाज़ सुन पिंकी अन्दर के कमरे से निकल आई,''क्या हुआ मम्मी...? वो कैसेरोल की रोटी तो मैंने ली है, शैडो को दूध में भिगो कर दे दूँगी... बर्बाद करने से क्या फ़ायदा...?''

पिंकी के हाथ में बासी रोटी देख मिसेज शर्मा ने झट से आगे बढ़कर वो रोटी उसके हाथ से छीन ली,''पागल हुई है क्या...? गर्मी का समय है, बासी रोटी खाकर शैडो बीमार पड़ गया तो.?''

फिर पिंकी का बना मुँह देख कर उन्होंने कुछ पुचकारते हुए कहा,''बेटा, शैडो कुत्ता है तो क्या हुआ...? हमारा पालतू है, घर के बच्चे की तरह है, और फिर ये क्यों भूलती हो कि हमारी-तुम्हारी तरह वह भी एक जीव ही है....क्या हम कल सुबह की यह बासी रोटी खाएँगे...? नहीं न... फिर उस बेजुबान के साथ यह अन्याय क्यों...? इसे कैसेरोल में ही रख दे और महाराजिन आए तो उससे शैडो की भी दो ताज़ी, मोटी रोटियाँ बनवा लेना और दूध में भिगो कर दे देना।''

दोपहर में सोकर कमरे से बाहर आई पिंकी मम्मी को अवन में वही बासी रोटियाँ गर्म करते देख हैरान रह गई,''ये बासी रोटी गर्म क्यों कर रही मम्मी...?''

''चुप कर...'' मम्मी ने उसे झट से चुप करा दिया और रोटी व एक छोटी कटोरी दाल लेकर बाहर निकल गई। बरामदे में दोपहर के बर्तन माँज चुकी उनकी दस-वर्षीय महरी सरोज फ़्रॉक से पसीना पोंछती मम्मी का इंतज़ार कर रही थी।

''ले सरोज, खा ले...तेरे लिए आज दो रोटियाँ बचा कर रखी थी...'' मम्मी ने बड़े प्यार से सरोज के हाथ में रोटी-दाल की प्लेट पकड़ाते हुए कहा,''जितनी देर में तू घर जाती खाने, मैंने तेरा वह टाइम तो बचा ही दिया.... खाकर ज़रा दस मिनट मेरा पैर दबा देना...बहुत दर्द हो रहा है...।''

सरोज ने कृतज्ञतापूर्वक हामी भरी तो मिसेज शर्मा चहक उठी,''भई, जहाँ हम इतने लोग खाते हैं, वहाँ एक जीव ने और खा लिया तो मेरा क्या घट जाएगा...? बल्कि भगवान और देगा...भूखे जीव का पेट भरने से बड़ा कोई पुण्य नहीं...।''

●

मानसिकता

डॉ अनीता कपूर

''जी नमस्ते, मेरा नाम सरिता है और में आपके बिलकुल ऊपर वाले फ़्लैट में रहती हूँ...''

''जी नमस्ते, कहिए?''....

''मुझें घर में काम करने के लिए एक बाई की जरूरत है तो क्या अपनी बाई को ऊपर भेज देंगी?''

''जरूर भेज दूँगी, वैसे कितने लोग है आप के घर में?''

''बस मैं अकेली ही हूँ''।

''अच्छा थोड़ी देर में बाई आ जाएगी,''

''जी धन्यवाद''... कहकर मेंने इंटरकॉम रख दिया। थोड़ी देर बाद, दरवाजे की घंटी बजी तो वाकई बाहर एक बाई को खड़ा पाया, मन में एक खुशी की लहर लहरा गई...सोचा, चलो एक समस्या का समाधान तो आसानी से हो गया है। बाई से सारी बात तय हो गई थी वक्त और पैसों को लेकर....।

और फिर कल से उसके आने का इंतज़ार भी शुरू हुआ...लगा कि बाई के हाथ में एक सुदर्शन चक्र है और वो कल से मेरे अव्यवस्थित घर की धुरी घुमा देगी। अगले रोज़ बाई का इंतज़ार करती रही पर वो नहीं आई। उसके अगले दिन मैं परेशान सी लिफ्ट से उतर कर किसी नई बाई की तलाश में मुड़ी ही थी कि सामने से वही बाई दिखाई। वह मुझे देख कर कन्नी काटने की कोशिश में थी...मैंने उसे पकड़कर पूछ ही लिया -''सब कुछ तय हो तो गया था फिर तुम आई क्यों नहीं?'',

वो सकुचाकर बोली.....''मेमसाहब मैं तो आना चाहती थी पर आपके नीचे वाली आंटी जी ने मना कर दिया आपके यहाँ आने से''....

''पर क्यों मना किया और तुमने उनकी बात भी मान ली, क्या तुम्हें और पैसा नहीं चाहिए?'...

वो बोली...''पैसा किसे बुरा लगे हैं मेमसाहब, पर आप तो यहाँ हमेशा रहने वाली हो नहीं, उनका काम तो पक्का है न, और वो बोल रही थी कि आप अकेली औरत हो...उन्हे शक है कि कुछ.....कि कुछ.....'', इसके आगे बाई कुछ बोली नहीं और चली गई । और मैं चुपचाप खड़ी उसकी पीठ पर अपने अकेले होने के एहसास को ढूँढने लगी ....समझ नहीं पाई कि चुनौतियों को पार करके यहाँ तक पहुँचने के लिए खुद को शाबाशी दूँ, या नीचे वाली उस आंटी जी की ''अकेले'' शब्द की मानसिकता पर दुःख मनाऊँ।

●

ज़रूरत

डॉ. श्रीमती अजित गुप्ता

मेरा नौकर नारायण जनजातीय समाज का था । इस समाज में सुबह काम पर निकलते समय और शाम को काम से वापस आने के बाद ही भोजन करने की आदत है । ऐसी ही आदत नारायण की भी थी । मेरे यहाँ वह सुबह नौ बजे आता और शाम को चार बजे जाता । दिन में हम सब को वह भोजन कराता, लेकिन स्वयं नहीं खाता । मैं उससे हमेशा कहती कि खाना खाले, लेकिन नहीं खाता । एक दिन मैंने डाँटकर उसे कहा कि खाना क्यों नहीं खाता ? सारा दिन यहाँ काम करता है और मुँह में दाना भी नहीं डालता, कैसे काम चलेगा ?

तब वह बोला कि हम लोग दो समय ही खाना खाते हैं, एक सुबह और एक शाम । सुबह मैं खाना खाकर आता हूँ और शाम को जाकर खाऊँगा । यदि दिन में आपके यहाँ खाना खाने लगा तो मेरी आदत बिगड़ जाएगी ।

●

जगह

डॉ. गजेन्द्र नामदेव

ऑफिस से थका मांदा जब वह घर लौटा तो पत्नी के चेहरे पर चिंता की लकीरें थी। पानी का गिलास थमाते हुए बोली -''बाबूजी का फोन आया था।''

''हूँ''

''तबियत ठीक नहीं है। कहते हैं गांव में आराम नहीं लग रहा।''

''हूँ''

''यहाँ आने लिए कह रहे थे। आप ही बताइए न, घर कितना छोटा है। एक कमरा अपना, एक बच्चों का और एक बैठक का। माँ, बाबूजी को भी एक चाहिए। कैसे हो पाएगा ?'' पत्नी ने व्यग्रता से एक ही साँस में सब कह डाला। उसने चुपचाप चाय पी और लेट गया।

सिर भारी हो रहा था। ''सिर में दर्द है क्या ? बाम लगा दूँ ?'' पत्नी चिंता जताते हुए बोली। वह चुपचाप लेटा रहा।

खाना खाते समय पत्नी ने फिर बात छेड़ी। लेकिन वह अब भी शांत रहा। बच्चे खुश थे। बिटिया चिहुँक उठी- वह दादी से ढेर सारी कहानियाँ सुनेगी। बेटे ने कहा- वह दादा से साइकिल सीखेगा। पत्नी ने बच्चों को झिड़ककर चुपचाप सोने के लिए कह दिया। वह अब भी शांत था।

पत्नी फिर बोली- ''तबियत ठीक नहीं है क्या ? बोलते क्यों नहीं ?''

''कुछ नहीं हुआ । सो जाओ।''

इस बार उसने संक्षिप्त उत्तर दिया। पत्नी के चेहरे पर कई भाव आये गए थोड़ी देर में वह खर्राटे भरने लगी, लेकिन उससे नींद अब भी कोसो दूर थी। उसे बहुत बैचेनी हो रही थी। जबरदस्ती आँखें मूँदने की कोशिश की। परंतु अतीत चलचित्र की भाँति उसके स्मृति पटल पर उभर आया- दशहरे का मेला। अखाड़ों के साथ भव्य देवी प्रतिमाएँ निकल रही हैं। करतबबाज अपना करतब दिखा रहे है। उसने उछलकर देखने की कोशिश की। बाबूजी हँस दिये और अपने कंधे पर बिठा लिया। अब वह सब आसानी से देख पा रहा है- उसकी उम्र के बच्चे तक अखाड़े में करतब दिखा रहे हैं। गुब्बारे और खिलौने वाले भी है। दूर तक फैली भीड़..''

बेचैनी से उसने करवट बदली। रात गहरा गई है लेकिन उसने अभी तक ढिबरी नही बुझाई। लगता है माँ की आँख खुल गई। कह रही है-''बेटा सो जा अब, रात बहुत हो गई। सुबह पढ़ लेना।'' वह माँ से चिपक कर सो गया।

आँख फिर खुल गई। फिर करवट बदली। पत्नी के खर्राटे बढ़ गये है। उसने फिर आँख मूँदने का उपक्रम किया- बाबूजी माँ से कह रहे हैं- ''देखो। रुपये तो मिल गये है। उसे मत बताना, वह नाहक ही चिंता करेगा। हाँ शुद्ध घी ले आया हूँ, देती रहना। दिमाग ठंडा रहता है। ये रुपये फीस और किताबों के लिए दे देना। अबकी फसल अच्छी हो गई तो सब चुक जाएगा।''

''अपने जूते ले आते। बिलकुल टूट गये हैं।'' माँ ने चिंता जताई।

''अभी काम चल पाएगा।'' पिताजी बेफिक्री से बोले थे। नींद फिर टूट गई। वह तेजी से घूमते पंखे को ताँकता रहा थोड़ी देर.. लेकिन अतीत उसका पीछा कहाँ छोड़ रहा था, स्मृति चक्र फिर चल पड़ा...।

उसकी नौकरी लग गई है। माँ बाबूजी बहुत खुश है। ब्याह की तैयारियाँ हो रही है। उसने माँ से साथ ही शहर चलने को कहा। माँ आशीर्वाद देते हुए बोली- ''बेटा दोनों खुश रहो।अब इस बुढ़ापे में शहर में क्या रहना खेत खलिहान, जानवर भी है। सब देखना है। थोड़ी रही कट जाएगी। ''

एक दिन शहर में वह बीमार हो गया है। माँ याद आ रही है पत्नी घबरा गई। सुबह अचानक बाबूजी को पाकर वह चौंक गया- ''हूँ तुम्हारी माँ ठीक कहती थी जरूर कुछ बात है। बहुत परेशान थी वह। कहती थी जाओ देखकर आओ।''

उसकी आँख खुल गई। वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। गोरखा दादा सीटी बजाता जमीन पर लाठी पटकता निकल गया। उसकी दूर जाती आवाज़ वह देर तक सुनने की कोशिश करता रहा। उसे याद आया- ओहदा बढ़ने के साथ व्यस्तता बढती गई। वह दौरे, मीटिंग फाइलों में उलझ गया। बच्चे बड़े हो रहे है। सब अपनी गति से चलता रहा। गाँव से सम्पर्क धीरे-धीरे कम होता गया।

वह अब चाहकर भी महीनों खबर नहीं ले पाता। आखिर क्यों...क्यों...क्यों...? उसे लगा सिर पर कोई भारी हथौड़े मार रहा है। वह घबराकर उठ बैठा। घड़ी की सुई पाँच का काँटा छूना चाहती है। अजान के स्वर कान में पड़े तभी मंदिर की घंटा ध्वनि भी। उसने बेडरूम की खिड़की खोल दी। ताजी हवा का झोंका उसके तन-मन में सिहरन पैदा कर गया। अचानक उसने मन ही मन कुछ निश्चय किया। वह नहा-धोकर तैयार हुआ। पत्नी ने चाय देते हुए आश्चर्य से पूछा - ''इतनी सुबह कहाँ जा रहे हो।''

''माँ -बाबूजी के लिए अपना कमरा ठीक कर दो। तुम बच्चों के कमरे में सो लेना। मैं बैठक में सो जाऊँगा।'' पत्नी के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना वह तेजी से बाहर निकल गया।

●

अँधेरा

भावना सक्सैना

बड़ा उत्सव था! एक महान व्यक्तित्व की 150वीं जन्मशती पर देश भर में आयोजित साहित्य व कला प्रतियोगिताओं का पुरस्कार वितरण होने वाला था। ग़ज़ब की बात यह थी कि व्यक्ति उस देश का नहीं था ; इससे पहले यहाँ उसके बारे में कम ही सुना था! बस बताया गया कोई नोबल पुरस्कार विजेता हैं। दूसरा गजब यह था कि प्रतियोगी देश में प्रयोग की जाने वाली किसी भी भाषा में लिख सकते थे। वाह!!! ऐसी प्रतियोगिता! हाल ठसाठस भरा था। मुख्य अतिथि के आते ही तालियों से स्वागत हुआ। भाषण व गीत संगीत के बाद पुरस्कार वितरण की बारी थी । मंच के साथ एक मेज़ पर सभी पुरस्कार सजे थे। हर विजेता के लिए चार पुरस्कार थे और इसके लिए चार गणमान्य व्यक्तियों को मंच पर बुलाया गया।

पहले पुरस्कार विजेता का नाम पुकारते ही हाल की सभी बत्तियाँ बुझ गईं। निरीक्षण अधिकारी जायज़ा लेने के लिए उठा ही था कि उसका पाँव किसी से टकराया; आँख गड़ाने पर अँधेरे में एक आकृति उभरी - लम्बी दाढ़ी, झुकी पीठ मानो वर्षों तक लिखते रहने पर झुक गई हो । उनके चेहरे पर पीड़ा की रेखाएँ स्पष्ट थीं...।

●

कर्णधार

कमलनाथ

एक व्यक्ति एक ऊँचे गुब्बारे में बैठ कर कहीं जा रहा था। अचानक उसे लगा कि वह रास्ता भूल गया है। उसने गुब्बारे की ऊँचाई कम की और नीचे इधर उधर झाँका। वहाँ उसे एक आदमी बैठा हुआ दिखाई दिया।

ऊपर वाले आदमी ने चिल्लाकर पूछा –''क्षमा कीजिए, मैंने लोगों से वादा किया था कि मैं उनसे मिलने एक निश्चित समय तक पहुँच जाऊँगा। अब तक काफ़ी देर हो चुकी है लेकिन मुझे पता नहीं लग रहा इस समय मैं कहाँ हूँ। क्या आप मुझे बतलाने का कष्ट करेंगे?''

नीचे वाले व्यक्ति ने कहा –''हाँ हाँ, क्यों नहीं? आप इस समय भारत में हैं जो अक्षांश 8° 4' और 37° 6' उत्तर और देशांतर 68° 7' और 97° 25' पूर्व के बीच स्थित है, इस के साथ पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, चीन और म्यांमार की सीमाएँ लगती हैं। आप एक गुब्बारे में बैठे हुए हैं जिसकी ऊँचाई ज़मीन से अभी लगभग एक सौ पैंतीस फ़ुट है और इस समय हवा उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की तरफ़ बह रही है।''

गुब्बारे वाले आदमी ने धन्यवाद दिया और पूछा– ''क्या आप भारत सरकार के कोई बड़े सलाहकार हैं?''

नीचे वाले आदमी ने जवाब दिया – ''हाँ। लेकिन आपको कैसे पता चला?''

गुब्बारे वाले आदमी ने कहा –''दरअसल आपने जितनी भी बातें बताईं ,वे सब तकनीकी रूप से तो सही हैं ; पर मुझको समझ में नहीं आ रहा इनका मैं क्या करूँ। इनसे मुझे किसी तरह की कोई भी सहायता नहीं मिली। मैं अब भी दिग्भ्रमित ही हूँ''।

नीचे वाले व्यक्ति ने कहा – ''ओ हो, लगता है आप देश के कर्णधार मंत्री हैं।''

गुब्बारे वाले व्यक्ति ने कहा – ''हाँ, लेकिन आपको कैसे पता चला?''

नीचे वाले व्यक्ति ने कहा – ''आपको यह ख़बर नहीं कि इस वक़्त आप कहाँ हैं, आपका गंतव्य क्या है और आपने लोगों से ऐसा वादा भी कर लिया जिसके बारे में आपको मालूम नहीं आप कैसे निभाएँगे। आप खुद दिग्भ्रमित हैं और अब आप मुझसे ये अपेक्षा रख रहे हैं कि मैं आपकी समस्या सुलझा दूँगा।''

आउटगोइंग

शेफाली पाण्डे

सुदूर पहाड़ में रहकर खेतीबाड़ी करने वाले अपने अनपढ़ एवं वृद्ध माता पिता के हाथ में शहर जाकर बस गए लड़कों ने परमानेंट इन्कमिंग फ्री वाला मोबाइल फ़ोन पकड़ा दिया । साथ ही फ़ोन रिसीव करना व काटना भी अच्छी तरह से समझा दिया । बेटे चिंता से अब पूर्णत: मुक्त।

रविवार –

बड़ा लड़का ''इजा प्रणाम, कैसी हो?''

इजा की आँखों में आँसू, 'कितना ख्याल है बड़के को हमारा, हर रविवार को नियम से फ़ोन करता है'।

''ठीक हूँ बेटा, तू कैसा है?''

''मैं ठीक हूँ, बाबू कहाँ हैं?''

''ले बाबू से बात कर ले, तुझे बहुत याद करते हैं।''

''प्रणाम बाबू, कैसे हो?''

''जीते रहो''।

''बाबू तबियत कैसी है?''

''सब ठीक चल रहा है ना? खेत ठीक हैं? सुना है इस साल फसल बहुत अच्छी हुई है। ऑफिस के चपरासी को भेज रहा हूँ, गेंहूँ, दाल, आलू और प्याज भिजवा देना। यहाँ एक तो महँगाई बहुत है दूसरे शुद्धता नहीं है। जरा इजा को फ़ोन देना।''

''इजा, तेरी तबियत कैसी है?''

''बेटा, मेरा क्या है? तेरे बाबू की तबियत ठीक नहीं है तू.....''।

''बाबू इतनी लापरवाही क्यों करते हैं? ठीक से ओढ़ते नहीं होंगे। नहाते भी ठंडे पानी से ही होंगे। बुढ़ापे में भी अपनी ज़िद थोड़े ही छोड़ेंगे। इजा, तू उनको तुलसी-अदरक की चाय पिलाती रहना, ठीक हो जाएँगे''।

''पर मेरी.....''।

''अच्छा इजा, अब फ़ोन रखता हूँ, अपना ख्याल रखना। फ़ोन में पैसे बहुत कम बचे हैं'' –कहकर बेटे ने फ़ोन काट दिया।

''अरे, असल बात तो मैं कहना ही भूल गई कि अब हम दोनों यहाँ अकेले नहीं रहना चाहते। आकर, हमें अपने साथ ले जाये। कैसी पागल हूँ मैं, सठिया गई हूँ शायद'', माँ ने पिता की ओर देखकर कहा तभी फ़ोन की घंटी दुबारा बजी, 'शायद छोटू का होगा', दोनों की आँखों में चमक आ गई।

''हेलो इजा, मैं छोटू, अभी-अभी दद्दा के घर आया हूँ। तू जब दद्दा के लिए सामान भेजेगी, मेरे लिए भी भिजवा देना। हमारी भी इच्छा है कि गाँव का शुद्ध अनाज खाने को मिले'', कहकर छोटू ने फ़ोन काट दिया।

माँ ने जब उसका नम्बर मिलाया तो आवाज़ आई, 'इस नम्बर पर आउटगोइंग की सुविधा उपलब्ध नहीं है'।

छल

हरकीरत 'हीर'

हैलो.....ह.....हाय.....:))

उठ गईं.....?

हूँ..... हूँ.....तुम तो मुझे उठाने वाली थी.....?

ह.....ह.....ह.....चलो कोई बात नहीं.....नींद तो ठीक से आई न .....?

कितने बजे सोई थी.....?

ओ के.....!

नेट पे तो नहीं बैठी ज़्यादा देर..... ?

अच्छी बात बात है .....

देखो अब कोई टेंशन नहीं ओ के.....!

नाश्ता किया.....?

मैं तो कर रहा हूँ राजधानी में.....

यू नो.....राजधानी इज गुड ट्रेन..... सर्विसिंग भी बहुत अच्छी है .....टॉयलेट्स आर क्लीन एंड ब्रेक फास्ट इज टू गुड....ब्रेड बटर ऑमलेट टी ....

ऐसा करो तुम भी अपना नाश्ता रूम में मँगवा लो.....

छोड़ो यार..... अपने दिमाग से ये सारी बातें निकाल दो..... मैं हूँ न तुम्हारे साथ..... अब दो दिन मेरे साथ रहोगी तो बिलकुल नार्मल हो जाओगी

हाँ .....हाँ.....बाबा.....

ठीक है डार्लिंग....पहले तुम चलाना तो सीख लो....लेने से पहले चलानी आनी चाहिए कि नहीं ...?

पहले सीखना ज़रूरी है.....समझ रही हो न.....फर्स्ट यू लर्न.....कम से कम साल छह महीने चलाना सीख लो.....

ऍम आई राइट ओर रॉंग.....?

द बेस्ट इज़ पहले चलाना सीखो फिर लो.....क्यों .....?

सीखना ज़रूरी है..... ये मत सोचो कि अपनी कार होगी तो ही सीखूँगी.....पहले तुम चलाना तो सीखो डार्लिंग.....

यूँ करो पास में कहीं कोई ड्राइविंग ट्रेनिंग सेंटर है तो उसे ज्वायन कर लो.....साल छह महीने...

नहीं स्वीट हार्ट ऐसा क्यों सोचती हो..... ?

नो.....नो.....बेबी....ऐसा सोचना भी मत .....

तुम्हें लगता है मैं ऐसा हूँ.....?

मैं झूठ नहीं बोलता तुम जानती हो.....

मुझ पर विश्वास है कि नहीं.....?

ओ के ऐसा करो.....डिसाइड करो कौन सी लेनी है....बुकिंग का पता करो....कितने दिन पहले बुकिंग होती है....कब तक मिलेगी....गेटिंग इट.....

और हाँ.....अपने दिमाग से ये सारी फ़िज़ूल की बातें निकाल दो.....समझी.....।

अब कोई टेंशन नहीं.....कोई तनाव नहीं .....ओ के.....माई डार्लिंग.....लव यू.....

देखो जब मैं तुम्हें दिल्ली में मिलूँ तो बिलकुल तुम मुस्कुराती हुई मिलना...खिली हुई....ओ के.....

(बीच बीच में उसके दूसरे फोन की घंटी भी बजती जाती है जिसे वह बार बार काटता जा रहा है .....बातचीत लगातार जारी है.....सुबह से दोपहर .....दोपहर से शाम.....शाम से रात.....)

अब आपका मौसम कैसा है .....?

बहुत जल्द मौसम बदलता है आपका.....

इतना गुस्सा सेहत के लिए ठीक नहीं .....

हाँ .....ये हुई न बात.....पर एक के साथ एक फ्री मिलना चाहिए.....ह.....ह.....ह.....

मुझे आने दो फिर.....:

लो डिनर आ गया मेरा.....

चलो अब तुम भी जल्दी से डिनर मँगवा लो अपना.....ओ के बाय.....

दूसरा फोन फिर बजता है .....कुछ सोच कर उठा लेता है.....

हाय.....कैसी हो.....?

नहीं मैं सुबह से ही काम में बहुत बीजी था.....

अगले महीने पूना आ रहा हूँ न .....:)) अगले महीने उधर ही सूटिंग है.....पूना , मुम्बई , बैंगलोर .....फिर हम सैटरडे , सण्डे साथ होंगे.....

क्यों नहीं.....? मैं कभी झूठ नहीं बोलता डार्लिंग

मैंने देखा उस अधेड़ के चेहरे पर पड़े चेचक के निशानों बीच उग आई हलकी -हलकी सफ़ेद काँटों की सी दाढ़ी में उसके चेहरे की मुस्कराहट और भी विकृत हो गई थी.....

●

रीति -रिवाज

त्रिलोक सिंह ठकुरेला

जगतपुरा के पंडित गजानंद के दो बेटे शहर में सरकारी सेवा में थे। परिवार में सबकी सलाह से घर में हैंडपंप लगाने का निर्णय लिया गया। कुँए से पानी भरकर लाना अब उन्हें शान के खिलाफ़ लगने लगा था।

पड़ोसी गाँव से रतिराम एवं चेतराम को बुलाया गया। दोनों दलित थे ; किन्तु आसपास के इलाके में वे दोनों ही हैंडपंप लगाना जानते थे। दोनों ने सुबह से दोपहर तक मेहनत की एवं हैंडपंप लगाकर तैयार कर दिया । हैंडपंप ने मीठा पानी देना शुरू कर दिया।

पंडित गजानंद द्वारा रतिराम और चेतराम को मेहनताने के साथ-साथ दोपहर का खाना भी दिया गया। खाना खाने के बाद रतिराम एवं चेतराम पानी पीने के लिए जब हैंडपंप की ओर बढ़े तो पंडित गजानंद ने उन्हें रोक दिया। बोले-''अरे भाई ! माना तुम कोई काम जानते हो, तो क्या सारे रीति-रिवाज़ भुला दोगे। ज़रा जाति का तो ख़याल रखो। यह ब्राह्मणों का हैंडपंप है।''

उन्होंने लड़के को आवाज़ दी-''राजेश इन दोनों को लोटे से पानी तो पिला।''

रतिराम और चेतराम ने एक दूसरे की ओर देखा,जैसे पूछ रहे हों- यह कैसे रीति-रिवाज हैं।

●

काठ

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

बस में हडकंप मचा हुआ था । यात्री एक दूसरे पर गिर रहे थे । एक दूसरे का हाथ थामे और बस की अगली सीटो की रेलिंग पर अपने हाथ मज़बूती से टिकाये हुए । कोई ड्राइवर से चीख - चीख कर कह रहा था कि क्यों हडकंप मचा रखा है बस में । आराम से नहीं चला सकते ? जहन्नुम में जाने की इतनी क्या जल्दी है । सुमी का हाथ भी इसी हड़कम्प में सामने वाले के हाथ में चला गया था। उसने डर के मारे आँख मीच कर वह हाथ थाम लिया था ।

सुमी को लगा - एक बारगी स्वर्ग का दरवाज़ा खुल गया । और उस का राधे सामने उसका हाथ पकड़कर बैठ गया है । उस सम्बल की मज़बूती ने उसके मन-प्राण-शरीर को ढक लिया। साँस धौंकनी हो गई थी । बस में वैसे ही हड़कम्प था ।

यह कुछ करके रहेगा - कोई चिल्लाया था पर दूसरे लोग चिल्ला कर भी चिल्ला नहीं रहे थे । उन्हें डर था कि ज़्यादा शोर से या ताड़ना से ड्राइवर गाड़ी -किसी खाई में ही ना उतार दे । इसी लिए मुट्ठियाँ बाँधे एक दूसरे को थामे -उस तूफान को गले उतार रहे थे।

सुमी धीरे से फुसफुसाई -'राधे !' जिसे किसी ने नहीं सुना ।

उस के अंदर लगा - पता नहीं इतने सालों का सोया उस का राजकुमार कैसे जाग गया । उसे तो लगा था , पुरुष स्पर्श के बिना उस का शरीर नहीं मन भी - सूख कर काठ हो गया है । पर पता नहीं किन तहों में यह ताप बचा रहा जो आज धक्का लगते ही सड़क पर तारकोल की तरह बिछ गया । उस ने अपने आप को सम्भाला ।

गाड़ी रुक गई थी और यात्री उठ -उठ कर दरवाज़े के बाहर धकियाते -ठेलते उतर रहे थे । उसने भी और सामने वाले ने भी अपने अपने हाथ ढीले कर लिये थे ।

अब वे बस स्टैंड के बरामदे में से निकल रहे थे । बस की भीड़ छँट गई थी । उन दोनों के बीच केवल एक अटेची -केस का फासला था जो उन दोनों के बीच अपनी सत्ता -सहित घिसट रहा था । दोनों ने एक दूसरे का चेहरा भी ठीक से नही देखा था और सुमी अपने आपमें गुम अपने अतीत में खोई थी ।

राधे के बाद ! किसी ने उस के जिस्म को न छुआ था । वह पत्थर हो गई थी ।

आस-पास लोगों की अठखेलियाँ देखते उसे वितृष्णा होती थी । कभी-कभी आज भी राधे की झलक बिजली सी उस के आर-पार हो जाती थी ।

वे अब रिक्शा स्टैंड के पास खड़े थे ।

'आपको कहाँ जाना है ?' पहली बार उसने आवाज़ सुनी थी ।

'सुखना लेन'

'और मुझे जाना है मखानी गंज'

'तो सुखना लेन-मखानी गंज के पहले आता है।' सुमी न जाने कैसे बिना सोचे-समझे बोल पड़ी । जैसे वह एक ही रिक्शा पर बैठने वाले हों ।

'हाँ आप मुझे मोड़ पर महेश्वरी की हट्टी पर उतार दें।' दूसरा यात्री अभी तक अपने ही साथ चल रहा था - अपने में ही समाहित । उसने शायद सुमी की आवाज़ भी नहीं सुनी ।

वह एक दूसरे रिक्शा वाले को आवाज़ देकर उसे मखानी गंज जाने की हिदायत दे रहा था ।

सुमी देखती रही ।

क्षण भर में आकाश के सारे बादल कहीं और अपना जमघट बनाने दौड़ पड़े ।

राधे के स्वर्ग का दरवाज़ा बंद हो गया ।

मखानी गंज का रिक्शा - मखानी गंज रवाना हो चुका था ।

सुमी सोच रही थी -कि यात्री का तो नाम भी नहीं पूछा । पर यात्री ने भी तो नहीं पूछा !

उसने अपना सामान -धीरे से खिसकाया और सुखना लेन की रिक्शा में बैठ गई ।

सदियों पुरानी तरलता -कहीं हड्डियों के नीचे -एकाएक सूख कर फिर से काठ हो गई ।

उसे लगा -वह राधे ही था -जो एक बार फिर हवा में हवा हो गया है

●

माँ

ऋता शेखर 'मधु'

आज मैं अपनी सहेली को लेकर अस्पताल गई थी । मैटर्निटी वार्ड में उसे भर्ती किया। सहेली की माँ या सास में कोई पहुँच नहीं पाई थी ; इसलिए मैं ही लेकर गई थी । मैं वहीं बाहर बैठी थी। तभी वहीं एक फ़ैमिली आई। उनके घर भी नया मेहमान आने वाला था। लड़की कम उम्र की ही थी। बातों से लग रहा था कि लड़की के मैके और ससुराल, दोनों ही तरफ़ यह प्रथम सन्तान थी ।

लड़की के साथ दो महिलाएँ आई थीं। दोनों के ही चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ साफ़ झलक रही थीं। लड़की जब अन्दर जाने लगी तो दोनों ने ही उसे प्यार किया । लड़की दोनों को माँ कहकर सम्बोधित कर रही थी। जब वह अन्दर चली गई तो दोनों महिलाएँ वहीं बैठ गईं।

मैं यह तय नहीं कर पा रही थी कि उनमें लड़की की माँ कौन है और सास कौन है ।

क़रीब एक घण्टे के बाद पता चला कि लड़की ने बेटे को जन्म दिया था । दोनों महिलाओं ने गर्मजोशी से एक दूसरे को बधाइयाँ दीं। मैं अभी भी उलझन में थी कि कौन माँ है और कौन सास।

तभी जच्चा और बच्चा दोनों ही बाहर आए । बच्चा नर्स की गोद में था। एक महिला दौड़कर नर्स के पास पहुँची और बच्चे को गोद में ले लिया। उसकी ख़ुशी छुपाए नहीं छुप रही थी ।

दूसरी महिला लड़की के पास गई और इस कष्ट से उबरने के लिए उसे प्यार करने लगी। एक झटके में ही मेरी समझ में आ गया कि लड़की की माँ कौन थी ।

●

सहायता

डॉ.रवीन्द्र अग्निहोत्री

युवक भोपाल से लखनऊ जा रहा था। जैसे - तैसे एक डिब्बे में घुसने में जब वह सफल हो गया तो डिब्बे में ऐसी जगह तक पहुँचने के लिए जद्दो - जहद करने लगा जो मुख्य द्वार से दूर हो ताकि हर स्टेशन पर उतरने - चढ़ने वाली भीड़ से राहत पा सके। जब उसे दो बर्थ के बीच वाले गलियारे में खड़े होने लायक जगह मिल गई तो उसे ऐसा लगा जैसे उसने बहुत बड़ा मोर्चा फतह कर लिया हो।

मन में थोड़ी निश्चिंतता आई तो तन की सुध आई। उसने अपनी अस्त-व्यस्त कमीज़ को व्यवस्थित करने की कोशिश की । पर जब हाथ पैंट की जेब पर गया तो वह सन्न रह गया। उसका पर्स गायब था। पर्स में उसने रुपये के साथ यात्रा का टिकट भी रखा था; क्योंकि वह मानता था कि छोटा सा टिकट पर्स में अधिक सुरक्षित रहता है। एक बार उसके मन में ख्याल आया कि शायद मैंने पर्स दूसरी जेब में रख लिया होगा । बस, इसी शंका के आधार पर वह अपनी हर जेब टटोलता रहा और हर बार निराश होता रहा। उसे यह चिंता सताने लगी कि जब टी टी आएगा तब क्या होगा ? बिना टिकट पकड़े जाने की कल्पना से उसके रोंगटे खड़े हो गए , दिल जोर से धक् - धक् करने लगा । अपनी कल्पना में उसे टी टी का चेहरा यमराज जैसा लगने लगा। चिंता और डर की रेखाएँ उसके चेहरे पर उभर आईं।

पास बैठा एक वृद्ध यह सब ध्यान से देख रहा था। उसने पूछा , ''क्या बात है ? तुम बहुत परेशान लग रहे हो ?''

युवक ने अपने साथ घटी दुर्घटना बताई तो वह बोला ,''देखो , जब कोई मुसाफिर रेल में चढ़ने की कोशिश करता है , उस समय उसका पूरा ध्यान किसी तरह डिब्बे में घुसने पर ही रहता है। उसी समय जेबकतरे जेब साफ़ कर देते हैं।'' जेबकतरों की इस कार्यशैली को जानकर उसे कोई राहत नहीं मिली। वह कहने लगा कि टी टी को मैं यह सब बताऊँगा तो पता नहीं वह विश्वास भी करेगा या नहीं।

वृद्ध बोला,''देखो, तुम टी टी को यह सब बताओगे तो वह तो कुछ सुनेगा नहीं। डब्ल्यू टी होने के कारण वह जुर्माना तो लेगा ही , ऊपर से टिकट भी भोपाल से बनाने के बजाय भुसावल से बनाएगा ; जहाँ से इनका ज़ोन शुरू होता है ; इसलिए तुम तो अगले किसी स्टेशन पर उतर कर टिकट खरीद लेना।''

सलाह नेक थी। कुछ देर को उसे भी राहत मिली, पर तभी ध्यान आया कि पैसे तो पर्स में ही थे। अब तो मेरे पास पैसे हैं ही नहीं । टिकट कैसे खरीदूँगा ? उसने अपनी समस्या सामने रखी तो वृद्ध ने दिलासा दिया,''पैसे मैं दे दूँगा ।''

एक बार तो उसे अपने कानों पर भरोसा ही नहीं हुआ । वह सोचने लगा ,यह व्यक्ति मुझे नहीं जानता , मैं इसे नहीं जानता, क्या वास्तव में यह मुझे रुपये दे देगा ? यदि हाँ , तो क्या मुझे इससे सहायता लेनी चाहिए ? इससे सहायता न लूँ तो क्या करूँ ? वह इस समय जिन समस्याओं में घिरा हुआ था , उनमें सहायता न लेने का एक ही अर्थ था - पकड़े जाने पर जेल जाने के लिए तैयार रहना। इसलिए इस उहापोह से बाहर निकल कर इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने में ही उसने अपनी भलाई समझी। यह विचार मन में आते ही उसे ऐसा लगा जैसे डूबते को सहारा मिल गया। उस वृद्ध के प्रति उसके मन में अचानक श्रद्धा उमड़ पड़ी । तभी उसे यह ध्यान आया कि टिकट तो प्लेटफार्म के बाहर मिलता है और बाहर जाने के लिए भी टिकट की आवश्यकता होती है। अपनी समस्या उसने बताई तो वृद्ध ने आश्वस्त करते हुए कहा, ''मेरा टिकट लेकर बाहर जाना और अपने लिए टिकट खरीद लाना, पर जाना ऐसे स्टेशन पर जहाँ रेल दस - पंद्रह मिनट ठहरती है। ''

उसने बीना जंक्शन पर उतरकर टिकट खरीदने का निश्चय किया। जब बीना स्टेशन आने लगा तो वृद्ध ने उसे रुपये और अपना टिकट दिया और युवक ने फुर्ती से बाहर जाकर अपने लिए दूसरा टिकट खरीद लिया ।

अब वह शांत था। सफ़र जारी था। यात्रा लम्बी थी । अत: बात करने का भरपूर अवसर था। थोड़ी ही देर में युवक ने वृद्ध से उसका पता पूछा।

वृद्ध ने प्रतिप्रश्न किया , ''पता जानकर क्या करोगे ?''

युवक ने अत्यंत विनम्रतापूर्वक कहा, ''आज आपने जिस तरह मेरी रक्षा की, उस ऋण से तो मैं उऋण हो ही नहीं सकता , पर कम से कम आपके पैसे तो मनिआर्डर से भेज दूंगा ।''

वृद्ध ने अपना जो पता बताया उससे युवक को मानों पूरी जीवन यात्रा के लिए पाथेय मिल गया। वृद्ध ने कहा, ''जिस तरह आज तुम संकट में थे, वैसे ही जब तुम्हें संकटग्रस्त व्यक्ति मिलें तो उनकी भरपूर सहायता करना और समझ लेना कि तुम्हारा मनीआर्डर मुझे मिल गया ।''

●

हारने का सुख

डॉ. आरती स्मित

''माँ,मेरे साथ खेलो ना! प्लीज़।''

मेरा नौ वर्षीय बेटा ओम मेरे पास आकर मिन्नतें करने लगा।

थकी होने के बावज़ूद मैं उसके साथ गुणागोले का खेल खेलने लगी। बेटा पहली पारी जीत गया। ख़ुशी उसके चेहरे पर उभरी। दूसरी पारी मैं जीत गई। ओम खेल के प्रति संजीदा होने लगा। मैं उसके मनोभाव पढ़ने की कोशिश करने लगी। वह पूरी ऊर्जा लगाकर अपने दाँव चला और जीत उसके ख़ाते में। उसका हौसला बढ़ा। वह जोश और विवेक के साथ पारी खेलता और जीतता गया। उसके चेहरे पर जीत की चाँदनी छिटकने लगी । वह ख़ुशी से ताली बजाबजाकर कहता, ''माँ हार गई माँ हार गई''

उसे चंद पलों की ख़ुशी देकर मैं थकान भूल गई। उससे हारने के सुख से मेरा थका कुम्हलाया शरीर दमकने लगा और मुख पर भोर की किरणें मुस्काने लगीं ।

●

उत्सव

सीमा 'स्मृति'

महानगरों में प्रत्येक हाउसिंग सोसाइटी के आस पास या कुछ दूरी पर प्राय: एक झुग्गी झोंपड़ी बस्ती होती है । वरना घरों में काम करने के लिए बाइयाँ कहाँ से मिलेगी। मुझे मालिकों और नौकरों का रिश्ता परस्पर परजीवी सा प्रतीत होता है। हमारी हाउसिंग सोसाइटी से कुछ दूरी पर, यमुना पुश्ते के पास एक झुग्गी झोंपड़ी बस्ती है।

उस दिन सुबह जब आँख खुली, न्यूज पेपर में खबर पढ़ हैरान रह गई। यमुना पुश्ते की उस बस्ती में बीती शाम आग लग गई । पूरी बस्ती जल गई । ये शुक्र था, किसी के हताहत होने की खबर नहीं थी । बालकनी से देखा तो मिसेज शर्मा कार में कुछ सामान रख रही थी । मुझसे रहा नहीं गया । मैंने पूछा ही लिया-'मिसेज शर्मा, क्या कहीं जा रही हैं?'

'हाँ पुश्ते तक । क्या आप को मालूम नहीं पुश्ते वाली झुग्गी बस्ती में कल रात आग लग गई है'- मिसेज शर्मा ने कहा। 'देखना आज कोई काम वाली नहीं आएगी' सब से बड़ा दर्द मिसेज शर्मा ने जल्दी बाँट लिया।'बस कुछ पुराने कपड़े, बर्तन और थोड़ा- सा खाने का सामान है सोचा वहाँ बाँट आऊँ । वहाँ तो सब जल कर खाक़ हो गया है।' मिसेज शर्मा ने बताया।

मुझे आफिस के लिए तैयार होना था और आज तो काम वाली का इंतजार करना भी बेकार है, यह सोच मैं जल्दी अन्दर आ गई। काम निपटाकर जब मैं आफिस के लिए निकली तो उसी बस्ती के आगे की मेन रोड से गुज़र रही थी । देखा सब जल चुका था और बस्ती के कुछ लोग उस बचे -झुलसे सामान में कुछ खोज रहे थे । दूसरी और क्या देखती हूँ कि कार वालों की लम्बी कतार थी । ऐसा लगा -लोग आज सब कुछ दान कर देना चाहते थे । कितने जाने पहचाने चेहरे हमारी ही सोसाइटी के थे । क्या कपड़े, बिस्कुट, रोटियाँ डबल रोटियाँ बरतन,पुरानी चप्पलें, चादरें ,बाल्टी क्या-क्या नहीं बाँट रहे थे ।

अचानक उसी शाम मुझे आफिस के काम से शहर से बाहर जाना पड़ा। चार दिन बाद लौटने पर मुझे लगा कि मैं भी बस्ती में कुछ देकर आऊँ। यही सोच कार में कुछ सामान रख रही थी ,तो मिसेज मेहता ने कहा 'बस्ती के लिए सामान ले जा रही हैं । अच्छा है हम सब को बस्ती वालों की सहायता करनी चाहिए। जितनी जल्दी ये लोग रिहैबलिटेट होगें, उतनी जल्दी ये कामवालियाँ काम पर आएगी । वर्ना मुश्किल तो हम वर्किंग लेडीज़ की होने वाली है।'

मैं बस्ती में सामान बाँटकर निकल ही रही थी कि बरबस मेरे कदम एक बच्ची की मीठी -सी आवाज़ सुन थिर हो गए वह अपनी बड़ी बहन से बिस्कुट का डिब्बा माँगते -माँगते कह रही थी । दीदी, दो ना, मुझे वो वाला पैकेट दो । दीदी आजकल कितना बढ़िया सामान मिल रहा देखो, देखो मेरी नई फ्राक । ये बिस्कुट तो बहुत स्वाद है, वाह मज़ा आ गया ओह, ये तो खत्म होने वाला है। दीदी, दीदी बस्ती में दोबारा आग कब लगेगी ?

●

अच्छा सौदा

दीपक मशाल

क्रिसमस के अगले दिन आज बॉक्सिंग डे सेल का दिन होने की वजह से बाज़ार की रौनक देखने लायक थी, हर कोई दुम में रॉकेट लगाए भाग रहा था। लगता था मानो ज़रा सी देर हुई नहीं कि दुनिया का आख़िरी सामान बिक चुका होगा और उनके हिस्से कुछ न आएगा।

सिटी सेंटर के पास की सँकरी गली के अन्दर बने कपड़ों के उस छोटे से शो-रूम पर भी लोगों का आना जाना हो रहा था जिसपर आम दिनों में इक्का-दुक्का ग्राहक ही जाते थे।'सेल में बिका हुआ माल न वापस होगा और न ही बदला जाएगा' दुकान के अन्दर बड़े-बड़े और मोटे अंग्रेज़ी अक्षरों में कई जगह यह पम्फ़लेट चिपकाया गया था। शायद यह वाक्य ही दुकान के कपड़ों की क्वालिटी का साक्षी बना हुआ था जिसका नतीजा यह हुआ कि सुबह के दस बजते-बजते एक को छोड़कर शो-रूम में टंगे बाकी सभी कोट बिक चुके थे। तभी एक के बाद एक दो नवयुवक शो रूम में घुसे और सीधे कोट सेक्शन की ओर बढ़ गए। उनमे से एक थोड़ा तेज़ निकला, उसने कोट हैंगर समेत निकाला और ट्रायल-रूम की तरफ बढ़ गया। दूसरे को देखकर लगता था कि वह भी अगले ही पल उसी कोट को देखने वाला था।

ख़ैर पहले नवयुवक को वह कोट पहनकर देखने पर बिलकुल फिट आया। उसने सेल में आधी कीमत में मिल रहे उस कोट का काउंटर पर भुगतान किया और बाहर आ गया। वह खुश था कि उसने बढ़िया सौदा किया, उसे अपने पसंदीदा रंग, डिज़ाइन का कोट इतने सस्ते में मिल गया।

कोट की तरफ बढ़ने वाला दूसरा नवयुवक मन मसोस कर रह गया, उसे अपने आप पर गुस्सा आ रहा था कि क्यों वह ज़रा सी देर से रह गया। उसे गुस्सा इस बात पर भी था कि वह आज सुबह जल्दी सोकर क्यों ना उठा। अगर वह उठ गया होता तो इतना अच्छा सौदा उसके हाथ से ना निकलता। इस वक़्त उसे लग रहा था जैसे कोहिनूर हीरा उसके हाथ से फिसल किसी और की झोली में जा गिरा हो।

दुकान मालिक खुश था कि आठ महीने से दुकान में पड़ा वह पुराना कोट आखिरकार सही कीमत में बिक गया वर्ना दोपहर बाद वह उस कोट की कीमत और भी कम करने की सोच रहा था। मगर अब तो उसे लागत निकलने के अलावा कुछ फायदा भी हो गया था, अच्छा सौदा रहा।

दुकान के सेल्स-मैन के चेहरे पर भी इस सौदे से खुशी झलक रही थी क्योंकि कल रात की क्रिसमस पार्टी में वह यही बिक चुका कोट पहन कर गया था जहाँ किसी से टकराने से रेड वाइन से भरा पैग उस कोट पर गिर गया था, लेकिन गहरे रंग का होने की वजह से उस पर पड़ा दाग ग्राहक की नज़र में ना आया और वह मालिक की डाँट खाने व खुद कोट का भुगतान करने से बच गया।

●

अपने-अपने देश

रचना श्रीवास्तव

अभी कुछ महीने हुए थे डेंटन (अमेरिका) आए हुए । आते समय तो बहुत अच्छा लग रहा था नई दुनिया नए सपने । पर अब इस मशीनरी देश में मैं स्वयं को बहुत अकेला महसूस करने लगी । मधुर के जाने के बाद तो घर जैसे काटने दौड़ता । शाम को घर से नीचे उतर बस थोड़ा टहल लेती तो अच्छा लगता । अब तो टहलना मेरा रोज़ का नियम बन गया था । एक दिन देखा की मेरे नीचे वाले अपार्टमेन्ट में कोई रहने आया एक औरत और उसके साथ एक प्यारी-सी तीन या चार साल की बच्ची थी। अक्सर जब मैं टहलने जाती वो बच्ची अपनी खिड़की में खड़ी मुझको देखती रहती और एक प्यारी से मुस्कान के साथ हाय ! कहती । मैं भी उसी प्यार से उसका उत्तर देती । कभी-कभी वह मुझे बाहर खेलती मिल जाती । मुझे देख के मेरे पास आती ;पर जैसे ही अपनी माँ को आते देखती तो मुझसे दूर भाग जाती । उसने बताया कि उसका नाम क्रिस्टी है । पापा पास में नहीं रहते हैं । उससे कभी -कभी मिलने आते हैं । जब तक उसकी माँ नहीं आ जाती ,बस वह यही छोटी -छोटी बातें करती रहती ।

एक दिन जब मैं टहलकर वापस आई तो वह जैसे मेरा ही इंतजार कर रही थी । मुझे देखते ही बोली -''आई वान्ट टू सी योर होम । कैन आई कम विथ यू।'' मुझे समझ मैं नहीं आ रहा था कि क्या कहूँ ; पर उसकी भोली सूरत और मासूम आँखें जिस तरह मुझे देख रहीं थीं; मै उसे मना नहीं कर पाई। पर मन में कहीं संकोच भी था । अत: जल्दी से घर दिखा कर हम सीढिंयों पर आकर बैठ गए ।

''आपके घर से कितनी अच्छी खुशबू आ रही थी । मुझे बहुत अच्छा लगा । मेरे घर में मम्मी पता नहीं क्या-क्या बनाती है अजीब -सी महक आती है'' ।

''नहीं क्रिस्टी ऐसे नहीं कहते मम्मी तुम्हारे लिए ही तो बनाती है ।

''हाँ ,आप सही कह रही हैं पर वो महक मुझे अच्छी नहीं लगती । आपके कपड़े मुझे बहुत अच्छे लगते हैं । इसको क्या कहते हैं ? हाथों मैं क्या पहना है? माथे पर क्या लगाया है ?''

इसी तरह से वो बहुत सी बातें पूछती रही और मैं उसके छोटे -छोटे भोले सवालों के जवाब देती रही । मैंने उसके माथे पर एक छोटी -सी बिंदी भी लगा दी । वह चिड़िया -सी चहक उठी ''क्या मैं ये रख सकती हूँ ?'' बिंदी का पत्ता हाथों में लेकर उसने मुझसे पूछा ।

''हाँ ये तुम्हारे लिए ही है ''

तभी उसकी माँ की आवाज़ आई-'' क्रिस्टी वेयर आर यू?''

क्रिस्टी एकदम सहम गई । उसकी सारी चहक काफूर हो गई ।

वह जाने लगी; पर उसकी माँ सीढ़ियों पर आ गई । मैंने हाय ! कहा पर उसने कोई उत्तर न देकर सिर्फ़ सिर झटक दिया। उसने क्रिस्टी का हाथ पकड़ा, उसके माथे से बिंदी उतारकर फेंकते हुए बोली-''तुमको कितनी बार मना किया है! इनसे बात मत किया करो । ये जादू टोना जानते हैं।ये हाथियों और साँपों के देश से आए हैं।''

●

आदमी

नरेन्द्र कुमार गौड़

रविवार को उसने अपनी पत्नी के साथ दोस्तों के घर जाने का प्रोग्राम बनाया ताकि उसके दोस्तों की काफी दिनों पुरानी शिकायत कि कभी घर नहीं आते दूर की जा सके।

वे दोनों पहले एक दोस्त के घर गए वहाँ पति-पत्नी की पहले ही किसी बात पर तू-तू, मैं-मैं हो रही थी। एक बार तो पति-पत्नी घर आए मेहमानों को देखकर खुश हो गए किन्तु, जितनी देर तक वे लोग वहाँ बैठे उतनी ही देर तक पति-पत्नी की हर बात में टोका-टोकी करता रहा तथा झिड़कता रहा। आखिर उन्होंने किसी तरह चाय समाप्त की और उनसे विदा ली।

रास्ते में पत्नी कह रही थी कि इस औरत का आदमी कितना कमीना है। अपनी पत्नी को बात-बात पर प्रताड़ित करता रहता है। बेचारी बहुत तंग होगी अपने पति से। इसके तो भाग ही फूट गए। कैसे गुज़ारेगी ऐसे आदमी के साथ बाकी की ज़िन्दगी।

वह इस तरह की बातें कर ही रही थी कि उसके पति के दूसरे दोस्त का घर आ गया। वे जब अन्दर गए तो देखा पति-पत्नी मिलकर कपड़े धो रहे थे। पत्नी कपड़ों पर साबुन लगा-लगाकर पति को दे रही थी तथा पति उन कपड़ों को साफ पानी से खंगाल-खंगाल कर निचोड़-निचोड़ कर रस्सी पर सुखा रहा था। उनके आते ही पति-पत्नी कपड़े धोना छोड़कर हाथ पोंछकर आ गए। खुशी-खुशी दोनों ने मिलकर चाय बनाई। पत्नी चाय में पत्ती-चीनी व दूध डाल रही थी तो पति ट्रे में नमकीन व बिस्कुट रख रहा था। पति ने नमकीन व बिस्कुट की प्लेट रखी वही पत्नी भी साथ-साथ चाय छानकर ले आई। पत्नी जो भी बात कहती ,पति उसकी हाँ में हाँ मिलाता और दोनों एक दूसरे के मुँह की तरफ देखते फिर बातें करते। सबने मिलकर चाय पी खूब हँसी-मज़ाक हुआ-ठहाके लगे तथा वे दोनों हाथ जोड़कर विदा लेकर चल पड़े। रास्ते में पति कह रहा था-देखा, कैसा जोरू का गुलाम है। कैसे उसके साथ लगकर कपड़े धुलवा रहा था। और कैसे अपनी पत्नी की हाँ में हाँ मिला रहा था। जैसे अपना खुद का दिमाग तो है ही नहीं। ऐसा आदमी भी कोई आदमी होता है भला।

●

हरि मृदुल

मेरी प्रिय दो लघुकथाएँ इस प्रकार हैं। एक है जोगिंदर पाल की उपस्थित और दूसरी उदय प्रकाश की डर । ये दोनों लघुकथाएँ न केवल हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध करती हैं, बल्कि अपने आकार की बदौलत लघुकथा विधा का सटीक प्रतिनिधित्व भी करती हैं। प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि सैकड़ों लघुकथाओं के बीच इन्हीं दोनों रचनाओं को क्यों चुना गया है? तो इसका एक लाइन में जवाब है कि ये दोनों ही लघुकथाएँ जहाँ आज के भ्रमित करने वाले मायावी और अमानुषिक दौर को पूरी तरह से सामने रखने में सक्षम हैं, वहीं इस दौर के विडंबनापूर्ण यथार्थ से भी हमें रूबरू करवाती हैं। शब्दों का मितव्ययी प्रयोग, कथ्य और अर्थ गाम्भीर्य इन दोनों ही लघुकथाओं में देखते ही बनता है। यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि दुनिया की किन्हीं भी महत्त्वपूर्ण लघुकथाओं के साथ इन्हें रखा जा सकता है। पहले जोगिंदर पाल की लघुकथा उपस्थित और उसके बारे में मंतव्य –

उपस्थित

जोगिंदर पाल

क्या मजाल, कोई जान-पहचान वाला मर जाए और वह उसकी अर्थी के संग उपस्थित न हो ।

परंतु आज हम उसी की अर्थी लिये श्मशान की ओर जा रहे हैं और किसी ने आगे-पीछे देखते हुए मुझसे अचरज से पूछा है, 'आश्चर्य है, आज वह नहीं आया?'

●

उपर्युक्त लघुकथा जब मैंने कुछ साल पहले पढ़ी थी, तो मैं भौंचक रह गया था। तीन या चार पंक्तियों में जीवन से जुड़ी इतनी गहरी और अनूठी बात कहने के हुनर का मैं कायल हो गया था। लम्बे समय तक इस कथा ने मुझे अपने सम्मोहन में बाँधे रखा। इस कथा को पढ़ने के बाद मुझे अहसास हुआ कि अपने लघु आकार के बावजूद इस विधा में कितनी बड़ी बात कही जा सकती है। यह भी स्पष्ट हो गया कि साहित्य की दूसरी विधाओं की तुलना में यह विधा भले ही उपेक्षित हो, लेकिन इसकी ताकत को कोई नकार नहीं सकता है।

जोगिंदर पाल की इस लघुकथा में समकालीन जीवन की त्रासदी तो सही ढंग से व्यक्त होती ही है, इसकी संवेदनशीलता भी भीतर तक हिला डालती है। कितना जबरदस्त कथ्य है कि हर किसी के दु:ख को अपना मानने वाले और उसमें हर हालत में शामिल होने वाले व्यक्ति को कभी नहीं भुलाया जा सकता है। ऐसे व्यक्ति की मृत्यु भी सच नहीं लगती। महसूस होता है कि जल्द ही वह आएगा और ढाँढस बँधाएगा। यूँ पहली नज़र में यह लघुकथा एक चुटकुले जैसी लगती है; लेकिन जब पूरी बात समझ में आती है, तो चकित होना पड़ता है । कथाकार की पैनी दृष्टि पाठक को एक ऐसे कोण पर ले जाकर खड़ा कर देती है , जहाँ सबसे बड़ा कौतूहल मौजूद है और जीवन का सबसे बड़ा सच भी घटित हो चुका है। मृत्यु एक सत्य है ; लेकिन स्मृति में बने रहना जैसे मौत को मात देना है। अमरता प्राप्त कर लेना है। कथानक में पहली खबर मृत्यु की है और फिर इससे उपजा शोक है। अगले ही क्षण इस शोक को झटकने के लिए हास्य का अपूर्व संधान है। लघुकथा में ऐसा सामंजस्य एक दुर्लभ स्थिति है। जीवन की विडंबना की ऐसी बेधक अभिव्यक्ति कोई कुशल रचनाकार ही कर सकता है। निश्चित रूप से जोगिंदर पाल हमारे दौर के बड़े कथाकार हैं।

डर

उदय प्रकाश

वह डर गया है।

क्योंकि जहाँ उसे जाना है, वहाँ उसके पैरों के निशान पहले से ही बने हुए हैं।

●

उदय प्रकाश की यह लघुकथा एक बड़ी रेंज की रचना है। आकार में भले ही सवा लाइन की हो, परंतु इसके प्रभाव के बारे में लिखने के लिए सवा सौ पंक्तियों भी नाकाफ़ी हैं। दरअसल आज के दौर में डर एक स्थायी भाव की तरह हम सबके भीतर पैठ बना चुका है। कभी साम्राज्यवाद का दानव हमारे सामने खड़ा हो जाता है, तो कभी साम्प्रदायिकता का राक्षस नंगा नाच करने लगता है। डर के कई चेहरे अचानक एक साथ दिखने लगते हैं। कितने सारे डर अट्टहास करते हुए सम्मुख खड़े हो जाते हैं। आदमी डर से किसी भी विधि किनारा करना चाहता है, लेकिन यह संभव नहीं हो पाता है। वह भाग जाना चाहता है, परंतु डर है कि पीछा ही नहीं छोड़ता। वह निरंतर सुरक्षित स्थल की तलाश में है। लेकिन विडंबना यह है कि उसके सुरक्षित स्थल पर कदम रखने से पहले ही डर वहाँ पहुँच चुका है। उसके संभावित हर कदम पर पहले से ही खुद उसके निशान मौजूद हैं।

उदय की यह रचना नियतिवादी कतई नहीं है। यह लघुकथा नसीब को महत्त्व नहीं देती है। असल में यह एक ऐसे कठिन वक्त को अभिव्यक्त करती लघुकथा है, जिसमें आपका हर पल किसी दूसरे के पास गिरवी रखा हुआ है। इस कहानी में एक डरावना कौतुक है। जादुई यथार्थवाद की एक झलक है। बावजूद इसके ऐसी परिघटनाएँ हमारे इस दौर में लगातार घटती दिख रही हैं। चारों ओर डर ही डर है। आम आदमी को असहाय बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई है। वह बेहद निरीह दिखने लगा है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि एक निरीह व्यक्ति की कोई ताकत नहीं होती, इसलिए उसका भविष्य काफी पहले तय हो जाता है। उसे शिकार होना ही है, चाहे वह कितना भाग ले।

कुल मिलाकर यह लघुकथा आज के दारुण यथार्थ को दर्शाने में पूरी तरह सफल होती है। ऐसी अनूठी लघुकथाएँ दुर्लभ हैं। उल्लेखनीय है कि उदय प्रकाश ने जहाँ और अंत में प्रार्थना, वारेन हैस्टिंग का सांड़, पालगोमरा का स्कूटर, दिल्ली की दीवार, मैंगोसिल और मोहनदास जैसी कई महत्वपूर्ण लंबी कहानियाँ लिखी हैं, वहीं डर, अपराध, नेलकटर, सिर और अभिनय जैसी बेजोड़ लघुकथाएँ भी उनके पास हैं। कई बार यह भी लगता है कि उदय की लंबी कहानियों की अभूतपूर्व लोकप्रियता ने उनके लघु कथाकार को ढक दिया है। उनसे और भी बेहतरीन लघुकथाओं की उम्मीद की जा सकती है।

●

लघुकथा-जगत् में बहुत सारे प्रश्न-प्रतिप्रश्न सदा उभरते रहे हैं । किसी भी विकासमान विधा के लिए यह शुभ संकेत है । उन्हीं कुछ प्रश्नों के समाधान के लिए लघुकथा-जगत के छह प्रमुख हस्ताक्षर उपस्थित हैं, जो विधा के स्थापित रचनाकार के साथ -साथ सम्पादन, अनुवाद एवं सम्मेलनों के माध्यम से तन्मयता से जुड़े हैं। डॉ. सतीशराज पुष्करणा राष्ट्रीय स्तर पर 24 लघुकथा सम्मेलन करा चुके हैं । डॉ. श्याम सुन्दर 'दीप्ति' और श्याम सुन्दर अग्रवाल हिन्दी -पंजाबी भाषा के 19 संयुक्त सम्मेलन कराने के साथ ही लघुकथा पर केन्द्रित 'मिन्नी' पंजाबी त्रैमासिक के नियमित सम्पादन के भी 24 वर्ष पूरे कर चुके हैं । 'मिन्नी' के माध्यम से देश विदेश के महत्त्वपूर्ण लघुकथाकार पंजाबी के पाठकों तक पहुँचे । सुभाष नीरव ने हिन्दी - पंजाबी के रचनाकारों के बीच सेतु का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. सतीश दुबे के अवदान से सब परिचित हैं तो भगीरथ 'गुफ़ाओं से मैदान की ओर' के सम्पादन से 1972 में लघुकथा जगत् में आए और अब तक सक्रिय हैं। आशा करते हैं इस परिचर्चा से नए -पुराने सभी लघुकथाकार लाभान्वित होंगे ।

(परिचर्चा संयोजन : रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', सुकेश साहनी)

सुभाष नीरव

डॉ. श्याम सुंदर 'दीप्ति'

डॉ.सतीश दुबे

डॉ. सतीशराज पुष्करणा

भगीरथ

श्याम सुन्दर अग्रवाल

प्रश्न -लघुकथा के विकास में आज आप किसी प्रकार का अवरोध महसूस करते हैं या नहीं ? अगर अवरोध हैं तो क्या -क्या हैं और उनका निराकरण क्या हो सकता है ?

डॉ. सतीशराज पुष्करणा : निश्चित रूप से लघुकथा के विकास में अवरोध महसूस करता हूँ। सबसे बड़ा अवरोध तो यह है कि कुछ पुराने लेखक स्वयं को बदलते समय के अनुसार नहीं ढाल पा रहे है। कुछेक रचनाकार साथी प्रयोग भी कर रहे है तो वह इतने दुरुह हुए जा रहे हैं कि पाठकों एवं स्वयं प्राय: लेखकों के सिर के ऊपर से गुज़र जा रहे हैं । कई लेखक लघुकथा को आकार की दृष्टि से कहानी के निकट ही पहुँचा दे रहे हैं। हमारे कुछ मित्र अब तो यह भी कहने लगे हैं कि कहानी और लघुकथा में कोई विशेष अंतर नहीं ,किंचित मात्र है, नितांत नहीं।

अब ज़रूरत इस बात की है कि जो लघुकथाएँ छप रही है, उन पर बिना हिचक या बिना व्यक्तिगत संबंधों पर विचार किए सही बात कहने का साहस करना चाहिए। बदलते समय के साथ-साथ समयानुकूल विषयों को भी लघुकथा का विषय बनाना चाहिए। नई पीढ़ी को अपने लेखों एवं समीक्षा के माध्यम से लघुकथा के सत्य से अवगत कराते रहना चाहिए।

डॉ.सतीश दुबे : हिन्दी साहित्य के सम्पूर्ण परिदृश्य का अवलोकन किया जाए तो जाहिर होगा कि लघुकथा का विभिन्न स्तरों पर विकास द्रुत गति से हो रहा है । कला, चाहे वह कोई सी भी हो ,यदि उसे ''वस्तु'' समझ लिया जाता है तो वह साधना के बजाय बाज़ार की कमोडिटी में तब्दील हो जाती है । कुछ अंशों में लघुकथा सन्दर्भ में भी ऐसा ही अनुभव किया जा रहा है । पत्रिकाओं, समीक्षकों को सम्मान या पुरस्कार की खरीद फरोख्त के जरिए स्थापना या चर्चा के लिए हो रही भाग-दौड़ से इस विधा के लिए निष्काम-भाव से समर्पित रचनाकारों का चिंतित होना स्वाभाविक है । ज़रूरी है कि साहित्यिक मानदंडों के अनुरूप खोटे सिक्कों को चलन से बाहर करने के प्रयास एकजुट होकर किए जाए ? इस आशा और आदर्शवादी सोच के सामने यक-ब-यक विद्रूप- भरी मुद्रा में यह प्रश्न आकर खड़ा हो जाता है कि क्या आज की बढ़ती बाज़ारवादी तथा खाँचों में बाँटने वाली साहित्यिक-राजनीति के माहौल में यह सम्भव होगा ? इस विद्रूप हँसी को मेरा जवाब होगा, निश्चित रूप से हो सकेगा । वजह -आज लघुकथा की गगनचुम्बी इमारत जिस मज़बूती से खड़ी है ,उसकी नींव आस्था, निष्ठा और समर्पण में विश्वास रखने वाले रचनाकारों से जुड़ी है । अंतरराष्ट्रीय स्तर पहचान दिलाने वाली इंटरनेट पर बरसों से जारी लघुकथा डॉट काम पत्रिका समर्थ लघुकथाकार ब्लॉगर्स के ब्लॉग, पत्रिकाओं तथा संग्रहों-संकलनों में श्रेष्ठ लघुकथाओं के प्रकाशन-रूप में इसे आज भी देखा जा सकता है ।

डॉ. श्याम सुंदर 'दीप्ति' : चार-पाँच दशकों की विकास यात्रा के बाद, यह प्रश्न उठना, शायद इसलिए स्वाभाविक है कि अवरोध वास्तव में नज़र आ रहा है। इसका एक मुख्य कारण है - इतने लम्बे समय के बाद भी, लघुकथा की रचना प्रक्रिया को लेकर स्पष्टता नहीं आई है। अगर इसे बेहतर ढंग से कहें , तो इसके लिए गम्भीर कोशिशें भी नहीं हुई हैं। जिस किसी भी लेखक को अपने मुताबिक जो अच्छा लगा, वही उसका लिखने का पैमाना और परखने की कसौटी बन गए। कोई घटनाओं की

गिनती को, कोई विचारों के बिना रोक-टोक प्रवाह महत्त्व देता है तो कोई नए तज़ुर्बों के नाम पर अस्पष्टता प्रस्तुत करने में लगा है ।

लघुकथा में विषयों के माध्यम से व प्रस्तुति को लेकर विकास नज़र आता है, परन्तु पहचान तो रूप से बनती है। सिर्फ़ आकार के आधार पर विधा को नया नाम नहीं दिया जा सकता ; इसलिए लघुकथा, लघु कहानी व कहानी में अन्तर धुँधला जाता है। यह नाम रखने में कोई आपत्ति नहीं है, पर लेखक स्पष्ट हो कि वह क्या लिखने जा रहा है।

श्याम सुन्दर अग्रवाल : कोई विशेष अवरोध तो नज़र नहीं आता जो केवल लघुकथा के विकास में ही हो। नए लेखक नहीं आ रहे, अन्य विधाओं में भी नहीं आ रहे हैं । अवरोध कोई हो भी तो उसका निराकरण श्रेष्ठ लेखन से ही संभव है।

सुभाष नीरव : सबसे बड़ा अवरोध तो उस वातावरण का अभाव है जो आठवें दशक में था। न केवल बड़ी पत्रिकाएं लघुकथा को सम्मान से छाप रही थीं, लघुकथा विशेषांक निकाल रही थीं, बल्कि लघुकथा को समर्पित लघु पत्रिकाओं की भी भरमार थी। लघुकथा प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती थीं। लघुकथा पर गोष्ठियों-समाराहों में चर्चा हुआ करती थी। लेकिन आज वो वातावरण कहीं देखने को नहीं मिलता। आज लघुकथा लेखन को समर्पित पत्रिकाओं (प्रिंट मीडिया) की कमी एक अवरोध का ही काम करती है। नई तकनीक के तहत नेट पर भी लघुकथाओं का प्रकाशन तेज़ी से हुआ है, पर वहाँ भी सार्थक प्रयास बहुत कम ही अभी देखने को मिलते हैं। 'लघुकथा डॉट काम' जैसे प्रयासों को नेट पर बढ़ाने की आवश्यकता है। हिन्दी लघुकथा को लेकर जो एक संयुक्त माहौल बनना चाहिए था, वह नहीं बना। सब 'अपनी अपनी ढपली, अपना अपना राग' अलापते दीखते हैं और सार्थक बहस से बचना चाहते हैं। पंजाबी में इसके उलट हुआ है। एक ज़माना था जब पंजाबी में उंगलियों पर गिने जाने वाले लघुकथा लेखक होते थे और नाममात्र को लघुकथा संकलन। पर वहाँ लघुकथा को लेकर प्रारंभ से ही हम जो सक्रियता और सजगता देखते हैं, और जिसके चलते पंजाबी

> आज लघुकथा लेखन को समर्पित पत्रिकाओं की कमी एक अवरोध का ही काम करती है। नई तकनीक के तहत नेट पर भी लघुकथाओं का प्रकाशन तेज़ी से हुआ है, पर वहाँ भी सार्थक प्रयास कम ही अभी देखने को मिलते हैं ।
>
> **-सुभाष नीरव**

लघुकथा ने अपनी यात्रा में नये मुकाम जोड़े हैं, वह सक्रियता और सजगता हिन्दी में तो कहीं नहीं दीखती.. एक अवरोध और भी मैं महसूस करता हूँ कि हिंदी में कुछेक प्रमुख पुराने लेखक अपने समकालीन लेखकों पर ही नहीं अपितु नये लेखकों पर भी बात करना पसन्द नहीं करते,इससे लघुकथा का विकास मार्ग अवरुद्ध होता है ।

भगीरथ: लघुकथा के विकास में दो तरह के अवरोध प्रस्तुत हो सकते हैं-बाह्य और आंतरिक। बाह्य अवरोध करीब-करीब अनुपस्थित हैं। पहले जो लघुकथा का सक्रिय विरोध था,वह अब ठंडा पड़ चुका है लेकिन लघुकथा का स्वीकार अभी नहीं बढ़ा है। लेखक आलोचक अब भी लघुकथा के प्रति इनडिफरेंट हैं। लघुकथा पर चर्चा करने का कोई प्रश्न ही नहीं है। इस अर्थ में वे परोक्ष अवरोध प्रस्तुत करते हैं।

आंतरिक अवरोध इस विधा में सृजनरत लेखकों द्वारा प्रस्तुत होता है। लघुकथा का कंटेट और फार्म टाइप्ड हो गए हैं। उनमें कोई ताज़गी दिखाई नहीं पड़ती। कथ्य का दायरा सीमित हो गया है नए कंटेट और फार्म की तलाश से ही लघुकथा का विकास सम्भव है और यह कार्य लघुकथा लेखक को ही करना है।

●

प्रश्न - आपकी रचना -प्रक्रिया में घटना कितनी महत्त्वपूर्ण है ।

डॉ. सतीशराज पुष्करणा : यह तो लिखी जाने वाली लघुकथा पर निर्भर है। लघुकथा में घटना महत्त्वपूर्ण हो ही, यह अनिवार्य नहीं है। घटना प्रधान लघुकथा में स्वाभाविक रूप से घटना महत्त्वपूर्ण हो जाती है; किंतु जो लघुकथाएँ मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर अन्य किसी भाव-विचार पर केन्द्रित होगी, उनमें घटना निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं होगी, वहाँ सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण हो जाएगा। यूँ भी घटना एक माध्यम होता है कथ्य और अभिव्यक्ति का, अत: प्रत्येक दृष्टिकोण से प्रत्येक लघुकथा में कथ्य अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

डॉ.सतीश दुबे : मेरे लिए घटना, अन्तर्वस्तु का बीज-सूत्र मात्र होती है । घटना का यथातथ्य चित्रण, विवरण होता है, किसी भी विधा का रचनात्मक स्वरूप नहीं । इसलिए मैं, घटना को कथाबीज मानकर, तात्विक ढाँचे में तराशते हुए रचना-आकार देने की कोशिश करता हूँ ।

डॉ. श्याम सुंदर 'दीप्ति': किसी भी 'कथा साहित्य में, घटना को हम 'बैकस्टेन' में नहीं रख सकते। बात अगर स्पष्ट करें तो मसला यहाँ विचार और घटना के बीच तय करने का है। कई विचार को पहले पकड़ते हैं या विचारों को घटना के माध्यम से सम्प्रेषित करना चाहते हैं। कथा साहित्य में, विचार चाहे पहले हो या घटना चुनने के बाद में, घटना ही कथा बनेगी। सिर्फ़ विचार तो फिर आलेख, ललित निबंध ही बनेगा। विचारों के सही संप्रेषण के लिए, लेखक काल्पनिक घटनाएँ भी नहीं गढ़ सकता। सजीव लगने के लिए, उसके पात्र जन-जीवन के समीप में घूमते -फिरते नज़र आने चाहिए। जैसे घटना के बिना विचार, विधा ही नहीं बनेगी, उसी प्रकार विचारों के बिना घटना अर्थहीन रहेगी।

श्याम सुन्दर अग्रवाल : मेरे लिए घटना बहुत महत्त्वपूर्ण है। जो घटना मन-मस्तिष्क में बैठ जाती है, अंतत: वही रचना का आधार बनती है। ज़रूरी नहीं कि जो घटना घटी हो, वही रचना में ज्यों की त्यों व्यक्त हो, लेकिन आधार तो वही बनती है।

सुभाष नीरव : घटना, विचार, जीवन-क्षण, भाव, स्थिति मेरे लघुकथा लेखन में एक कच्चे माल की तरह आते हैं, इनका इतना ही महत्त्व है कि यदि ये सृजन के योग्य प्रतीत होते हैं तो ये मेरे

भीतर एक सृजन-प्रक्रिया को जन्म देते है। इस प्रक्रिया में चिंतन, लेखकीय दृष्टि और अनुभव काम करता है।इस प्रक्रिया के बग़ैर कोई भी घटना, भाव, विचार, स्थिति 'रचना' नहीं बन सकती।

भगीरथ : घटनाओं की सहज प्रतिक्रिया मानव मस्तिष्क में चलती रहती है,कुछ पर तीव्र प्रतिक्रिया होती है जो लेखक को हिलाकर रख देती है,जबकि अन्य घटनाओं पर उतनी तीव्र प्रतिक्रिया नहीं होती। इस तरह घटनाएँ रचना प्रक्रिया को प्रभावित करती है, जबकि वे लघुकथा में स्थूल रूप में प्रस्तुत हों। लघुकथा में घटना महत्त्वपूर्ण नहीं होती कथ्य महत्त्वपूर्ण होता है, भले ही कथ्य घटना से नि:सृत होता हो।

कई बार विचार प्रमुखता प्राप्त कर लेता है,तब लघुकथा का ताना-बाना विचार के इर्द-गिर्द बुना जाता है। घटनाएँ विचार को प्रभावित करती हैं, तो विचार भी घटनाओं को प्रभावित कर सकता है। इस तरह सामाजिक जीवन के आदर्श,व्यवहार और मूल्यों में परिवर्तन की भूमिका का निर्माण होता है। इस संदर्भ में महिला और दलित मुद्दों पर परिवर्तन की भूमिका को देखा जा सकता है।

●

प्रश्न -आज स्थापित रचनाकार समकालीन लेखकों की रचनाओं पर चर्चा करने से बचते हैं। इस प्रवृत्ति के बारे में आप क्या कहना चाहेंगे ?

डॉ. सतीशराज पुष्करणा : यह सत्य है कि आज स्थापित रचनाकार समकालीन लेखकों की रचनाओं पर चर्चा करने से बचते हैं क्योंकि वह स्वयं भी डरते हैं कि हमने समकालीनों की चर्चा कर दी तो कहीं ऐसा न हो हम स्वयं पिछड़ जाए और जिसकी चर्चा करें ,वह उनसे यश के मामले में आगे बढ़ जाए। दरअसल ऐसे लोगों को अपने लघुकथा-कर्म पर स्वयं विश्वास नहीं है और जिन्हें विश्वास है वे समकालीनों की चर्चा दोनों तरह से करते हैं। यदि रचनाएँ श्रेष्ठ लगी तो प्रशंसा भी करते हैं ,यदि सतही लगी तो कारण सहित उसे भी लिखते हैं। समकालीनों की चर्चा करते समय पूर्वग्रह एवं दुराग्रहों से बचते हुए अपनी बात ईमानदारी से कहनी/लिखनी चाहिए।

डॉ.सतीश दुबे : सामान्यत: मेरे सुनने-पढ़ने में तो ऐसा अनुभव नहीं हो रहा है । हाँ, स्थापित होने की मुहिम में संलग्न अनेक तेज़-तर्रार तथाकथित समकालीन, वरिष्ठ रचनाकारों को येन-केन प्रकारेण खुश कर चर्चा ही नहीं, पुरोधा या नए-शिल्प के पैरोकार जैसे खिताब प्राप्त कर रहे हैं । जाहिर है ,ऐसी प्रवृत्ति जहाँ और जिस रूप में भी जारी है, उससे गुणात्मक-लेखन में आस्था रखने वाले समकालीन-लेखक गुमनामी में खोते जा रहे हैं । इससे श्रेष्ठ रचनाओं और रचनाकारों की प्रवाह-परम्परा में अवरोध होना स्वाभाविक है ।

डॉ. श्याम सुंदर 'दीप्ति': रचनाकार हमेशा ही टिप्पणी से कतराता है, क्योंकि वह सृजन कर रहा होता है। उसके मन-मस्तिष्क में कहीं एक पैमाना (अपनी रचनाओं का) फिट रहता है। न तो चर्चा करने वाला लेखक उस पैमाने से बाहर आता है और न ही समकालीन लेखक चर्चा को सुनने के लिए (स्वीकारने के लिए तो कतई नहीं) तैयार रहता है। तभी तो आलोचक की भूमिका सामने आती है। इस परिदृश्य को देखें तो लघुकथा को समझने वाले गम्भीर आलोचकों की भी कमी है । जो है, उनकी निष्पक्ष भूमिका को लेकर अलग से प्रश्न हैं। अगर किसी मूल कारण पर उँगली रखें तो वह रचना-प्रक्रिया ही मुख्य कारण है। आलोचक को रचना पर टिप्पणी करनी है। अगर रचना-प्रक्रिया ही अवरोध बनी हो तो चर्चा/आलोचना कैसी!

श्याम सुन्दर अग्रवाल : हाँ, ऐसा देखने में आया है कि स्थापित रचनाकार अपने समकालीन लेखकों की रचनाओं पर बोलने से कतराते हैं। अगर बोलते भी हैं तो मन से नहीं बोलते, सच नहीं बोल पाते। ग़लत को ग़लत कहने का साहस नही जुटा पाते। शायद उन्हें साथी लेखकों के नाराज़ हो जाने का भय सताता है। मेरे विचार में ऐसा करना विधा के हित में नहीं है। पत्रिका 'मिन्नी' द्वारा आयोजित कार्यक्रम 'जुगनूआँ दे अंगसंग' में सभी लेखक रचनाओं पर खुलकर बोलते हैं, अपने से बड़े लेखकों की रचनाओं पर भी। वहाँ राय निष्पक्ष होती है, कभी कोई किसी से नाराज़ नहीं होता।

> प्रतिष्ठित और स्थापित रचनाकार समकालीन लेखकों की रचनाओं पर ही चर्चा करते हैं। समकालीन लेखक अच्छा लिखेंगे तो चर्चित होंगे ही । अपने-अपने दायरों में ही चर्चा कर खुशफहमी पाल ली जाती है।
>
> **-भगीरथ**

सुभाष नीरव : यह कटु सत्य है। इसका जिक्र मैंने ऊपर भी किया है। लघुकथा के विकास में यह एक घातक प्रवृति है जो कुछ वरिष्ठ और स्थापित लघुकथा लेखकों में घर कर गई है। 'मैं तेरी बात करूँ, तू मेरी कर' अथवा 'हम ही हम हैं' का भाव लिये कुछेक स्थापित लघुकथाकार अपनी और अपने ही खास मित्रों के लेखन की ढपली बजाते रहते हैं और अन्य समकालीन लेखकों की अच्छी व श्रेष्ठ लघुकथाओं पर मौन धारण कर लेते हैं, मानो उनका उल्लेख करने मात्र से इनका कद बौना हो जाएगा.. इस खतरनाक प्रवृति ने बहुत से अच्छे समकालीन लेखकों को गुमनामी के अँधेरे में ढकेलने की भरसक कोशिश की है..पर इसमें ये लोग हमेशा सफल नहीं हो सकते।

भगीरथ: प्रतिष्ठित और स्थापित रचनाकार समकालीन लेखकों की रचनाओं पर चर्चा करते हैं। समकालीन लेखक अच्छा लिखेंगे तो चर्चित होंगे ही। यह चर्चा 'खेमेबंदी' का शिकार भी होती है। अपने-अपने दायरों में चर्चा कर खुशफहमी पाल ली जाती है।

लघुकथा पर चर्चा का सिलसिला लघुकथा डॉट कॉम ने शुरू किया था; जिसमें आंमत्रित लेखकों से अपनी पसंद की दो रचनाओं पर टिप्पणी करने को कहा गया था। कमल चोपड़ा भी 'संरचना' के माध्यम से अच्छी रचनाओं का संकलन प्रस्तुत कर रहे हैं, ताकि उन्हें चर्चा में शामिल किया जा सके या उन्हें चर्चा के लिए चिह्नित जरूर कर लेते हैं। नेट पर 'चर्चा मंच' पर अच्छे ब्लाग पोस्ट की

चर्चा की जाती है। ऐसी ही व्यवस्था लघुकथा के लिए होनी चाहिए।

●

प्रश्न - कथाकार के रूप में आप जो कहना चाहते हैं, उसे लघुकथा विधा में सम्प्रेषित कर पाते हैं या नहीं ?

डॉ. सतीशराज पुष्करणा : कथाकार जो कहना चाहता है वह सब लघुकथा में ही नहीं कह सकता । हर विधा के साथ-साथ उसकी अपनी एक सीमा भी होती है, लघुकथा भी इस कथ्य का अपवाद नहीं है। लघुकथा एक लघु आकारीय विधा है ;अत: वह क्षिप्र होती है, स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा पूरी त्वरा के साथ तय करती है। यही कारण है इसका कथानक इकहरा होता है । इसमें तो कथाकार को त्वरा से आगे बढ़ना होता है ; अत: वह सांकेतिकता से अधिक काम लेता है। मैं सब कुछ लघुकथा विधा के माध्यम से नहीं कह पाता। अनेक विषय ऐसे मेरे सामने आए , जिनकी अभिव्यक्ति हेतु मुझे कभी उपन्यास, तो कभी कहानी या आत्मकथा को माध्यम बनाना पड़ा।

डॉ.सतीश दुबे : अपनी पचास-साठ वर्षीय समांतर लेखकीय-यात्रा के दौरान मैंने ऐसा अवरोध कभी महसूस नहीं किया । उपन्यास या कहानी की तरह ही लघुकथा की विषयवस्तु को उसके अनुरूप फलक पर रूपायित करते हुए मुझे हमेशा आत्मविश्वासी सम्प्रेष्य सुकून का एहसास होता है । अपनी रचना-प्रक्रिया का जिक्र करते हुए मैंने लिखा भी है कि -''ऐसे प्रसंग जो पर्दे खुलने के साथ एकदम बंद हो जाते हैं , जिनसे व्यक्ति के सम्पूर्ण चरित्र को किसी क्षण विशेष की घटना, भाव या विचार के माध्यम से जानने का मौका मिलता है ;तब मैं लघुकथा को अपनी लेखनी का आधार बनाने के लिए सच्चे साथी की तरह याद करता हूँ और विस्तृत फलक से सम्बन्धित विषय-वस्तु के लिए इसी आत्मीयता के साथ उपन्यास या कहानी को ...'' ।

डॉ. श्याम सुंदर 'दीप्ति': यह प्रश्न भी कहीं न कहीं, विधा की अस्पष्टता से जुड़ा है। काव्य रूपों की बात करें तो कविता, गज़ल, दोहे, क्षणिका, हाइकु आदि क्या कभी इस तरह के प्रश्न के रूबरू होते हैं? हर विधा की अपनी सीमा व सम्भावना है। आपके पास कैसा कथानक है, क्या विचार है, उसके लिए कौन सा साहित्यिक रूप उपयुक्त है, उसके बारे में सोचिए और रचना-प्रक्रिया पर विश्वास जताइए।

श्याम सुन्दर अग्रवाल: बहुत चिंतन-मनन के बाद ही मैं लघुकथा लिखता हूँ। जो लिखता हूँ ,उसे भी बहुत बार पढ़ता हूँ, संशोधन करता हूँ। मुझे तो सदैव यही लगा कि मैं अपनी बात कहने में सफल रहा हूँ। बाकी तो पाठक ही जानते हैं।

सुभाष नीरव : कोशिश करता हूँ और कभी-कभी सफल भी हो जाता हूँ। समय तेज़ी से बदला है, परिस्थितियाँ बदली है, भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद ने यथार्थ का चेहरा भी बदला है, वह पहले से अधिक जटिल हुआ है। इसके चलते लघुकथा में चुनौतियाँ भी बढ़ी हैं। कथाकार के रूप में इन चुनौतियों से मेरी रोज़ मुठभेड़ होती है। इस मुठभेड़ के दौरान मेरा चिंतन, मेरी दृष्टि और मेरा अनुभव औज़ार के रूप में काम करते हैं। जो मैं कहना चाहता हूँ, उसे लघुकथा में कहने के लिए एक लड़ाई तो लड़नी ही पड़ती है। और जहां लड़ाई होगी, वहां आप हर बार विजयी हों, ऐसा संभव नहीं होता।

भगीरथ: कथाकार के रूप में, मैं जो कहना चाहता हूँ,उसे बाकायदा लघुकथा में सम्प्रेषित करता हूँ। अगर मेरी बात पूरी तरह से लघुकथा में नहीं आ पाती तो मैं दूसरी विधाओं की ओर उन्मुख होता हूँ, जो मेरी बात ठीक से सम्प्रेषित कर सके। मुझे लगता है कि लघुकथा के माध्यम से लेखक अपनी बात कर सकता है। इस विधा में यह सामर्थ्य है। कुछ समर्थ लेखक रचना -कौशल से भी भर सकता है।

> लघुकथा की अन्तर्वस्तु संक्षिप्त फलक पर आकार लेने का आग्रह करती है इसलिए ज़रूरी है कि शब्दों की मितव्ययी मीनाकारी के साथ वस्तु में निहित तथ्य को भाषायी-कसावट के साथ सरल अंदाज में कथा-आस्वाद का एहसास कराते हुए तराशा जाए ।
>
> **-डॉ.सतीश दुबे**

●

प्रश्न -लघुकथा के लिए भाषा की प्रमुख विशेषताएँ क्या होनी चाहिए ?

डॉ. सतीशराज पुष्करणा : लघुकथा हेतु भाषा की सबसे प्रमुख विशेषता सांकेतिकता है। दूसरी-उसमें मुहावरों,लोकोक्तियों तथा पात्रों के चरित्रानुकूल तथा लघुकथा के कथानक के परिवेश के अनुसार देशज भाषा और क्षिप्रता का उपयोग महत्त्वपूर्ण होता है। इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि लघुकथा में विराम चिह्न एवं डॉट-डॉट (.) भी सार्थक भूमिका का निर्वाह करते है। बहुत सारी लघुकथाओं में वह बात भी पाठकों तक सम्प्रेषित हो ही जाती है, जो लघुकथाकार कहना चाहता है और जिसके लिए उसने शब्दों का प्रयोग नहीं किया है ।

डॉ.सतीश दुबे : किसी भी विधागत रचना की प्रभावी सम्प्रेणीयता का माध्यम भाषा होने के बावजूद इसके प्रकार-विशेष का कोई निर्धारित पैमाना नहीं होता । यह रचनाकार के शब्द-सामर्थ्य , वाक्य-विन्यास तथा लालित्य-कला के समवेत अभिव्यक्ति- कौशल पर निर्भर है कि वह ऐसा भाषायी-वितान रचे कि रचना पाठक से उसकी इच्छानुरूप संवाद कर सके । चूंकि लघुकथा की अन्तर्वस्तु संक्षिप्त फलक पर आकार लेने का आग्रह करती है ; इसलिए ज़रूरी है कि शब्दों की मितव्ययी मीनाकारी के साथ वस्तु में निहित तथ्य को भाषायी-कसावट के साथ सहज और सरल अंदाज में कथा-आस्वाद का एहसास कराते हुए तराशा जाए ।

डॉ. श्याम सुंदर 'दीप्ति': भाषा हमारे पास अपनी बात को अभिव्यक्त करने का एक शाब्दिक (सांकेतिक) माध्यम है। बोलकर भी, इशारों से भी बात समझाई जा सकती है। भाषा से बात, कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है ! शब्द लेखक के हाथ में औजार है। लेखक भाषा से, एक कलाकार की

तरह एक तस्वीर, एक आकृति बनाता है। वह अपनी कला से लोगों को आकर्षित करता है। इससे ही आप अनुमान लगाइए कि भाषा का कितना महत्त्व है। लिखने में भाषा के महत्त्व के साथ, लेखक को सक्षम होना है कि ऐसा कुछ लिखे, जो सही अर्थों में सम्प्रेषित हो। लेखक भाषा के जरिए, रचना के जरिए फैलता है। लेखक स्वयं किसी बात को समझाने या स्पष्ट करने के लिए मौजूद नहीं होता।

लघुकथा में इसका महत्त्व और अधिक है ; क्योंकि छोटे आकार में संगठित रचना में शब्दों का चुनाव बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है। कम शब्द अस्पष्टता भी पैदा कर सकते हैं और अधिक फैलाव रचना को नीरस भी करता है।

श्याम सुन्दर अग्रवाल : जहाँ तक सम्भव हो लघुकथा के लिए भाषा सरल ही होनी चाहिए। ऐसी भाषा जो उन सभी पाठकों को समझ आ जाए ;जिनके लिए लेखक रचना लिख रहा है। संवादों में पात्रानुकूल भाषा ही होनी चाहिए। भाषा में सांकेतिकता भी ज़रूरी है तथा सौन्दर्य भी। संक्षिप्तता एवं कथ्य को ध्यान में रखकर सभी उपकरण लेखक को स्वयं ही ढूँढ़ने होते हैं।

सुभाष नीरव : चूँकि लघुकथा में हमें कम शब्दों में अपनी बात प्रभावकारी ढंग से रखनी होती है, इसलिए इसमें भाषा की भूमिका बहुत अहम हो जाती है। लघुकथा के कथ्य के अनुरूप भाषा का चयन होना चाहिए जो सहज हो और कही गई बात को संप्रेषणीय बनाने की क्षमता रखती हो.. आवश्यकता के अनुसार मुहावरेदार भाषा और लोकबोली के शब्दों का प्रयोग लघुकथा के लिए मैं बेहद उपयुक्त मानता हूँ।

भगीरथ: भाषा विचार की वाहक है,लेकिन भाषा का अपना सौन्दर्य और लालित्य भी है। लघुकथा के सन्दर्भ में भाषा की एक विशेषता संश्लिष्टता हो सकती है जो कम शब्दों में अधिक समेटने की सामर्थ्य रखती हो। मुहावरे भी इसमें सहायक हो सकते है। लघुकथा में छोटे और चुटीले वाक्य बड़े कारगर साबित हो सकते है। व्यंग्य का समावेश भी भाषा की प्रहारात्मकता को बढ़ाता है। भाषा पात्र,समय और स्थान के अनुरूप होनी ही चाहिए तब ही कथा ज़्यादा यथार्थपरक व प्रभावशाली होगी। भाषा का चुनाव कथ्य के अनुरूप भी होता है, विरोध और विद्रोह की भाषा,करुण की भाषा से अलग होगी ही।

> कई लेखक बहुत समय बीत जाने पर भी विधा की बारीकियों को समझने की कोशिश नहीं कर रहे हैं । कारण और भी हैं। कुछ लेखकों का काफी समय आलोचनात्मक व संपादन कार्यों में खर्च हो रहा है, उन्हें लेखन के लिए समय नहीं मिल पाता।
>
> **-श्याम सुन्दर अग्रवाल**

●

प्रश्न- प्रमुख लघुकथाकारों की अच्छी लघुकथाएँ बहुत कम सामने आ रही हैं । उनका लेखन सीमित हो गया है । इसके क्या सम्भावित कारण हो सकते हैं ?

डॉ. सतीशराज पुष्करणा : यह एक शाश्वत प्रक्रिया है, जो कल था वह आज नहीं है जो आज हैं वह कल नहीं रहेगा। लघुकथाओं के साथ भी यही बात है। कुछ लेखक तो चुक गए हैं और इस संकोच से नहीं लिख रहे कि शायद वे अपनी गरिमा के अनुकूल अब लघुकथाएँ न दे पाएँ। अच्छी लघुकथाएँ कम सामने आ रही है, इसका स्पष्ट कारण अपने आपको आज से न जोड़ पाना और अपने समकालीनों एवं नई पीढ़ी की लघुकथाओं से ईमानदारी एवं गम्भीरता से न जुड़ पाना। इससे भी आगे जाकर विचार करें जो सम्भावित कारण हो सकता है , वह है प्रमुख लघुकथाकारों में आपसी ईर्ष्या -भाव तथा परोक्ष में एक दूसरे की निन्दा ; जो उन्हें कुंठित कर दे रही है।

डॉ.सतीश दुबे :हो सकता है कि वे तथाकथित प्रमुख दृष्टि सम्पन्नता के अभाव में अपनी परम्परागत बुढ़ियाई-सोच को ही बड़ी लकीर मानते हो । या उन्हें यह भ्रम हो सकता है कि वे तो मठ के महामंडलेश्वर हैं, उन्हें नये शास्त्र पढ़ने की क्या आवश्यकता है । लेखन सीमित होने की सबकी अपनी-अपनी निजी वजह हो सकती हैं । वैसे भी हमारे देश में लेखक, केवल लेखक तो है नहीं ।

डॉ. श्याम सुंदर 'दीप्ति': कम या सीमित से हमारा अभिप्राय क्या है? आप तुलना करें कि कहानीकार कितनी कहानियाँ लिखता है, साल भर में। लघुकथाएँ अगर वर्ष में चार भी ऐसी लिखी जाएँ जो याद रहें, पढ़ने वाला सुनाता फिरे और अनुवादक अनुवाद करने को ललचाए तो क्या कम है। पर अब दूसरा प्रश्न है कि चार भी नहीं लिखी जा रही हैं। कारण है- विधा से विश्वास उठना। विश्वास क्या लेकर चलता है लेखक कि न चर्चा हो रही है, न इससे स्थापित हो पाएगा, न पहचान है और न ही इनाम-सम्मान है। फिर एक निराशा और अन्ततः विधा के प्रति अविश्वास; जोकि रचना प्रक्रिया में झलकता है।

श्याम सुन्दर अग्रवाल : मेरे विचार में आरम्भ में लेखक के पास कहने को बहुत अधिक होता है। उसे विधा की बहुत अधिक समझ भी नहीं होती, तब वह बहुत अधिक मात्रा में लिखता है। ज्यों-ज्यों उसे समझ आती जाती है, लेखन कम होता जाता है। वैसे भी मैंने देखा है कि कई लेखक बहुत समय बीत जाने पर भी विधा की बारीकियों को समझने की कोशिश नहीं कर रहे हैं । कारण और भी हैं। कुछ लेखकों का काफी समय आलोचनात्मक व संपादन कार्यों में खर्च हो रहा है, उन्हें लेखन के लिए अधिक समय नहीं मिल पाता। पारिवारिक दायित्व का बढ़ना भी एक कारण है।

सुभाष नीरव : यह तो साफ़ है कि हिंदी में लघुकथा लेखन में वो पहले जैसा जोश और उत्साह अब नज़र नहीं आता जबकि पंजाबी में हम निरंतर एक वृद्धि देख रहे हैं। अधिकतर पुराने प्रमुख लघुकथाकार अब लुप्तप्रायः हैं। गिने-चुने लेखक हैं ,जो यदा-कदा लिख भर रहे हैं। वे अपने पुराने लिखे को ही अभी तक भुनाने में लगे हुए हैं। एक तो कारण यह है कि वे नये लेखकों को अधिक पढ़ते नहीं और दूसरा, बदले हुए समय के यथार्थ

से जूझने की ऊर्जा और शक्ति का उनमें ह्रास हुआ है। अपने आप को अपडेट रखने और नया लिखने के लिए अपने समय और समाज से जिस निरन्तर जुड़ाव की ज़रूरत होती है, उसका अभाव इन लेखकों के लेखन को सीमित किए हुए है।

भगीरथ: लेखक जब अपने अनुभव कथाओं में अभिव्यक्त कर देता है और नये अनुभव उसके पास नहीं होते तो वे अपने को दोहराता है। वरिष्ठ जन के साथ यही दिक्कत है, अपना श्रेष्ठ वे पहले दे चुके, अब तो नये अनुभव और विचार ही उनसे श्रेष्ठ लिखा सकते है। उनके पास रचनाकौशल की थाती तो है ही। वैसे भी किसी लेखक की अच्छी रचनाएँ जिससे उसकी पहचान बनती है,कम ही होती है।

●

प्रश्न- लघुकथा के लिए नए विषयों की तलाश क्यों ज़रूरी हो गई है ?

डॉ. सतीशराज पुष्करणा : लघुकथा के लिए नई विषयों की तलाश इसलिए ज़रूरी हो गई है, ताकि इस विधा में टटकापन लाया जा सके, इसे भी अन्य महत्त्वपूर्ण विधाओं के समक्ष रखा जा सके । लघुकथा के नये सम्भावित विषय हो सकते है-बाज़ारवाद, प्रदूषण, आतंकवाद, नित्यप्रति हो रहे घोटाले,प्रांतवाद को प्रोत्साहित करती जा रही घटनाएँ, इसके अतिरिक्त पात्रों के मनोजगत को विश्लेषित करते विषय लघुकथा को टटकापन प्रदान करने में सक्षम हो सकते है। इंटरनेट,रोबोट,मोबाइल इत्यादि आधुनिक विज्ञान-विकास के क्षेत्र में लाभ के साथ-साथ हो रही सामाजिक हानि पर प्रकाश डालने वाले विषय भी महत्त्वपूर्ण हो सकते है।

डॉ.सतीश दुबे : लेखन सहज, सतही नहीं अपने समय की सुरंग से तलाशे यानी गहराई से अनुभूत सूक्ष्म यथार्थ का चित्रण होता है । निरन्तर विकसित सोच समाज के प्रवाह की प्रक्रिया होती है । पाठक इसी बदलाव को विभिन्न एंगल्स से साहित्य के आईने में रू-ब-रू होना चाहता है । जाहिर है उसके लिए यह आईना लघुकथा भी है । इस मंशा को मूर्तरूप देने के लिए ही ज़रूरी है कि लघुकथा के परम्परागत विषयों की मानसिकता को नए सोच में तब्दील किया जाए।

डॉ. श्याम सुंदर 'दीप्ति': नए विषय तो निश्चय ही चाहिए ; पर इसलिए नहीं कि कोई इल्ज़ाम न गढ़ दे कि लघुकथा में नए विषय पकड़ने या उन्हें निभाने की क्षमता नहीं है। रचना तो विषय के महत्तव को लेकर करनी है। उदाहरण के लिए, क्या भ्रूण हत्या पर पिछले दो दशकों से काफ़ी लिखा गया है। क्या यह विषय अब पुराना हो गया है? समस्या तो वहीं की वहीं है। समस्याएँ नई भी आती हैं और पुरानी भी नए रूप में उजागर होती हैं। विषय को फ़ैशन के रूप में नहीं अपना सकते। विषय को जानने, समझने, अपने अन्दर ढालने और फिर कागज पर लाने की एक प्रक्रिया है। वास्तव में आज लेखक इस प्रक्रिया से गुज़रने के लिए तैयार नहीं है। प्रश्न है तो समाज को देखने के लिए एक अलग, वैचारिक दृष्टि चाहिए, जो कि लेखक को विकसित करनी होती है।

श्याम सुन्दर अग्रवाल : किसी भी विधा के विकास के लिए कुछ न कुछ नया होना ज़रूरी है। लघुकथा पर तो वैसे ही आरोप लगते रहे हैं कि इसमें कुछेक विषय ही समा सकते हैं ; इसलिए नए विषयों की तलाश बहुत ज़रूरी है।

सुभाष नीरव : लघुकथा ने अब तक की जो लम्बी यात्रा की तय है, उससे आगे यदि जाना है, तो लघुकथा में नए विषयों को लाना ही होगा। नए विषयों का अभाव नहीं है, उनकी अलग से तलाश करने की कोई ज़रूरत नहीं है, वे हमारे आसपास ही बिखरे पड़े हैं। जैसा कि मैंने ऊपर कहा कि समय तेज़ी से बदला है और वैश्विक स्तर पर आज का यथार्थ अधिक जटिल और क्रूर हुआ है। इसने मनुष्य के बाहर-भीतर जबरदस्त दबाव बनाए हैं । व्यक्ति को यदि समद्धि दी है तो कहीं अधिक लाचार और विवश भी बनाया है। इस बदले हुए समय-समाज में बदले हुए मनुष्य से जुड़े विषयों को भी लघुकथा में अभिव्यक्ति देने की ज़रूरत है। आप पुराने और रूटीन विषयों पर लघुकथा का विकास नहीं कर सकते।

> विषय को फ़ैशन के रूप में नहीं अपना सकते। विषय को जानने, समझने, अपने अन्दर ढालने और फिर कागज़ पर लाने की एक प्रक्रिया है। वास्तव में आज लेखक इस प्रक्रिया से गुजरने के लिए तैयार नहीं है।
>
> **-डॉ. श्याम सुंदर 'दीप्ति'**

भगीरथ: लघुकथा के लिए नये विषय उपलब्ध है लेकिन उनका संधान तो लेखक को ही करना होगा, नहीं तो लघुकथा में ठहराव आ जाएगा। पैटर्न लेखन से न तो लेखक का भला होता है न विधा का। अधिकतर लघुकथाएँ परिवार के दायरे में सीमित होती है और वे ही कथ्य बार-बार आते है। नारी विषयक कथाओं में भी यही बात देखी जा सकती है नई दिशाओं की खोज से ही लघुकथा का मार्च आगे बढ़ेगा वरना वह वहीं कदमताल करती रहेगी।

●

प्रश्न -कुछ लेखक लघुकथा में मिथक का प्रयोग तो करते हैं ; लेकिन उसका निर्वाह नहीं कर पाते । यह विवशता लघुकथा को किस प्रकार प्रभावित करती है ?

डॉ. सतीशराज पुष्करणा : अधिकतर लेखक लघुकथाओं में मिथकों का प्रयोग करते हैं परन्तु उसका निर्वाह नहीं कर पाते। यह विवशता लघुकथा के स्तर को घटाती है। वस्तुत: मिथकों का प्रयोग करने से पूर्व उपयोग किए जा रहे मिथक के विषय में सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। विशेष रूप से उसके चरित्र के विषय में । साथ ही उस मिथक को वर्तमान संदर्भों में सटीक ढंग से जोड़कर वांछित उद्देश्य तक पहुँचने पहुँचाने की कला भी आनी चाहिए।

डॉ.सतीश दुबे : लघुकथा में मिथक-शैली का प्रयोग या तो विसंगतियों/विद्रूपताओं पर व्यंग्यपरक धरातल पर किया जाता है या पौराणिक-आख्यानों-पात्रों के चरित्र की व्याख्या समय की स्थितियों का चित्रण करने के रूप में । यह रचनाकार के सोच या लेखकीय रचना-कौशल पर निर्भर है

कि कथावस्तु की तासीर के अनुरूप इसका प्रयोग किस रूप में करें । लोक जीवन –शैली तथा मूल्यों के पर्याय मिथक प्रयोग का निर्वाह रचनात्मक–स्तर पर प्रभावी नहीं होने पर लघुकथा बिखर कर आक्रामक–मुद्रा में रचनाकार की लेखकीय–क्षमता पर बड़ा सा प्रश्न–वाचक तथा विस्मयबोधक चिह्न लगा देती है ।

डॉ. श्याम सुंदर 'दीप्ति': मिथक के निर्वाह से पहले, प्रश्न यह उठता है कि हम उसे प्रयोग में ही क्यों लाना चाहते हैं? हम क्यों बाध्य हैं मिथक को लेकर रचना करने के लिए। लगता है कहीं न कहीं, लघुकथा (छोटे आकार की रचनाओं) के परिप्रेक्ष्य में पंचतंत्र व हितोपदेश की रचनाएँ मुख्य कारण हैं, जो ऐसा करने को प्रेरित करती हैं। परन्तु वह लघुकथा के दायरे से बाहर हैं। आज समाज और मानवीय पात्रों के जरिए ही साहित्य में बात होती है। हमारे पौराणिक या लौकिक पात्र इस दायरे में आ सकते हैं । मिथक की अगर ज़रूरत हो, तो उस रचनाकार को मिथक का पूरा ज्ञान एवं उसकी आन्तरिक अर्थ–व्यंजना की जानकारी होना ज़रूरी है, जो कि अक्सर नहीं होता। आधी–अधूरी जानकारी संप्रेषण में रुकावट बनती है।

श्याम सुन्दर अग्रवाल : लघुकथा ही नहीं किसी भी विधा में मिथक का निर्वाह करना कठिन होता है। मेरे विचार में केवल एक मशीन में बनी एक जैसी दो वस्तुओं की ही सही तुलना हो सकती है, अन्य चीजों की नहीं। लघुकथा छोटे आकार की रचना है, इसलिए इसमें मिथक का प्रयोग अधिक चुभता है। इससे लघुकथा पाठक पर प्रभाव नहीं छोड़ पाती। मेरे विचार में जहाँ तक संभव हो मिथक के प्रयोग से बचना ही चाहिए।

सुभाष नीरव : मैं लघुकथा में मिथकों के प्रयोग को वर्जित नहीं मानता। लेकिन बात वही है कि मिथक का प्रयोग करके जो बात आप कहना चाह रहे हैं, वह यदि सहज संप्रेषित नहीं है, तो इसका कोई लाभ नहीं। यह लेखक की अपनी रचना–कौशलता पर निर्भर है कि वह लघुकथा में मिथकों का प्रयोग कितनी सफलता और सार्थकता से कर पाता है। लेखकों को केवल मिथकों का

> लघुकथा का भविष्य उज्ज्वल है कारण वर्तमान में हिन्दी के लेखक विश्व में जहाँ– जहाँ भी हैं , वे लघुकथाएँ भी लिख रहे हैं। इसके अतिरिक्त लघुकथा डॉट कॉम जैसी इंटरनेट पत्रिकाएँ लघुकथा के स्तर को पहचान देने में सफल है।
>
> **–डॉ. सतीशराज पुष्करणा**

प्रयोग करने के लिए ही लघुकथा नहीं लिखनी चाहिए, बल्कि यह भी देखना चाहिए कि क्या यह प्रयोग लघुकथा का अहित तो नहीं कर रहा, उसे असंप्रेषणीय तो नहीं बना रहा।

भगीरथ: मिथक जनभाषा में रचे बसे होते है और उनका जीवन्त उपयोग कथा में जान फूँकने में समर्थ होता है; लेकिन उन्हीं मिथकों को लेकर लेखक अपनी रचना में निर्वहन न कर पाए तो रचना को लचर होने से नहीं बचाया जा सकता। मिथक का निर्वहन न कर पाना लेखक की 'विवशता नहीं अक्षमता है।

●

प्रश्न– लघुकथा के सन्दर्भ में 'हिन्दी लघुकथा' का क्या भविष्य है ?

डॉ. सतीशराज पुष्करणा : लघुकथा का भविष्य उज्ज्वल है कारण वर्तमान में हिन्दी के लेखक विश्व में जहाँ– जहाँ भी हैं , वे लघुकथाएँ भी लिख रहे हैं। इसके अतिरिक्त लघुकथा डॉट कॉम जैसी इंटरनेट पत्रिकाएँ लघुकथा के स्तर को पहचान देने में सफल है। संरचना जैसी पत्रिका वर्ष में एक ही बार प्रकाश में आती है किन्तु वह भी लघुकथा के भविष्य को बनाने में महत्त्वपूर्ण निर्वाह कर रही है। अन्य पत्र–पत्रिकाएँ भी लघुकथाएँ प्रकाशित कर रही हैं जिनसे लघुकथा का भविष्य उज्ज्वल दिखाई देता है।

इतना ही नहीं अनेक सम्पादित लघुकथा संग्रह तथा एकल लघुकथासंग्रहों के साथ–साथ लघुकथा आलोचना को पुष्ट करने वाली पुस्तकें भी प्रकाश में आ रही है। अनेक विश्वविद्यालयों से इस विधा के विभिन्न विषयों में अनेक–अनेक शोध हो रहे है।

डॉ.सतीश दुबे : हिन्दी कथा–विधा के अन्तर्गत वर्तमान में लघुकथा की स्थिति कहानी के समकक्ष या समांतर है। यही नहीं पठनीयता की दृष्टि से इसका सर्वे ग्राफ़ कहानी से ऊपर है ।

अन्य हिन्दीतर भाषाओं में लिखी जा रही लघुकथाएँ तथा तमाम बहस–मुबाहिसों के बावजूद लघुकथा जिस आशाजनक दौर से गुज़र रही है ; उसके मद्देनज़र निश्चित रूप से हिन्दी लघुकथा का भविष्य उज्ज्वल, आलोकमय तथा केन्द्रीय विधा का संकेत–सूचक है ।

डॉ. श्याम सुंदर 'दीप्ति': भविष्य की स्थिति के लिए, लघुकथा ही नहीं, अन्य सभी विधाओं का आधार मेहनत, विश्वास, स्पष्टता और निरंतरता में है।

श्याम सुन्दर अग्रवाल : लघुकथा साहित्य में हिन्दी लघुकथा सदा प्रभावशाली बनी रहेगी। हिन्दी तथा पंजाबी दो ही भारतीय भाषाओं में लघुकथा की पुस्तकें बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं। हाँ, हिन्दी लघुकथा के बेहतर भविष्य के लिए भेदभाव भुलाकर संयुक्त रूप से प्रयास करने की आवश्यकता है।

सुभाष नीरव : हिन्दी में 'लघुकथा' सबसे अधिक पढ़ी जाने वाली साहित्यिक विधा है, अपने समय के साथ चलने की शक्ति यदि लघुकथा अपने में बनाए रखेगी तो नि:संदेह इसका भविष्य कदापि अंधकारमय नहीं हो सकता।

भगीरथ: हिन्दी लघुकथा के भविष्य के संदर्भ में तो निश्चिंत हुआ जा सकता है; क्योंकि न तो इस विधा को रचनाकर्मियों की कमी है, न पाठकों की, न ही प्रकाशन के अवसरों की, बल्कि इनकी संख्या में लगातार इज़ाफा हो रहा है। फिर इस विधा का स्वीकार भी साहित्यिक क्षेत्र में बढ़ता जा रहा है। साहित्य का आखिरी क़िला अब इस विधा के लिए बंद है। छह दरवाजे तो खुल गए हैं केवल सातवाँ ही बंद है, जिसे सामर्थ्यवान रचनाकार खोल ही लेगें।

●

अध्ययन कक्ष में संजोकर रखने वाली किताब : निरुपमा कपूर

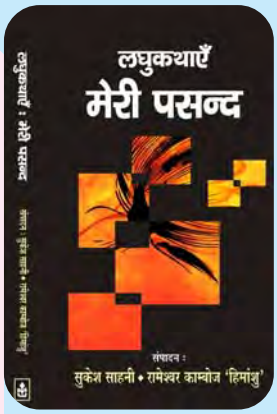

लघुकथाएँ -मेरी पसन्द
सम्पादक: सुकेश साहनी, रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'
प्रकाशक: अयन प्रकाशन, 1/20, महरौली, नई दिल्ली
मूल्य : 220 रुपये, **पृष्ठ:** 148, **संस्करण:** 2012

'मेरी पसन्द' पुस्तक में 25 लेखकों की पंसद की लघुकथाएँ संकलित की गई हैं । ये लघुकथाएँ समीक्षक और आलोचकों के साथ-साथ पाठक वर्ग की भी पंसदीदा लघुकथाएँ हैं। इसमें समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाली लघुकथाएँ तो हैं ही, साथ ही बालमन की अवधारणाओं को उजागर करती व हमारे आस-पास की रोज़मर्रा की समस्याओं को उद्घाटित करती हुई हमारी सोच पर व्यंग्य करती प्रतीत होती हैं ।

स्त्री मन की तड़प को प्रस्तुत करती बलराम की लघुकथा 'बहू का सवाल' कम्पुआइन भाभी स्त्री की बदलती सोच की परिचायक है। कभी मेरी कोख में नहीं, आपके बबुआ के शरीर में है..... यह जानने के बाद क्या आप मुझे दूसरी शादी करने की अनुमति दे सकते हैं? इस लघुकथा का कसा हुआ कथ्य व भाषा इसको सार्थकता प्रदान करती है। ये उस सामाजिक व्यवस्था के मुँह पर तमाचा है, जो बच्चा पैदा न होने पर दूसरे विवाह को ठीक ठहराया जाता है।

'एक पवित्र लड़की'(श्याम सुन्दर अग्रवाल) बलात्कार पीड़िता रंजना की उस सोच को व्यक्त करती है ,जिसमें ब्लात्कार पीड़िता को समाज के द्वारा यह अहसास कराया जाता है कि वह किसी के लायक नहीं रही, अपवित्र हो गई। गौतम ने उससे पूछा- क्या उस वहशी दरिन्दे ने तेरे शरीर के साथ तेरा मन भी लूट लिया ?बलात्कारी शरीर को ही अपवित्र कर सकता है, मन को नहीं। अमरीक सिंह दीप की लघुकथा 'उस स्त्री की अंतिम इच्छा' भारतीय स्त्री की उस विडम्बना को व्यक्त करती हैं ;जिसमें उसे एक ओर तो देवी रूप में पूजा जाता है दूसरी ओर दहेज के लिए या गर्भ में ही बोझ समझ कर खत्म कर दिया जाता हैं। इस लघुकथा में सरल शब्दों में स्त्री के गहरे दुख को अभिव्यक्ति दी गई है। सुकेश साहनी की कसौटी इंटरनेट के युग में खुलेआम स्त्री पुरुषों के सम्बन्धों की उस माँग की पड़ताल करती है ;जो इस आधुनिक युग में वर्जनाओं को समाप्त करने की घोषणा करने पर उतारू लगते हैं। सॉरी सुनन्दा यू हैव नॉट क्वालिफाइड। यू आज नाइंटी फाइव परसेंट प्युअर। वी रिक्वाअर एटलीस्ट फोर्टी परसेंट नॉटी यह कथा भारतीय संस्कारों के कमज़ोर पड़ने को दर्शाती है दूसरी भाषा के शब्दों के प्रयोग ने भी लघुकथा के तारतम्य को प्रभावित नहीं किया है। लघुकथा की कसी बुनावट व शिल्प के कारण हमारे मन को स्पर्श करती हुई इस संग्रह की श्रेष्ठ लघुकथाओं में से एक है। बलराम अग्रवाल की 'गोभोजन कथा' माधुरी जो कि संतान के लिए गर्भिणी गाय को थोड़ा सा अनाज देना चाहती है बशीर की विधवा की दयनीय हालत देख कर दान उसे दे देती है। हमारे हिन्दू समाज गाय की तुलना में इंसान का कद छोटा बताया गया है लेकिन माधुरी का यह कहना आटा लाई हूँ..... ज्यादा तो नहीं, फिर भी अपनी हैसियत भर.....तुम्हारे लिए जो भी बन पड़ेगा, हम करेगें बहन हिन्दू समाज के उन रीति रिवाजों पर एक करारा प्रहार है ,जहाँ इंसानों से ज्यादा जानवरों को प्राथमिकता दी गई है। इस लघुकथा का दृश्य बड़ा ही मार्मिक बन पड़ा है। भाषा व शिल्प अपने उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। बच्चों के कोरे काग़ज़ जैसे मन पर हमारे व्यवहार, बातचीत, आचरण छप जाता है। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए उनके कोमल मन पर कोई गलत संदेश न जाने पाए। बच्चों के कोमल मन पर हम बड़े ही भेदभाव के बीज बो देते हैं। सूर्यकांत नागर की लघुकथा 'विष-बीज' यही संदेश देती है कि बच्चों में साम्प्रदायिक भावना के बीज हम ही बोते हैं। संदीप ने फिर पूछा मुसलमान की दुकान का पानी पीने से क्या होता है पापा? लग रहा था, मुलायम ज़मीन पर बबूल और थूहर बो दिए जाने का पाप मुझसे हो गया है।माधव नागदा की लघुकथा 'एहसास' बच्चों के साफ मन को दर्शाती है जिसमें वह अपनी खुशी अपने दोस्तों को बाँट कर खुश होता है। बेचारे बहुत गरीब हैं। उनको सर्कस कौन दिखाता, यह सोच कर मैंने ही उनको सर्कस के टिकट ले दिए। राजू ने सुबकते हुए कहा। माधव नागदा की पंसद की जनकराज पारीक की 'हरयिल तोता' बच्चों की सरल मानसिकता दर्शाती है, कैसे बड़े अपनी गंदी चालों में उन्हें उलझा लेते है जिन्हें बच्चे समझ नहीं पाते। किशोर काबरा की पंसदीदा अभिमन्यु अनत की लघुकथा 'पाठ' बच्चे की उस मानसिकता को दर्शाती है कि बच्चे अपने दोस्त रंग या जाति देखकर नहीं बनाते! जब आठ वर्ष के हेनरी से उसके दोस्त के रंग के बारे में उसकी माँ पूछती है तो हेनरी का जवाब हम बड़ों को भी आईना दिखा देता है बात यह है माँ कि उसका रंग देखना तो मैं भूल ही गया। कमल चोपड़ा की पंसद की युगल की लघुकथा 'नांमातरण' बच्चे की निर्दोष मासूमियत को दर्शाती है बच्चे का अपनी निक्कर सरका कर अपनी छुछड़ी दिखाकर अपने धर्म का सबूत देने से जाहिर होती निर्दोष मासूमियत को देख कर स्त्री की मानवीयता जाग पड़ती है।

हरभजन खेमकरनी की पंसद की डॉ. कर्मजीत सिंह नडाला की लघुकथा 'भूकंप' बेरोजगारी की समस्या को ध्यान दिलाते हुए अपने आत्मसम्मान की रक्षा करने का संदेश देती है। सूर्यकांत नागर की पंसद की जगदीश अरमानी की लघुकथा 'कमानीदार चाकू' छोटी-छोटी बातों पर सम्प्रदायिक

दंगों के भड़कने से हम किस तरह से अंदर तक दहले रहते हैं, का बयान करते हैं। शरद जोशी की लघुकथा 'मैं भगीरथ हूँ' आज के भ्रष्टाचार के दौर को उजागर करती है। डॉ. कमल चोपड़ा की 'खू-खाता' लघुकथा माँ की ममता को दर्शाती है जो मरकर भी अपनी संतान के कष्टों को समाप्त करने में लगी रहती है। सुभाष नीरव की लघुकथा 'बीमार' हमारी छोटी-छोटी इच्छाओं को पूर्ण करने की हसरते दिखाती है। सुकेश साहनी की लघुकथा 'खेल' आज नई तकनीक के दौर में संवेदनाएँ किस प्रकार दम तोड़ रही है, का बखूबी चित्रण किया है। शरन मक्कड़ की लघुकथा 'रोबोट' भी आज के युग में आदमी के मशीन बनने की लघुकथा है। ये लघुकथा आदमी की इच्छाओं के पीछे भागने को दर्शाती है। रामेश्वर काम्बोज की लघुकथा 'धर्म निरपेक्ष' जानवरों व मनुष्यों के बीच धर्म के अंतर को समझाती है। लघुकथा का शिल्प बेजोड़ है। कम शब्दों में लघुकथा मन्तव्य स्पष्ट करती है।

जसवीर ढंड की लघुकथा 'छोटे-छोटे ईसा' बीमार माँ की इच्छा व बेटी के सपनों को व्यक्त करती। चित्रा मुदगल की लघुकथा बोहनी मर्मस्पर्शी है। जब भिखारी औरत से कहता "तुम देता तो सब देता, तुम नई देता तो कोई नई देता.....तुम्हारे हाथ से बोनी हो तो पेट भरने भर को मिल जाता" भिखारी का यह वक्तव्य हमारे भाग्य में विश्वास को उजागर करता हैं। सुकेश साहनी की 'नपुंसक' लघुकथा व्यवस्था पर करारा प्रहार है जिसमें ग़लत हो रहा है, जानकर भी हम या तो उसमें शामिल हो जाते है या उससे बचने का प्रयास करते है पर लड़ नहीं पाते है। इन सभी लघुकथाओं में किसी एक को श्रेष्ठ कहना अन्य के साथ नाइंसाफी होगी। सभी कथाओं की प्रस्तुति सहज शिल्प और शैली में मर्मस्पर्शी ढंग से हुई है। भाषा सरल और सुबोध है, अपने लक्ष्य को रेखांकित करती है। जटिल समस्याओं पर लिखी होने के बावजूद वस्तु ,शिल्प और भाषा में सहजता और सरलता है जिस से मानवीय संवेदनाएँ अच्छी तरह व्यक्त हुई है। सभी रचनाओं की भाषा कथ्य के अनुकूल , मँजी हुई और अपने अभिप्राय को स्पष्ट करने में समर्थ हैं। पात्रों की पीड़ा, विवशता, मनोभाव का सूक्ष्म रूप से विश्लेषण किया गया है। ये रचनाएँ अपनी सृजनात्मकता से बेहद प्रभावित करती है ; बल्कि मन में प्रश्न भी उठाती हैं ।

हिन्दी-लघुकथा -जगत में यह अब तक के किए गए प्रयासों में यह उत्कृष्ट है । कारण -इसमें देश के चुने हुए 25 लेखक पाठकों से रूबरू हुए हैं । इसमें इनका लघुकथा विषयक चिन्तन तो है ही; परन्तु इसके साथ ही इनकी पसन्द की लघुकथाएँ भी दी गई हैं, जो इनके वैचारिक चिन्तन को पुष्ट करती हैं ।

यह पुस्तक लघुकथाओं को पसंद करने वाले पाठकों के लिए अध्ययन कक्ष में सँजोकर रखने वाली किताबों में से एक होनी चाहिए।

SAI SEWA CANADA

(A Registered Canadian Charity)

Address: 2750, 14th Avenue, Suite 201, Markham, ON, L3R 0B6
Phone: (905) 944-0370 Fax: (905) 944-0372
Charity number: 81980 4857 RR0001

Helping to Uplift Economically and Socially Deprived Illiterate Masses of India

Thank you for your kind donation to SAI SEWA CANADA. Your generous contribution will help the needy and the oppressed to win the battle against lack of education and shelter, disease, ignorance and despair.

Your official receipt for Income Tax purposes is enclosed.

Thank you, once again, for supporting this noble cause and for your anticipated continuous support.

Sincerely yours,

Narinder Lal • 416-391-4545 Service to humanity

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

लघुकथा की सृजनात्मक- प्रक्रिया

सृजन और लेखन दो विपरीत ध्रुव हैं। प्रयास के बिना तो कुछ भी नहीं हो सकता । ख़्याली पुलाव किसी रचना का रूप धारण नहीं कर सकते । लेकिन सृजन वह अन्त:स्फूर्त कार्य है , जो समय -कुसमय नहीं देखता । बस मनोमस्तिष्क पर इस तरह छा जाता है कि रचनाकार लिखने को बाध्य हो जाए । न लिखे तो वह पाखी-सा फुर्र भी हो सकता है और बरसों बरस कभी हाथ आने वाला नहीं । सृजन की इस त्वरा के पीछे कोई क्षणिक हड़बड़ाहट नहीं ,वरन् अनुभव जन्य चिन्तन का वह आवेशित स्वरूप है जो किसी न किसी रूप में प्रकट होना चाहता है ,स्वरूप धारण करना चाहता है ।वह कोई आकस्मिक , बेतरतीब और आधारहीन चिन्तन नहीं है । न चुटकियों का खेल है । जीवन में बहुत तरह के अभाव होते हैं, उन अभावों का भी अपना कोई स्थायी भाव होता ही है । समृद्धि का भी अपना कोई न कोई दु:खद अभाव होता है । अभावों का भाव जहाँ हमें सुख-दु:ख में जोड़ता है, समृद्धि का अभाव वहीं गलाकाट प्रतियोगिता में सबको पछाड़ने की कसम खा लेता है । यह उसकी परेशानी बढ़ाने वाला कारक है ।

लघुकथा का सृजन भी लम्बे अर्से के जीवन-अनुभव के ताप में तपकर इसी प्रकार सामने आता है । लघुकथा-जगत् में कुछ नए लेखक और कुछ अन्य विधाओं में असफल होकर हाथ आज़माने के लिए उतरे नए-नए लेखक घटना या घटनाओं को ही लघुकथा समझकर धड़ाधड़ लिखने में लगे हैं । अगर घटनाओं को ही लघुकथा मानने लग जाएँ तो पुलिस का रोज़नामचा हफ़्तेभर में लघुकथा संग्रह में तब्दील हो जाएगा । प्रवचन देने वालों के दृष्टान्तों , किसी चुभते कथन या आन्दोलित करने वाले विचारों को लघुकथा मानने लगें तो साहित्य -जगत् में वैचारिक कोहरा और अधिक घना हो उठेगा । घटना एक आधारभूत तथ्य को खुद में छुपाए होती है, जैसे एक प्रस्तर खण्ड अपने में खूबसूरत मूर्त्ति समाहित किए हुए होता है । वही तथ्य जब कथ्य का आधार बनता है तो लघुकथा में परिवर्तित हो जाता है । यह सम्भव है कि उस लघुकथा में आधारभूत घटना का कोई एक छोटा-सा अंश परिमार्जित होकर हमारे सामने आ जाए । यह अंश उससे उद्भूत होने पर भी उससे एक दम अलग नज़र आ सकता है , जैसे प्रस्तर-खण्ड से बनी मूर्ति , उस बेडौल पत्थर की सूरत से कहीं मेल नहीं खाती । यह निर्मिति ज्यों की त्यों घटना न होकर एक अलग एक पुनर्गठित स्वरूप है ; जो मूल घटना या उत्प्रेरक घटना से कोसों दूर है । यह भी सम्भव है कि कई घटनाएँ ,कुछ संवाद परस्पर अनुरूप होते हुए पूरक रूप में जुड़कर किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित हो गए हों । एक मुख्य कथा-बिन्दु बन गए हों । यही बात विचार -सरणी को लेकर भी है । कोरा विचार लघुकथा नहीं । किसी बात को सार रूप में लिख देना भी लघुकथा नहीं । विचार तो वह धुरी है जिस पर वह कथा घूमती है। विचार किसी क्षण विशेष से उपजा वह स्रोत है जिसकी विरल धारा उन किनारों की कोई बात कहती हो , जिन्हें छूकर वह कुछ अपनापन महसूस करती रही है । इस प्रकार किसी लघुकथा की सृजन -प्रक्रिया (वह लघुकथा भले ही 10-12 पंक्तियों की हो) एक दिन का या एक पल का काम नहीं । वह स्रोत से रिसने वाली क्षीण धारा है , जो चट्टानों से उतरते -उतरते आगे चलकर वेगवती बनने को आतुर हो उठती है ।

अपनी लघुकथा 'ऊँचाई' की सृजन-प्रक्रिया से पहले इसकी पृष्ठभूमि बताना ज़रूरी है । मैं एक मध्यमवर्गीय परिवार से सम्बन्धित हूँ, जिसके पास न इफ़रात में कभी धन रहा और न ऐसी स्थिति आई कि किसी समय भूखा रहना पड़ा हो, जिसको निभाने का अहसास है । ज़िम्मेदारियाँ कभी उसका पीछा नहीं छोड़ती । घर का बड़ा बेटा होने के कारण मुझे कभी अपने बारे में सोचने का समय ही नहीं मिला । खुद को पीछे छोड़कर घर की चिन्ता की । घर के किसी सदस्य को कभी बोझ नहीं समझा । आज तक भी हम भाइयों का घर या खेती की ज़मीन का कोई बँटवारा नहीं हुआ । सन् 1988 की बात है- एक बार पिताजी ने कहा कि अब घर पैसा न भेजो । काम चल रहा है । जब ज़रूरत होगी बता दूँगा । यह इतनी -सी बात थी, कोई घटना नहीं है । एक बार पिताजी ने कहा था कि बच्चे कमज़ोर लग रहे हैं, इनका ध्यान रखा करो । बहू का भी ध्यान रखा करो । मेरी पत्नी ने घर में सहायता करने की आदत पर कभी टोका-टोकी नहीं की; बल्कि सबका हर तरह से ख्याल रखा । हाँ ऐसा ज़रूर हुआ कि बड़े बेटे ने घर की परिस्थिति देखकर नया जूता पहनने के प्रस्ताव को अगले महीने पर टाल दिया । मरम्मत करवाकर एक महीना निकाल दिया । पत्नी बीमार हुई तो वेतन का काफी हिस्सा खर्च हो गया । जिसने कभी ट्यूशन न की हो , वेतन ही उसका सब कुछ है । कुछ खर्चों में कटौती की गई । बाकी प्रसंग , संवाद, स्वत: जुड़ते चले गए । यह लघुकथा लिखते समय मेरे अक्खड़ और कड़क आवाज़ वाले पिताजी मेरे सामने थे । मुझे याद नहीं कि पिताजी ने मुझे कभी डाँटा हो या कोई कड़ी बात कही हो । मेरी या मेरे जैसे कई व्यक्तियों की आपबीती मिलकर ऊँचाई लघुकथा बन गई । 'ऊँचाई' के लघुकथा बनने में खीझने वाली पत्नी की अहम भूमिका है । लघुकथा को ऊँचाई देने के लिए यह तमतमाने वाला पात्र महत्त्वपूर्ण है । पिताजी भी आते नहीं , आ धमकते हैं । बाकी जितने भी सन्दर्भ हैं , वे एक ही पहिए के अरे (स्पोक्स) हैं ; जो एक ही धुरी पर टिके हैं । पिताजी को ऊँचा बनाने में सारी परिस्थितियाँ सहायक हैं । यहाँ मैं एक बात यह कहना चाहता हूँ कि किसी लघुकथा को परिपक्व होने में कई महीने भी लग सकते हैं, कई बरस भी । अगम्भीर लेखक लिखते ही लघुकथा को कहीं न कहीं भेजकर मुक्ति पाना चाहता है । उसमें अपनी ही रचना को दुबारा पढ़ने का धैर्य नहीं है , जबकि अपनी रचना से दुबारा गुज़रना सधे हुए लेखक के लिए ज़रूरी है । दुबारा अपनी रचना को तटस्थ दृष्टि से पढ़ना, अपेक्षित सुधार करना रचना को निखारने के लिए ज़रूरी है ।

17 नवम्बर 1988 को लिखी यह लघुकथा अक्तुबर 1989 में पूरी हुई और नवम्बर 89 में प्रकाशित हुई । कई ड्राफ़्ट बदलने पर इसका जो वर्तमान स्वरूप सामने आया, वह इसके मूल रूप

से एकदम अलग है । अन्तिम रूप यहाँ दिया जा रहा है ।

●

ऊँचाई

पिताजी के अचानक आ धमकने से पत्नी तमतमा उठी, ''लगता है बूढ़े को पैसों की ज़रूरत आ पड़ी है, वर्ना यहाँ कौन आने वाला था। अपने पेट का गड्ढा भरता नहीं, घर वालों का कुआँ कहाँ से भरोगे?''

मैं नज़रें बचाकर दूसरी ओर देखने लगा। पिताजी नल पर हाथ-मुँह धोकर सफ़र की थकान दूर कर रहे थे। इस बार मेरा हाथ कुछ ज़्यादा ही तंग हो गया। बड़े बेटे का जूता मुँह बा चुका है। वह स्कूल जाने के वक़्त रोज़ भुनभुनाता है। पत्नी के इलाज़ के लिए पूरी दवाइयाँ नहीं खरीदी जा सकीं। बाबू जी को भी अभी आना था।

घर में बोझिल चुप्पी पसरी हुई थी। खाना खा चुकने पर पिताजी ने मुझे पास बैठने का इशारा किया। मैं शंकित था कि कोई आर्थिक समस्या लेकर आए होंगे। पिताजी कुर्सी पर उकड़ू बैठ गए। एकदम बेफिक्र, ''सुनो'' -कहकर उन्होंने मेरा ध्यान अपनी ओर खींचा। मैं साँस रोककर उनके मुँह की ओर देखने लगा। रोम-रोम कान बनकर अगला वाक्य सुनने के लिए चौकन्ना था।

वे बोले, ''खेती के काम में घड़ी भर की फ़ुर्सत नहीं मिलती है। इस बखत काम का जोर है। रात की गाड़ी से ही वापस जाऊँगा। तीन महीने से तुम्हारी कोई चिट्ठी तक नहीं मिली। जब तुम परेशान होते हो, तभी ऐसा करते हो।''

उन्होंने जेब से सौ-सौ के दस नोट निकालकर मेरी तरफ़ बढ़ा दिए- ''रख लो। तुम्हारे काम आ जाएँगे। इस बार धान की फ़सल अच्छी हो गई है। घर में कोई दिक्कत नहीं है। तुम बहुत कमज़ोर लग रहे हो। ढंग से खाया-पिया करो। बहू का भी ध्यान रखो।''

मैं कुछ नहीं बोल पाया। शब्द जैसे मेरे हलक में फँसकर रह गए हों। मैं कुछ कहता इससे पूर्व ही पिताजी ने प्यार से डाँटा- ''ले लो। बहुत बड़े हो गए हो क्या?''

''नहीं तो'' - मैंने हाथ बढ़ाया। पिताजी ने नोट मेरी हथेली पर रख दिए। बरसों पहले पिताजी मुझे स्कूल भेजने के लिए इसी तरह हथेली पर इकन्नी टिका दिया करते थे, परन्तु तब मेरी नज़रें आज की तरह झुकी नहीं होती थीं।

●

इसी बात की पुष्टि सुकेश साहनी जी की लघुकथा 'स्कूल' भी करती है । मैं इस लघुकथा की सृजन-यात्रा का पूरी तरह साक्षी रहा हूँ , लेकिन मैं इस पर लघुकथा की सम्भावना नहीं तलाश पाया । वहीं एक छोटे और महत्त्वहीन से क्षण के कारण एक मुकम्मल लघुकथा तैयार हो गई । बच्चे के जीवन का एक छोटा-सा लम्हा जीवन का स्कूल बन गया । माँ की व्याकुलता और बेटे की बेफ़िक्री दोनों जीवन की बहुत गम्भीर व्याख्या करते हैं ।

मैं और सुकेश साहनी दिल्ली से बरेली लौट रहे थे । मुरादाबाद-बरेली के रेल-ट्रेक में कोई खराबी आ गई । मुरादाबाद में की गई घोषणा हमारी साहित्यिक चर्चा में खो गई । ट्रेन चंदौसी स्टेशन पर पहुँची तो हम दोनों भौंचक्के । बस से सफ़र करना मेरे लिए किसी आफ़त से कम नहीं , अत: हमें चंदौसी स्टेशन पर कई घंटे व्यतीत करने पड़े थे। वहाँ प्रतीक्षालय में कॉलेज के लड़के जमा थे। वे खूब हो हल्ला मचाए हुए थे । सिगरेट का धुँआ उस छोटे से कमरे में भर गया । ऊपर से जुआ खेलना, बेहूदे चुटकलों का न खत्म होने वाला सिलसिला । इन सबसे बेखबर वहीं पर एक लड़का अपना स्कूल का काम पूरा कर रहा था । पूछने पर उसने बताया कि वह गाँव से रोज़ यहाँ पढ़ने आता है। शाम को सवारी गाड़ी से वापस जाता है । घर में केवल माँ है। पिता जी दूसरे शहर में कहीं नौकरी करते हैं ।

उन अराजक युवकों के बीच घिरा वह किशोर अपने काम में मग्न था । उसी प्रसंग पर सुकेश साहनी ने 'स्कूल' लघुकथा लिखी। मैं भी इस घटना का साक्षी रहा; लेकिन लघुकथा लिखने की बात मेरे मन में नहीं आई । मेरे लिए यह रोज़मर्रा की साधारण -सी बात थी । लेखक के लिए यह विशिष्ट बन गई ; लेकिन उस रूप में नहीं , जिस रूप में हम इसके द्रष्टा थे । लघुकथा बनते ही इसमें बहुत कुछ बदल गया ।

स्कूल

''तुम्हें बताया न, गाड़ी लेट है,'' स्टेशन मास्टर ने झुँझलाते हुए कहा-''छह घंटे से पहले तो आ नहीं जाएगी, अब जाओ....कल से नाक में दम कर रखा है तुमने!''

''बाबूजी, गुस्सा न हों,'' वह ग्रामीण औरत हाथ जोड़कर बोली-''मैं बहुत परेशान हूँ, मेरे बेटे को घर से गए हुए तीन दिन हो गए हैं....उसे कल ही आ जाना था! पहली दफा घर से अकेला निकला है....''

''पर तुमने बच्चे को अकेला भेजा ही क्यों?'' औरत की गिड़गिड़ाहट से पसीजते हुए उसने पूछ लिया।

''मति मारी गई थी मेरी,'' वह रूआँसी हो गई-''बच्चे के पिता नहीं हैं, मैं दरियाँ बुनकर घर का खर्चा चलाती हूँ। पिछले कुछ दिनों से ज़िद कर रहा था कि वह भी कुछ काम करेगा। टोकरी-भर चने लेकर घर से निकला है....''

''घबराओ मत....आ जाएगा!'' उसने तसल्ली दी।

''बाबूजी.....वह बहुत भोला है, उसे रात में अकेले नींद भी नहीं आती है....मेरे पास ही सोता है। हे भगवान!....दो रातें उसने कैसे काटी होगी? इतनी ठंड में उसके पास ऊनी कपड़े भी तो नहीं हैं....'' वह सिसकने लगी।

स्टेशन मास्टर अपने काम में लग गया था। वह बेचैनी से प्लेटफार्म पर टहलने लगी। उस गाँव के छोटे से स्टेशन पर चारों ओर अंधकार छाया हुआ था। उसने मन ही मन तय कर लिया था कि भविष्य में वह अपने बेटे को कभी भी अपने से दूर नहीं होने देगी।

आखिर पैसेंजर ट्रेन शोर मचाती हुई उस सुनसान स्टेशन पर आ खड़ी हुई। वह साँस रोके,आँखें फाड़े डिब्बों की ओर ताक रही थी।

एक आकृति दौड़ती हुई उसके नज़दीक आई। नज़दीक से उसने देखा-तनी हुई गर्दन....बड़ी-बड़ी आत्मविश्वास भरी आँखें....कसे हुए जबड़े....होंठों पर बारीक मुस्कान....

''माँ, तुम्हें इतनी रात गए यहाँ नहीं आना था।'' अपने बेटे की गंभीर, चिंताभरी आवाज़ उसके कानों में पड़ी।

वह हैरान रह गई। उसे अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था-इन तीन दिनों में उसका बेटा इतना बड़ा कैसे हो गया?

●

जिस साहित्यकार के पास व्यंग्य दृष्टि नहीं है, वह सही अर्थों में साहित्यकार नहीं है : डॉ. नामवर सिंह

अगस्त का महीना हिन्दी व्यंग्य के लिए अतिरिक्त लाभ का रहा है। अब तक, अधिकांशत: हिन्दी व्यंग्य लेखन के दायरे तक ही सिमटा हुआ था और उसपर बातचीत का माहौल बहुत कम था। इस कारण, व्यंग्य के गांभीर्य स्थापित करने एवं आलोचना में उसकी उपस्थिति को रेखांकित करने के लिए कुछ रचनाकार निरंतर प्रयत्नशील थे। यह सम्मिलित प्रयास का ही परिणाम था कि हिन्दी व्यंग्य पर न केवल व्यवस्थित बातचीत आरंभ हुई अपितु उसकी स्वीकार्यता भी बढ़ी। 11 अगस्त को हिन्दी अकादमी, दिल्ली ने व्याख्यनमाला श्रृंखला के अतर्गत पहला व्याख्या नही 'व्यंग्य रचनात्मक सीमा का प्रश्न' पर डॉ. नामवर सिंह और राजेंद्र धोड़पकर का व्याख्यान रखा जिसका संचालन प्रेम जनमेजय ने किया। इसमें हिन्दी आलोचना के आधार नामवर सिंह ने 45 मिनट व्यंग्य की व्यापकता, आवश्यक्ता, इतिहास आदि पर विस्तार से अपने विचार रखे। उन्होंने कहा कि जिस साहित्यकार के पास व्यंग्य दृष्टि नहीं है, वह सही अर्थों में साहित्यकार नहीं है। 18-19 अगस्त को हिँदी भवन भोपाल ने विष्णु प्रभाकर, भवानी प्रसाद मिश्र, भवानी प्रसाद तिवारी, गोपाल सिंह नेपाली के शताब्दी वर्ष के संदर्भ में, उनपर केंद्रित सत्र आयोजित किए, वहीं 19 अगस्त को पाँचवा सत्र, प्रेम जनमेजय की अध्यक्षता में हिन्दी व्यंग्य का वर्तमान और संभावनाएँ, विषय पर रखा। इस सत्र में नरेंद्र कोहली, सूर्यबाला, ज्ञान चतुर्वेदी, मूलाराम जोशी, श्रीकांत आप्टे, शांतिलाल जैन ने अपने विचार व्यक्त किए। हिन्दी व्यंग्य के लिए 24 एवं 25 अगस्त का दिन ऐतिहासिक है। साहित्य अकादमी, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान एवं व्यंग्य यात्रा के सौजन्य से 'हिन्दी व्यंग्य लेखन: कार्यशाला एवं व्यंग्य पाठ' का आयोजन किया। इसका उद्घाटन सत्र ऐतिहासिक रहा। उद्घाटन सत्र के अध्यक्ष विश्वनाथ त्रिपाठी थे, उद्घाटन भाषण डॉ. नित्यानंद तिवारी का था एवं बीज वक्तव्य प्रेम जनमेजय का था। डॉ. नित्यानंद तिवारी ने स्पष्ट घोषणा की कि हिन्दी व्यंग्य ने निश्चित ही विधा का स्वरूप धारण कर लिया है और इसका आलोचना शास्त्र विकसित हो रहा है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने व्यंग्य की व्यापकता और विधा के रूप में उसकी स्वीकार्यता की चर्चा की । दो दिवसीय इस आयोजन में, पहली बार हिन्दी व्यंग्य की कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें 20 प्रतिभागियों और शंकर पुणतांबेकर, नरेंद्र कोहली, शेरजंग गर्ग, गौतम सान्याल, सुभाष चंदर, ने परामर्शमंडल की भूमिका निभाई। संचालन लालित्य ललित ने किया । इसके अतिरिक्त व्यंग्य पाठ सत्र में गोपाल चतुर्वेदी, सूर्यबाला, यज्ञ शर्मा, दिविक रमेश, गिरीश पंकज, अनूप श्रीवास्तव, अतुल चतुर्वेदी,लालित्य ललित आदि की रचनाओं ने व्यंग्य के रचनात्मक पक्ष को प्रस्तुत किया।

निश्चय ही व्यंग्य की स्वीकार्यता बढ़ रही है। व्यंग्य अपने सीमित दड़बे से बाहर निकलकर एक व्यापक रूप ग्रहण कर रहा है। उपेक्षित दृष्टियाँ अब उसकी ओर स्नेह से देख रही हैं। यह एक बहुत बड़ा बदलाव है जिसे निरंतर रखने में हम सब की एकजुटता आवश्यक है।

अविनाश वाचस्पति को 'प्रगतिशील ब्लॉग लेखक संघ चिट्ठाकारिता शिखर सम्मान'

लखनऊ में बीते सप्ताह चर्चित व्यंग्यकार, स्तंभ लेखक, न्यू मीडिया विशेषज्ञ और मशहूर हिन्दी ब्लॉगर अविनाश वाचस्पति की व्यंग्य कृति 'व्यंग्य का शून्यकाल' का सजिल्द संस्करण ब्लॉगार्पित किया गया। ब्लॉगार्पित इस मायने में कहा जा रहा है क्योंकि पुस्तक अर्पण का यह समारोह अंतरराष्ट्रीय हिन्दी ब्लॉगर सम्मेलन सूचना का उल्लेखनीय हिस्सा रहा। इस अवसर पर अविनाश वाचस्पति को उनकी पिछले वर्ष प्रकाशित न्यू मीडिया पर हिन्दी की पहली प्रामाणिक पुस्तक 'हिन्दी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नई क्रांति' के लिए 'प्रगतिशील ब्लॉग लेखक संघ चिट्ठाकारिता शिखर सम्मान' से भी नवाजा गया। हिन्दी ब्लॉगरों के भव्य अंतरराष्ट्रीय आयोजन में पुस्तक का लोकार्पण वरिष्ठ साहित्यकार उद्भ्रांत, कथाक्रम के संपादक शैलेन्द्र सागर, डॉ. सुभाष राय, डॉ. अरविन्द मिश्रा, व्यंग्यकार गिरीश पंकज, रवीन्द्र प्रभात, सुश्री शिखा वार्ष्णेय, डॉ. हरीश अरोड़ा के सुखद सान्निध्य में संपन्न हुआ।

'स्पंदन' के आयोजन में पंकज सुबीर के नये कहानी संग्रह 'महुआ घटवारिन' का लोकार्पण

भोपाल । ललित कलाओं के लिये समर्पित संस्था 'स्पंदन' द्वारा हिन्दी भवन के महादेवी वर्मा कक्ष में चर्चित युवा कथाकार पंकज सुबीर के ज्ञानपीठ नवलेखन पुरस्कार प्राप्त उपन्यास 'ये वो सहर तो नहीं' पर विचार संगोष्ठी का आयोजन किया गया । इस अवसर पर पंकज सुबीर के नये कहानी संग्रह 'महुआ घटवारिन' का लोकार्पण भी किया गया । कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ साहित्यकार श्री संतोष चौबे ने की । उपन्यास पर कहानीकार श्री मुकेश वर्मा तथा कथाकारा डॉ. स्वाति तिवारी ने वक्तव्य दिये ।

कार्यक्रम का संचालन करते हुए संस्था की संयोजक तथा वरिष्ठ कहानीकार डॉ. उर्मिला शिरीष ने उपन्यास के बारे में उपस्थित श्रोताओं को जानकारी दी । उन्होंने पंकज सुबीर के साहित्य के बारे में विस्तार से चर्चा की । तत्पश्चात अतिथियों ने सामयिक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पंकज सुबीर के नये कहानी संग्रह 'महुआ घटवारिन' का लोकार्पण किया । इस कहानी संग्रह में लेखक की 10 विविध रंगी कहानियों का समावेश किया गया है । उपन्यास पर अपने वक्तव्य में श्री मुकेश वर्मा ने कहा कि पंकज सुबीर ने अपनी विशिष्ट शैली के चलते अपना अलग स्थान बना लिया है तथा यह उपन्यास उसका एक उदाहरण है । कहानीकार डॉ. स्वाति तिवारी ने कहा कि उपन्यास का इतिहास खंड पढ़ने पर ज्ञात होता है कि लेखक ने इतिहास को लेकर काफी शोध किया है । चर्चा को आगे बढ़ाते हुए वरिष्ठ पत्रकार श्री ब्रजेश राजपूत ने उपन्यास की भाषा तथा शिल्प पर विशेष रूप से बात की । अध्यक्षीय वक्तव्य देते हुए श्री संतोष चौबे ने कहा कि पंकज सुबीर का यह पहला ही उपन्यास है किन्तु इसको पढ़ते समय इस बात का कतई एहसास नहीं होता है कि ये लेखक का पहला उपन्यास है । जिस कौशल के साथ लेखक ने दो कथाओं के बीच संतुलन साधा है वह बहुत प्रभावशाली है । लेखक ने उपन्यास में व्यंग्य की भाषा के साथ साथ कुशलता से कहावतों तथा मुहावरों का उपयोग किया है। अंत में आभार स्पंदन के अध्यक्ष डॉ. शिरीष शर्मा ने व्यक्त किया ।

DON'T PAY THAT TICKET!

ROSS
LEGAL SERVICES

Al (Doodie) Ross
(416) 877-7382 cell

Former Toronto Police Officer,
28 Years Experience

Arvin Ross
(416) 560-9366 cell

We Can Help with all Legal Matters: सच्ची सेवा करते हैं । ईश्वर से हम डरते हैं ।।

Traffic Offences
Summary Criminal Charges
Impaired Driving / Over 80
Accidents
Commissioner for Taking Affidavits
Criminal Pardon and / or a United States Border Waiver

95%
Success Rate!

16 FIELDWOOD DR.
TORONTO ONTARIO, M1V 3G4
OFFICE: (416) 412-0306
FAX: (416) 412-2113

Ross@RossParalegal.com www.RossParalegal.com ROSS

बहता पानी : जीवन के बीच साँस लेती कहानियाँ

विजया सती
(विज़िटिंग प्रोफ़ेसर बुदापैश्त)

बहता पानी : अनिल प्रभा कुमार
भावना प्रकाशन २०१२ : मूल्य : तीन सौ रुपये

भारत से बाहर रहते हुए एक बदली हुई पृष्ठभूमि में भारतीय जीवनदृष्टि, मनोभाव, अनुभव, घटना-प्रसंगों और चरित्रों से जुड़ी कहानियाँ लिखने वाले कथाकारों में अनिलप्रभा कुमार भी शामिल हैं। पिछले कुछ वर्षों में उनकी कहानियाँ भारत की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित और प्रशंसित हुई हैं। रचनात्मक जीवन के आरम्भ में कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त कथाकार अनिलप्रभा कुमार का सद्य प्रकाशित कहानी संग्रह है - 'बहता पानी' जिसमें कुल १४ कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ जीवन की साधारण-सी हलचलों के बीच साँस लेने वाली साधारण-सी ज़िंदगी की बेचारगी, लाचारगी, तन्हाई, उदासी, इंतज़ार और संघर्ष से जुड़ी वे कहानियां हैं जिनमें हर व्यक्ति अपने जीवन का अर्थ ढूँढने की कोशिश कर रहा है। इन कहानियों में एक पीढ़ी के अपने स्रोत या मूल की ओर लौटने या कम से कम उससे जुड़े रहने की कोशिश का अंकन बहुत सहजता के साथ हुआ है।

कृति के पाठ से पहले आरम्भ में इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को रेखांकित करना अप्रासंगिक न होगा कि यह पुस्तक जितनी संकलित कहानियों के लिए, उतनी ही विशिष्ट कथाकार नरेंद्र कोहली द्वारा लिखी गई उस भूमिका के लिए भी पढ़ी जानी चाहिए, जिसमें प्रवासी साहित्य की अवधारणा और चर्चा से जुड़े कई महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर महत्त्वपूर्ण ढंग से लिखा गया है जो इस विषय पर चलने वाली तमाम बहसों को एक सूझ या दिशा दे सकती है।

कहना उचित होगा कि अनिलप्रभा कुमार की इन कहानियों में जीवन की तमाम हलचलों के बीच ठोकर खाती-राह बनाती स्त्री की छवि प्रमुखता के साथ अंकित है। अपनी इच्छाओं-मान्यताओं और आस्था-विश्वास को लिए-दिए अधिकांश उतार-चढ़ाव जिसके हिस्से में आ रहे हैं, संकलन की इन कहानियों में उसके केन्द्र में लड़की या स्त्री ही है। चाहे वह 'उसका इंतज़ार' कहानी में 'इंद्र धुष के पीछे भागती' विधु हो जो अपनी ज़िंदगी के साथ जुआ नहीं खेलना चाहती या 'हवा में उड़ते तिनकों को इकट्ठे करने की कोशिश कर रही' उसकी माँ धरणी हो जो बोझिल साँसें लेकर जीती है, चाहे 'गोद-भराई' की कातर-कमज़ोर सूर्या हो जो अजन्मे बच्चे को गंवाने के बाद इतना खाली मासूस करती है जैसे सारी दुनिया उजाड़ हो गई हो और अब वह मन के अँधेरे पर पीली धूप तिर आने के विषय में सोचती है। 'दीपावली की शाम' कहानी में अन्य पात्रों के अतिरिक्त प्रमुखता से अंकित पात्र मनी है जो अपने जीवन के असीमित खालीपन को खरीदी गई चीज़ों से भरती है और दीपावली की शाम मन में उम्मीद की कँपकँपाहट लिए अँधेरे में सिमटती है। 'बरसों बाद' कहानी के केन्द्र में भी एक-दूसरे की चोटों को सहलाती दो सहेलियां हैं, 'बहता पानी' में बिछड़े सुखों की तलाश में लौटती, अपने देश की सुबह को जीती 'वह' है जो दो संस्कृतियों के चक्कर में गुम हो चुकी है, 'बेटे हैं न' कहानी के केन्द्र में विमूढ़ और खिसियानी-सी माँ सत्या है जो बड़े होते बच्चों के लिए उपयोगी होना चाहती है, जो दिल की बात कहने को तरसती है, बेटे बहू के घर में अदृश्य रहने की कोशिश करती हुई भी अपराधिन सी रहती है, 'मैं रमा नहीं' कहानी में तीनों स्त्री पात्र प्रमुख हैं, 'ये औरतें वे औरतें' में तीबा और उसकी मैडम है, 'रीती हुई' कहानी में अपने को बाँटते-बाँटते रीत गई मानसी है, जीवन वन में अकेली खड़ी 'वानप्रस्थ' की देवकी है या अंतिम कहानी 'सफ़ेद चादर' की 'वह'। ये वे स्त्रियाँ जिनके माध्यम से कहानीकार की सामयिक दृष्टि रूपायित हुई है, जहाँ एक ओर उम्र के साथ माँ-बेटी के संबंधों से ऊपर उठा ऐसा रिश्ता कायम होता दिखाई देता है, जिसमें बस औरत होने का साझापन है। दूसरी ओर इन कहानियों की सिद्धि यह है कि लेखिका स्त्री मन की व्यथा की उस को गहराई को बूझ पाती है जो किसी स्त्री को दूसरे के दु:ख की अनुभूति करने में सक्षम बनाती है। 'दुनिया में कितने बच्चे हैं जिन्हें माँ बाप चाहिए और मुझे बच्चा'- सूर्या की यह सहज समझदारी अजन्मे बच्चे का शोक करते पति- स्कॉट को अभिभूत कर देती है और कहानी का प्रतीकात्मक अंत आधुनिक स्त्री के मन की उस उज्ज्वलता को रेखांकित कर जाता है जहाँ सूर्या अपनी प्राप्ति के क्षण में दूसरे के अभाव की गहरी पीड़ा का अनुभव कर पाती है। इन कहानियों में जीने की छटपटाहट लिए वह स्त्री है जो केवल स्वार्थी नहीं, माँ और पत्नी से पहले एक औरत भी है और अपनी भीतरी औरत को बचाने की कोशिश कर रही है।

उसका इंतज़ार कहानी के अंत में विधु की निरीहता उद्वेलित अवश्य कर जाती है, किन्तु वहीं स्त्री के हक में कथाकार का यह कथन भी अपनी सार्थकता निरुपित करता है - 'विधु के मन में कुछ हिलोर नहीं उठी और वह मन के विरुद्ध नहीं जाएगी।' यह आज की लड़की है, तो उधर परम्परागत पारिवारिक दबाव में पड़ी माँ भी है। इनके माध्यम से कहानीकार देश या विदेश में जीवन की नैसर्गिक परिस्थितियों का बेबाक अंकन करती है। यह विशेषता प्राय: सभी कहानियों में है। विधु का आधुनिक मन अपने परिवेश के बीच सहज प्रतिक्रया से उद्भूत आचरण करता है - 'सभी

की इज्ज़त और बलि विधु की'। किन्तु दूसरी ओर उसके मन में संबंधों का मान भी बचा है जिसके चलते वह माँ की उखड़ती साँसों को सहारा देती है।

यह संग्रह का केवल एक पहलू है। संकलन की कहानियों में किसी भी प्रकार की एकांगिता से पूरा बचाव है - ये नारी मन के समानांतर पुरुष मन और मानसिकता को भी गहरे रूपायित कर पाती हैं। इन कहानियों में यदि एक ओर आहत मातृत्व है, तो दूसरी ओर बिलखता पितृत्व भी। एक पिता की मजबूरी, अधीरता, परेशानी, हताशा, दम तोड़ता गुस्सा भी यहाँ उतनी ही ईमानदारी से दर्ज हुआ है। अपने घोंसले को बिखरने से बचाने की कोशिश में झुलसते और फिर घायल वन्य पशु से तिलमिलाते केशी हैं जो टूट गए, बिखर गए, लहूलुहान हो गए। 'किसलिए' कहानी में दूर जा बसी बेटी के एकाकी पिता की जिंदगी में पेपे की उपस्थिति 'यूँ ही' नहीं है, उसके खास मायने हैं, पहले बेटी थी बाहों में अब पेपे हैं। बेटी की स्मृति का चिह्न पेपे बन जाता है। पिता उसमें बेटी का प्रतिबिम्ब पाते हैं और जीवन में आए अभावों को पेपे के माध्यम से पाटने की कोशिश करते हुए जीते हैं। पेपे और पिता के बीच का संवाद बहुत मानवीय है जहाँ पेपे बेटा हो कर उनकी बात सुनता-समझता है, इतनी अच्छी तरह जितनी किसी ने न सुनी-समझी अभी तक !

इन कहानियों में एक ओर परम्परागत भारतीय दृष्टि और समाज है जिसमें पुरानी पीढ़ी के पास प्रार्थना करने के अलावा कोई शक्ति नहीं। दूसरी ओर मूल्यों की भूलभुलैया में अपने को बेगाना समझती नई पीढ़ी भी है। यह अपने समय का ऐसा यथार्थ है जो प्रवास में लेखिका के सामने मुँह बाए खड़ा है, वह उससे आँख कैसे मूँद ले? निश्चित ही वह ऐसा नहीं करती, यह इन कहानियों की जीवंत सार्थकता है।

इन कहानियों की अंतर्वस्तु में सघन दु:ख गुँथा हुआ है। अकेलापन, छीजते सम्बन्ध, घायल संबंधों का अवसाद। भूमिका लेखक ने ठीक कहा है कि 'ये सारी कहानियाँ पाठक के मन में भी एक वैसा ही अवसाद भर जाती हैं, जैसा कि उनके पात्रों में रचा-बसा हुआ है'। 'किसलिए' कहानी एकाकी पिता के उस मनोद्वेलन को गहनता से पकड़ती है जहाँ दूर जा चुकी बेटी का स्थान पेपे नाम का कुत्ता ले लेता है, जो उनका सोलमेट हो गया है। 'घर' कहानी में युवा होते एकाकी सलीम का दु:ख टूटते परिवार और सूने घर की चुप्पी का दु:ख है। पारिवारिक विघटन का सारा तनाव झेलते नर्वस सलीम के जीवन में एक ऐसा भूकंप आया जो उसे इस तरह लील गया कि वह सहज न रह सका और एक डरा हुआ खरगोश बन गया।

'दीपावली की शाम' एक ऐसे परिवार की कथा है, जिसमें बरसों का अकेलापन भर गया है। भौतिक सम्पन्नता के बीच जिंदगी की तस्वीर ऐसी बोझिल है, जो बच्चों के जीवन में खालीपन भरती है। उम्र के एक पड़ाव पर पहुँच कर लक्ष्मी और मायादास सोचते हैं कि उन्होंने क्या पाया और क्या खोया? क्या उन्होंने अमेरिका आने की कीमत इस तरह चुकाई है कि मुँह में कसैला स्वाद लिए जीते हैं और जिस पैसे के ट्रंप कार्ड से मात देने की सोचते थे, उससे खुद ही मात खा गए?

मन को झकझोर देने वाली इन कहानियों में जीवन की ऐसी ही यथार्थ स्थितियों का संवेदनशील बयान है। इन कहानियों का संसार लेखिका के वर्तमान और अतीत की स्मृतियों का संसार है, जिसमें जीवन का स्पंदन है। लेखिका के पास कहानी कहने की विशिष्ट कला है, जो अपने नाटकीय विकासक्रम और घटनाक्रम से पाठक को बांधे रहती है। वे कहानी में एकाएक किसी मर्मस्पर्शी बिंदु को छूती हैं - पत्नी श्री की अनुपस्थिति को उपस्थिति में बदलने की नाकामयाब कोशिश में पति कुबेर द्वारा उसकी साड़ी को अपने पलंग पर सिरहाने रखना इसी तरह का उदाहरण है। पत्नी और बेटी की अनुपस्थिति में अत्यंत आज्ञाकारी कुत्ते पेपे के साथ जीवन बिता रहे पिता का यह कथन भी इसी कोटि का है - उनके हूँ हाँ या ना कहने को कभी किसी ने इतना महत्त्व नहीं दिया।

सहज प्रभावी भाषिक विधान इन कहानियों की विशिष्ट उपलब्धि है - मीठे से ख्याल का बुलबुला उठता और बैठ जाता, उम्र की सीढ़ियाँ वह बानी के साथ इकट्ठे चढ़ते, श्यामा मुरझाई टहनी की तरह काम पर जाती, कमरे की चुप्पी का दिमागों में चल रहे कोलाहल से कोई वास्ता नहीं था, आँसू पलकों की सीमा लाँघ गए, संतोष शब्द से सड़ने जैसी गंध आती, रुके हुए आँसुओं ने बगावत कर दी, शो कब का खत्म हो चुका - उठो और निकल जाओ जवानी के इस थियेटर से - कुछ ऐसे ही उदाहरण हैं।

कहानियों में गहरे सांकेतिक अर्थ निहित हैं। माँ की स्मृति में यह कथन - 'चेहरे के भाव पढ़ती नज़रें, सिर चूमते होंठ, पीठ सहलाते हाथ' - एक छोटा उदाहरण है, किन्तु कुछ कहानियों की सांकेतिकता आद्यंत प्रसरित होती है। 'बहता पानी' में दादी की सुनाई कहानी का निहितार्थ आरम्भ से अंत तक बेटी की मन:स्थिति को व्यक्त करता रहता है - माँ और पिता के न रहने पर घर लौटी लड़की अब पीछे मुड़कर न देखे, वह समय बीत गया, वह भी समय के साथ बढ़ ले। इस कहानी में लोककथा को खूबसूरती से बुना गया है।

'फिर से' कहानी भी इसी तरह से पिछले कथासूत्र को वर्तमान से कनेक्ट करती है, बचपन में घर-घर खेलने वाली संजना फिर से माँ-पिता को एक करना चाहती है।

ये कहानियाँ कम शब्दों में अधिक कहती हैं - बाढ़ में सब कुछ जलग्रस्त हो जाने के बाद खड़े एकाकी पेड़ जैसे केशी, अतीत की खाई में झाँकता परिवार।

जैसा पुस्तक के भूमिका भाग में कथाकार नरेंद्र कोहली जी ने लिखा इन कहानियों में विवेक और भावना का संघर्ष मौजूद है, विदेशी धरती पर अपने लिए स्थान बनाने का संघर्ष। कहानियों के पात्र पराई संस्कृति को न तो स्वीकार कर पाते हैं और न ही उसे तोड़ पाते हैं और इस क्रम में ये कहानियां सिर्फ़ भावना प्रधान ही नहीं भावुकता प्रधान भी होती हैं।

आशा करें कि भूमिका लेखक की अपेक्षा फलीभूत हो और अनिलप्रभा उपन्यास भी लिखें। ●

अनचाही
मिथिलेश जैन
प्रकाशक : मेधा बुक्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 03२
मूल्य: २५०.०० रुपये
१५.०० अमेरिकन डालर

दर्पण के सवाल
हाइकु एवं ताँका
डॉ. अनीता कपूर
प्रकाशक : अयन प्रकाशन
१/२०, महरौली, नई दिल्ली
मूल्य: १६०.०० रुपये

साँसों के हस्ताक्षर
काव्य संग्रह
डॉ. अनीता कपूर
प्रकाशक : अयन प्रकाशन
१/२०, महरौली, नई दिल्ली
मूल्य: २५०.०० रुपये

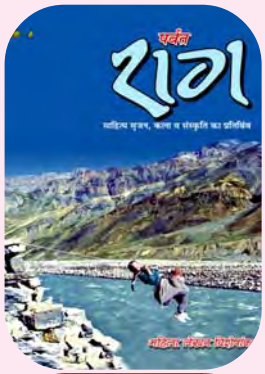

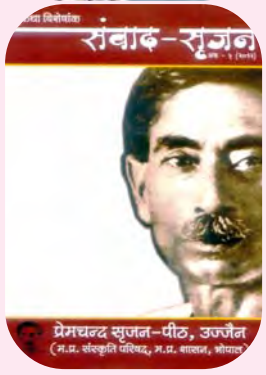

चित्र को उल्टा करके देखें

चिन्तन
भिन्न – भिन्न पशुओं के अंदर, भरे हैं अच्छे – अच्छे गुण
निज बुद्धि की चोंच बनाकर, इन गुणों को ले तुम चुन

शेर न मारे, मरे भूख से, योगी धर्म निभाये
एक जीव को मार के खाए, दूजा जन बचाए
प्रचंड मौसम से बचने हेतु, ढूंढे गुफा, औ, चट्टान
बन, पहाड़ में इनका बासा, ना वस्तु ना कोई मकान
दूजा भी मस्ती में बैठा, माया के सुख बिन
इक मस्ती में सोया रहता, सारे-सारे दिन
अपनी-अपनी जगह पे देखो, दोनों बड़े महान
बेखबर दुनिया से दोनों, इक पशु एक इंसान
नहीं मौत का डर दोनों को, दोनों बेपरवाह
स्वभाव से हैं दोनों शेर, पर शक्लें जुदा-जुदा
हाथ रखे घुटनों के ऊपर, प्रभु में ध्यान लगा
तप करने लगा हुआ है, आगे आग जला
मृगछाला पे आसन मारे, ऊपर नज़र चढ़ाई
चित्र उलटा कर देखो बैठा, है इसी का भाई

●चित्रकार : अरविंद नारले
●कवि: सुरेन्द्र पाठक

इक जंगल में खड़ा हुआ है, देखो बब्बर शेर
सारे जंगल में इस जैसा, कोई नहीं दिलेर
हाथी, घोड़े, गैंडे, भैंसें, इससे ताकतवर
इसके आगे कोई न ठहरे, सबको जान का डर
छुरियों जैसे दाँत नुकीले, खड़ा हुआ मुँह फाड़
मौत नज़र आ जाए उसको, मारे जिसे दहाड़
नज़र पड़े जो करे शिकार, नहीं मानता हार
हाथ लगा जो उसको खाया, नहीं किसी से प्यार
कहें लोग जंगल का राजा, बिन कोई कानून
जहाँ दहाड़े जंगल में जा, उड़ता वहीं सुकून

●

चित्रकार
अरविंद नारले

चित्रकार : अरविंद नारले

भागती- ज़िन्दगी

काँधे पर गिरस्ती का जुआ उठाए
भाग रहीं हैं सरपट जोड़ियाँ
कुछ आगे, कुछ पीछे
कुछ आड़े, कुछ तिरछे
विस्मित हो देख रहीं
सयानों की टोलियाँ
कहीं दोनों दमदार बराबर से
कहीं एक पिछड़ता साथी
अटपटे कदमों से हाँफता भी
आज की दुनिया में थकी- थकी
भागे जा रही है ज़िन्दगी
कभी सींगे हिलाती
कभी नथुने फड़काती
कभी प्यार जताती
नहीं अघाती
कभी निराश करती
तो कभी आशा जगाती
नून तेल लकड़ी के फेर में
ध्वस्त हो रही जवानी
आज के सामाजिक जीवन की
यह दौड़ कह रही कहानी

सत्यनारायण शर्मा कमल (भारत)

●

मेले में

बैलों के मेले में,
दूर खड़े हैं अकेले में,
भीड़ से दूर ही सही,
मानवों के बीच खड़े हैं मेले में ।
दु:ख- सुख में संग-संग रहें ,
विश्वास भरा है अंग -अंग में
देह की जब माँग हो
सोए शहर तो आराम करें ।
कड़ी धूप में रहते साथ,
दौड़ते - भागते भी साथ -साथ
छोड़ते न साथ
चाहे हो मानव या मीत ।

अदिति मजूमदार (अमेरिका)

●

नया विहान

जैसे ही हुआ नया विहान
हल बैल ले चला खेत की ओर किसान
अभी मद विंमसी उजियारी है
सूर्य किरणें उगने वाली हैं
खेतों की ओर दौड़ीं बैलों की-
युगल जोड़ियाँ निराली हैं
इनके गले की घंटियों का संगीत
और संग है वर्षा की बूंदों का गान
हल बैल ले चला खेत की ओर किसान
जोत चुके जब क्यारी -क्यारी
अब घर जाने की आई बारी
बाट जोह रहे चारा -चोकर
जल पीने को है नदी मतवारी
दौड़ पड़े हैं अब निज स्थान पर
भर दिन के श्रम से थके मन प्राण
हल बैल ले चला किसान
जब धान गेहूं की चमकेगी बाली
लाल गुलाबी सुनहरी वाली।
सभी झूमेंगीं अगणित अलबेली।
करेगीं पवन के संग अड़खेली ।
ऋतुएँ बदलेगीं, घर आँगन चमकेगा
और कृषक-घर आएगा धन .....धान।

ओम लता अखौरी (अमेरिका)

●

नवजीवन

सावन ने जब ली अंगड़ाई
धरा पे नवजीवन ले आई
अंकुर फूटे फसल लहराई
खुशियों का संदेसा लाई
अब भरेगा हर घर का खलिहान
समृद्धि का छिड़ेगा गान
इक नयी तरंग इक नया रंग
हर्षित कृषक मन में उमंग
सफल परिश्रम अब दिल बहलायें
खेलें कूदें मौज मनाएँ ।

अविनाश जौहर (भारत)

●

हम भूल चुके हैं ....

वो सरसों की क्यारी, वो पनघट पे नारी
हम भूल चुके हैं ! हाँ भूल चुके हैं...
वो मेलों के भोंपू, या सरसों के कोल्हू
हम भूल चुके हैं! हाँ भूल चुके हैं...
वो रिश्ते अलबेले, खुशियाँ या झमेले
हम भूल चुके हैं ! हाँ भूल चुके हैं...
वो बैलों का अड़ना, फिर नैनों का लड़ना
हम भूल चुके हैं! हाँ भूल चुके हैं...
गोधूली की धूल, वो बैलों की झूल
हम भूल चुके हैं, हाँ भूल चुके हैं...
वो गलियाँ पुरानी, वो गाँवों की माटी
हमें फिर से दो ना ! हमें फिर से दो ना
वो खेतों की जुताई, मेरे गाँव की अमराई
हमें फिर से दो ना, हमें फिर से दो ना

ममता शर्मा (भारत)

●

इस चित्र को देखकर आपके मन में कोई रचनात्मक पंक्तियाँ उमड़-घुमड़ रही हैं, तो देर किस बात की, तुरन्त ही काग़ज़ क़लम उठाइये और लिखिये। फिर हमें भेज दीजिये । हमारा पता है :

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court, Markham,
Ontario, L3R 3R1,
e-mail : hindichetna@yahoo.ca

पत्र लिखना भी एक कला है, जो मैं कभी नहीं सीख पाई । सच कहूँ, मुझे पत्र लिखना आता ही नहीं । इस कला से मैं धीरे -धीरे परिचित हो रही हूँ या यूँ कहूँ कि सीख रही हूँ । ढेरों ईमेल और हस्तलिखित पत्र 'हिन्दी चेतना' के हर अंक के बाद मिलते हैं । पत्रों को पढ़ कर जो अनुभव होते हैं वे मेरे लिए अमूल्य हैं । पत्र और प्रतिक्रियाएँ अलग -अलग होती हैं । कई पाठक नहीं चाहते कि उनके पत्र छापे जाएँ, वे सिर्फ़ मेरे लिए होते हैं । पत्रों में व्यक्त की गईं प्रतिक्रियाएँ, सुझाव एक सम्पादक के लिए होते हैं । वे अपनी बात से किसी लेखक या कवि को ठेस नहीं पँहुचाना चाहते, बस मुझे बताना चाहते हैं कि, उन्हें क्या अच्छा लगा और क्या बुरा और भविष्य में मुझे किन बातों की ओर ध्यान देना चाहिए । पत्राचार करते -करते वे अच्छे मित्र बन गए हैं और 'हिन्दी चेतना' के शुभचिन्तक । अक्सर पत्र स्वस्थ्य समीक्षा, विवेकशील आलोचना और प्रेम से भरपूर प्रतिक्रिया लिये होते हैं । निजी अनुभवों को अभिव्यक्त करते कई लम्बे -लम्बे पत्र आते हैं, वे मेरे साथ अपना दु:ख -सुख साझा करना चाहते हैं । उन पत्रों ने मुझे एक बात भीतर तक महसूस करवाई कि पत्रिका और सम्पादक के साथ पाठक गहरे जुड़ जाते हैं । फिर वे अपने भाव व्यक्त करने में संकोच नहीं करते । कुछ पत्र ऐसे हैं, जिनकी काव्यात्मक भाषा, भावाभिव्यक्ति का लाजवाब शिल्प मुझे भी उन्हें उत्तर देने के लिए उकसाता है । इन पत्रों को मैंने सम्भाल कर, संजो कर रख लिया है । कभी लेखकों और पाठकों के पत्रों पर विशेषांक निकाला तो आप को पढ़वाऊँगी ।

इस बार दो तीन पत्र ऐसे आए हैं, जिनको यह कष्ट हैं कि 'हिन्दी चेतना' विदेश की पत्रिका हो कर भी पारिश्रमिक नहीं देती । हम मानदेय देना चाहते हैं, पर अभी तो हम ही विपरीत धारा में नौका चलाने की चुनौती स्वीकार कर संघर्ष कर रहे हैं । विज्ञापन अमेरिका की पत्रिकाओं को चले जाते हैं । हिन्दी भाषी लेखक और पाठक भी हिन्दी के नाम पर डालर खर्च करने से कतराते हैं । मैं बनिया बन हिसाब नहीं कर रही; बस स्थिति स्पष्ट कर रही हूँ । अभी तो धीरे -धीरे 'हिन्दी चेतना' के अँधेरे रास्ते स्पष्ट होने शुरू हुए हैं और निकट भविष्य में शायद वह सुबह नज़र आए, जिसकी हमें भी प्रतीक्षा है ।

मित्रो ! आप की प्रतीक्षा समाप्त हो गई है । मेरे इस पन्ने तक पहुँचते-पहुँचते आप ने 'लघुकथा विशेषांक' देख-पढ़ लिया होगा । जिसको अतिथि सम्पादक द्वय आदरणीय रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' जी और सुकेश साहनी जी ने बड़ी मेहनत और लगन से तैयार किया है । सभी रचनाकारों का हार्दिक आभार जिन्होंने अपना रचनात्मक सहयोग देकर इस अंक को विशेष बनाया ।

प्रतिक्रियाओं का इंतज़ार रहेगा .....

अब नव वर्ष में मिलेंगे ...तब तक अपना ध्यान रखियेगा .....

आपकी मित्र,

सुधा ओम ढींगरा

त्योहारों का आगमन होने को है, द्वार-द्वार पर अल्पनाएँ सजाई जाने लगेंगी । अल्पनाएँ जो प्रतीक होती हैं स्वागत का, स्वागत हर आने वाले का, फिर चाहे वो परिजन हो, मित्र हो या त्योहार हो । आइए एक अल्पना हृदय के द्वार पर भी बनाएँ ।